PRVAH 1952 G.K.V.

112380

— इस अंक के लेखक —

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद
श्री० शिवप्रसादसिंह
,, मन्मथनाथ गुप्त
,, 'भिक्खु'
,, महेन्द्र भटनागर
,, शिवचन्द्र नागर
,, 'कुमार'
,, आस्कर वाइल्ड

श्री० 'अंचल'
,, जगदीशचन्द्र
,, देवराज दिनेश
,, मधुकर 'कुकरेती'
,, राजनारायण बिसारिया
,, 'शानी'
,, नरेन्द्र एन. सक्सेना
,, हीरादेवी चतुर्वेदी

श्री० शकुंतला शर्मा

Kishore Rd

प्रवाह

संचालक
श्री ब्रिजलाल बियाणी
संपादक
शचीरानी गुर्टू
विनय कुमार

वर्ष ५ : अंक १०.

जनवरी १९५२

अकोला (मध्य प्रदेश)

मध्यप्रदेश और कोटा सरकार के शिक्षा-विभागद्वारा स्वीकृत

इस अंक में

१	संस्कृत वांगमय- डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद	१
२	हॉवर्ड फॉस्ट- शिवप्रसादसिंह	५
३	अवनीन्द्र की कलासाधना- मन्मथनाथ गुप्त	१०
४	आत्महंता- 'भिख्खु'	१३
५	नये इन्सान से तटस्थ वर्ग- महेन्द्र भटनागर	१९
६	दीपशिखा के आलोकतत्व- शिवचन्द्र नागर	२०
७	गीत- 'कुमार'	२४
८	राजकुमार का अभिषेक- आस्कर वाइल्ड	२५
९	मूर्ति पुजारी से- 'अंचल'	३३
१०	वृत्त का केन्द्र- जगदीशचन्द्र	३५
११	गीत- देवराज दिनेश	३६
१२	स्वच्छ, निर्मल प्यार !- मधुकर कुकरेती'	३७
१३	गीत- राजनारायण बिसारिया	२९
१४	आत्मनिर्माण की ओर- 'रावी'	४०
१५	गीत- ब्रजेन्द्र एन सक्सेना	४२
१६	रँगा सियार- हीरादेवी चतुर्वेदी	४६
१७	पाती- शकुंतला शर्मा	५०
१८	संपादकीय-विचार	५८

112380

'प्रवाह' के नियम

112380

[संपादकीय विभाग]

१ 'प्रवाह' मासिक पत्र है और अंग्रेजी माह की १ तारीख को प्रकाशित होता है।

२ 'प्रवाह' में प्रकाशनार्थ रचनाएँ, परिवर्तनार्थ पत्र-पत्रिकाएं और आलोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियां श्री, शचीरानी गुर्टू, ७।२३ दरियागंज, देहली के पतेपर ही आनी चाहिये।

३ रचना भेजते समय इस बात का ध्यान रखें कि वह अन्यत्र प्रकाशनार्थ नहीं भेजी गई है। 'प्रवाह' में प्रकाशनार्थ रचनाएँ १० तारीख तक आजानी चाहिए।

४ किसी भी रचना को छापने या न छापने तथा उसे घटाने-बढ़ाने का अधिकार संपादक को रहेगा। 'सिण्डीकेटेड' (कई पत्रों में वितरित) रचनाएं कोई व्यक्ति भेजने की कृपा न करें।

५ राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, साहित्य और संस्कृति पर उच्चकोटि के लेख भेजते समय 'प्रवाह' के प्रगतिशील दृष्टिकोण और स्टैण्डर्ड का ध्यान रखें।

६ हास्यरस की रचनाओं में इस बात का ध्यान रखा जाय कि वे घृणोत्पादक, कुरुचिपूर्ण और द्वेषमूलक न हों।

७ लेख साफ, सुथरे, अक्षरों में कागज़ के एक तरफ लिखे होने चाहिए।

श्री. शचीरानी गुर्टू
७।२३ दरियागंज, दिल्ली

[व्यवस्था विभाग]

१ 'प्रवाह' का वार्षिक चंदा ६) और ६ माह का ३।।) है। किसी भी माह से ग्राहक बना जा सकता है। ६ माह से कम का चंदा स्वीकार नहीं किया जायगा।

२ देश के जिन भागों में सम्प्रति 'प्रवाह' के एजेंट नहीं हैं वहाँ के लिये एजंट नियुक्त करना है। एजंसी के नियम:-

(क) कम से कम ५ प्रतियां मंगाने वाले को एजंट नियुक्त किया जायगा।

(ख) ।।) प्रति कापी के हिसाबसे डिपाजिट भेजना होगा। हर माह में हिसाब साफ कर लिया जाय। बची हुई प्रतियाँ वापिस नहीं ली जायंगी।

(ग) प्रवाह के चार ग्राहक एक साथ बनानेवाले को एक वर्ष के लिये 'प्रवाह' मुफ्त भेजा जायगा।

(घ) शिक्षण संस्थाओं को 'प्रवाह' ५ रु० में वर्ष भर दिया जायगा।

(ङ) नमूना अंक मुफ्त भेजने की प्रथा नहीं है। अंक के लिये दस आने के टिकट या मनीआर्डर आना आवश्यक है।

३ 'प्रवाह' में निम्नदर पर विज्ञापन स्वीकार किये जाते हैं :-

विज्ञापन की दर

चौथा आवरण पृष्ठ	६०	प्रतिमाह
तीसरा ,, ,,	५०	,,
दूसरा ,, ,,	५०	,,
साधारण पूरा पृष्ठ	४०	,,

४ चेक, मनीआर्डर, रजिस्टर्ड पत्र और बीमा आदि निम्नपते पर आने चाहियेः-

व्यवस्थापक **'प्रवाह'**
राजस्थान-भवन अकोला (मध्यप्रदेश)

स्वदेशी

काटन मिल्स क० लि० कानपुर
द्वारा प्रस्तुत

- धोतियाँ
- साड़ियाँ
- कोटिंग
- शर्टिंग
- पापलीन
- मारकीन

तथा

बरार स्वदेशी बनस्पति सेगांव (बरार)
द्वारा प्रस्तुत

- बनस्पति
- तेल
- साबुन सदैव व्योहार कीजिये

एजेन्ट्स
जैपुरिया ब्रादर्स लिमिटेड

K.P.C. Ltd.
S.C.M No. 1

केला केमीकल फ्यॅाक्टरी

केला इस्टेट, केला रोड, केला नगर पो. ऑ. खामगांव का बना हुआः-

अपने अमूल्य स्वास्थ्य की हिफाजत और भीषण संक्रामक रोगों से बचने का
एक मात्र शत प्रतिशत सफल साधन

केला छाप फिनाइल

औषधालयों, संस्थाओं

...... तथा ......

घर घर में व्यवहृत

म्यानेजींग एजन्ट

दी केला कम्पनी [इंडिया] लिमिटेड

नोबल चैम्बर्स, पारसी बाजार स्ट्रीट
तार- "केलाको" फोर्ट, बम्बई। फोन नं. ३२२२३

स्टाकीस्ट

दी केला कम्पनी [इंडिया] लिमिटेड

केला हाऊस, केला रोड, केलानगर पी. ओ.
तार- "केलाको" खामगांव [बरार] फोन नं. ४३

जो आज यशोमंदिर में अधिष्ठित हैं, उन्हें इस बात का पूरा ज्ञान है कि जीवन के बौद्धिक तथा भौतिक विकास में रूप का सुरूप होना कितना सहायक है।

रंगों के सुमेळ की, आकर्षक निखरे नमूने की तथा कपडे की स्निग्धता पहिचानने की जिन्हें सूक्ष्म दृष्टि है ऐसे सुघर वस्त्र परिधान करनेवाले अपने कपड़ों का चुनाव बहुत सतर्कतापूर्वक करते हैं।

केशोराम कॉटन मिल्स में, उपर्युक्त सारी बातों का ध्यान रखकर ही कपडा तैयार किया जाता है।

केशोराम आपको आकर्षक साड़ियाँ, मुलायम धोतियाँ और टिकाऊ तथा सुंदर शर्टिंग देता है।

केशोराम

अनूप-वसन

केशोराम कॉटन मिल्स लिमिटेड

८ रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

संस्कृत वाङ्मय

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

(हमारे राष्ट्रपति)

दस वर्ष पूर्व अपने दो व्याख्यानों में मैंने संस्कृत वांगमय की महत्ता और पूर्णता की ओर ध्यान आकर्षित किया था तथा संस्कृत वांगमय में उपलब्ध भाषा ज्ञान; व्याकरण, वर्णमाला, लिपि और अंक में और विशेषकर पाटीगणित या अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, ज्योतिष, भौतिकी, वैद्यक, शल्यचिकित्सा, शरीर-रचना-विज्ञान, धातुशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, कृषि और बागबानी, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नृत्यकला आदि विषयों का दिग्दर्शन कराया था और अन्त में संस्कृत के अध्ययन की जो आज परिपाटी प्रचलित है उसमें संशोधन की आवश्यकता और उपयोगिता की ओर भी ध्यान आकर्षित किया था। संस्कृत का अध्ययन केवल हमारे ही लिये नहीं, बल्कि संसार की समस्याओं के सुलझाने में भी सहायक हो सकता है और इसलिए मैं इसका आग्रह रखता हूँ कि हमारे शिक्षालयों में इसे काफी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। जो संस्कृत नहीं जानते, वह उन्हीं बातों पर अधिक ज्ञान देते हैं जो पाश्चात्य विद्वान कहते है। इसलिए मै ऐसे लोगों के विचारों के कुछ उद्धरण दे देना ही इस काम के लिये पर्याप्त समझता हूँ।

संस्कृत वांगमय भारत की ही क्यों सारी मनुष्य जाति की अत्यन्त अमूल्य निधि है। उसकी प्राचीनता, उसकी व्यापकता, उसकी विशदता, उसका सौन्दर्य और मधुरता सभी तो ऐसी है जिनसे न केवल मानव की आजतक की संस्कृति का सारा इतिहास ज्योतिर्मय हो उठता है वरन् मानव का हृदय आनन्द से विभोर हो जाता है और उसको एक ऐसे नये आदर्शलोक की झांकी मिल जाती है जिसमें पहुँचने पर ही उसका जीवन सार्थक हो सकता है और उसे भवबाधा से मुक्ति मिल सकती है।

मानवजाति के सांस्कृतिक विकास का चित्र तो संस्कृत वांगमय की सहायता के बिना बनाया जा सकता ही नहीं। संसार भर में अन्य कोई ऐसी जाति नहीं है जो इतना प्राचीन साहित्य सुरक्षित रख पाई हो जितना प्राचीन साहित्य हम भारतीय रख पाये है। ऋषियों के अपने ही शब्द सुरक्षित हैं और उनमें हम उस काल का चित्र स्पष्टरूपेण रेखांकित कर सकते हैं।

भारतीय वांगमय का प्रभाव

यह केवल इसलिए ही नहीं कि भारतीय वांगमय अन्य सब देशों के वांगमय से प्राचीन है वरन इसलिए भी कि प्राचीन सभ्य संसार का ऐसा कोई प्रदेश नही था जहां वह किसी न किसी रूप में फैल न गया हो। चीन से लेकर आयर तक और स्कैन्डीनेविया से लेकर स्वर्णदीपमाला तक भारतीय वांगमय का प्रभाव फैला। यह तो सब जानते हैं कि भारतीय वांगमय के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हजार वर्ष से अधिक पूर्व चीनी भाषा में, तिब्बती में और तत्पश्चात जापानी भाषा में हो गया था और वह चीनी, तिब्बती और जापानी संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया था। बाली, जावा, सुमात्रा और कम्बोज (कम्बोडिया) में भी भारतीय वांगमय का बोलबाला था और वह वहां की संस्कृति का मुख्य आधार था।

पर इस बात को बहुत लोग नहीं जानते कि उसका प्रचार मध्य पूर्व और यूरोप में भी कुछ कम नहीं हुआ।

इस बारे में तो कोई शंका है ही नहीं कि अब्बासी खलीफाओं के काल में भारत के कितने ही विद्वान उनकी राजधानी में गये और वहाँ उन्होंने भारतीय ज्ञान से उन लोगों को परिचित कराया और भारतीय वांगमय के कुछ ग्रन्थों का उनकी राजभाषा मे अनुवाद भी किया। किन्तु इस बात के भी पर्याप्त संकेत मिलते है कि मध्य पूर्व और और यूरोप की प्राचीन संस्कृति पर भी भारतीय वांगमय का अच्छा खासा प्रभाव पडा था और जहांतक वहां के प्राचीन कहानी साहित्य का सम्बन्ध है यह कहा जा सकता है कि वह तो बहुत कुछ भारतीय साहित्य का नया रूपान्तर है। सभ्य जगत

की सब जातियों के हृदय में पैठ जाने के कारण आज वह उनकी सांस्कृतिक चेतना का अभिन्न अंग बन गया है और इसलिए उनके सम्यक अध्ययन के लिए वह आवश्यक है कि इस मूल संस्कृत वांगमय का अध्ययन किया जाये ।

इसी सत्य की ओर संकेत करते हुए विन्टरनिट्ज ने जर्मन भाषा में अपने भारतीय वांगयय के इतिहास में कहा है कि 'अपनी प्राचीनता, विशाल भूभाग में अपने विस्तार, अपनी विशदता और समृद्धि, कला की उत्कृष्टता और सबसे अधिक संस्कृति के इतिहास की दृष्टि से इस महान, मूल और प्राचीन वांगमय का रूचि से अध्ययन हमारे लिए वांछनीय हैं । यदि हम अपनी संस्कृति के प्रभाव को समझना चाहते है तो हमें भारत की शरण लेनी चाहिये जहां कि इन्डोयूरोपियन जाति का प्राचीनतम वांगमय अब भी सुरक्षित है । हमारे अपने साहित्य पर भारत के साहित्य ने जो प्रभाव डाला है उसको भी हमें कम न मानना चाहिये। हम देखेगें कि यूरोप के वर्णात्मक साहित्य का बहुत कुछ आधार भारत का कथा साहित्य है । खासतौर से जर्मन साहित्य और दर्शन पर्शन तो १८ वीं शती के प्रारंभ से भारतीय विचारों से बहुत प्रभावित हुआ है और सम्भवतः यह प्रभाव आज भी बढता ही जा रहा है और इस शती में तो सम्भवतः कहीं अधिक बढ जायेगा ।"

भारतीय वाङमय की विशेषता

मानव संस्कृति को समझनें व जानने के लिये और अपनी जातीय आत्मा को पहिचानने के लिये ही नहीं वरन कला के सर्वोत्कृष्ट रूप से आनन्द विभोर होने के लिये भी हमारे लिये और हमारे ही लिये क्यों संसार भर के लिए संस्कृत वांगमय का अध्ययन आवश्यक है । जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं, मानव अभिव्यक्ति की ऐसी कोई रीति नहीं, कला का ऐसा कोई रूप नहीं जिसमें संस्कृत वांगमय पूर्णता को न पहुंचा हो । समाज और व्यक्ति, राजा और रंक नागरिक और ग्रामीण, मानव और पशु–पक्षी सभ्य और असभ्य, चेतन और जड़, आत्मा और परमात्मा सब ही की बात तो उस वांगमय में हृदयस्पर्शक और अनूठे ढंग से कही गई है । मानव हृदय का ऐसा कोई प्रकोष्ठ नहीं जो उसकी दृष्टि से छिपा रह गया हो या जिसके अन्ततम की बात अत्यन्त कोशल से व्यक्त न कर दी गई हो । प्रकृति का ऐसा कोई स्वरूप नहीं जिसका सुन्दर और सही चित्र वहां माजूद न हो । समाज का ऐसा कोई पहलू नहीं जिसकी व्याख्या और उसके अन्तर्गत में काम करनेवाले आदर्शों, वेदनाओं और व्यसनों का हूबहू चित्र वहां न हो और मानव जाति के भविष्य और भाग्य से, सम्बन्ध रखनेवाला ऐसा कोई प्रश्न नहीं जिसका विचारपूर्ण और यथोचित उत्तर वहां मौजूद न हो । पशु पक्षी के जीवन का वैसा बारीक और सही वर्णन और मानव जीवन में उनके महत्व की वैसी व्याख्या और उनके प्रति वैसी सद्भावना तो संसार की किसी भी अन्य जाति के साहित्य में पाई जाती हो नहीं ।

उसमें यदि विद्वानों और वयस्कों के लिये सामग्री है तो जनसाधारण और बालकों के लिये सामग्री भरी पडी है । गन्धर्वों, यक्षों, असुरों और निशाचरों की अद्भुत सृष्टि और चमत्कारिक शक्ति और कृत्यों का वहां ऐसा और इतना वर्णन है कि औद्धत्य से प्रसन्न होनेवाली बालक जाति को अपनी चाहना को पूरा करने की अनन्त सामग्री मिल जाती है । स्मृति में सहज ही घर कर लेनेवाली ऐसी उक्तियां है जिनमें जीवन का ज्ञान भरा है और जिनके सुनने और समझ लेने से ही साधारण जन भी ज्ञानवान बन जाते है और ऐसी कथाएं है जिनको सुनने मात्र से ही अपढ़ भी पण्डित हो जाते हैं।

गागर में सागर

साथ ही कला की दृष्टि से भी उसमें वह चमत्कार भरा है जो संभवतः ही अन्यत्र पाया जाता हो । घट में समुद्र भरने की कहावत यदि कहीं ठीक अर्थों में पूरी हुई है तो संस्कृत वांगमय में ही । अर्थ और शद्व साम्य जितना संस्कृत वांगमय में मिलता है वह और किसी अन्य साहित्य में नहीं मिलता । यदि अलंकारों की शोभा और शद्व व्यंजना का उत्कृष्ट चमत्कार कहीं देखा जा सकता है तो वह भी संस्कृत वांगमय में ।

यदि विचार की सूक्ष्मता और दर्पण सम-चित्रण देखना हो तो वह भी अन्यत्र ऐसा नहीं मिलेगा, जैसा संस्कृत वांगमय में । थोडे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत वांगमय ही ऐसा वांगमय है जिसमें शब्दों की सर्वोत्तम व्यंजना हुई है ।

क्या गद्य, क्या पद्य, क्या नाटक और क्या गीत

काव्य, सभी में तो संस्कृत लेखक सिद्धहस्त रहे है। जैसा कि विन्टरनिटज लिखता है–'भारतीय साहित्य में वह सभी कुछ है जो साहित्य शब्द के व्यापकतम अर्थ में निहित है अर्थात पद्यात्मक पारलौकिक और ऐहिकाव्य, महाकाव्य, गीतकाव्य, नाटक और नीतिकाव्य और साथ ही वर्णनात्मक और वैज्ञानिक गद्य।'

संस्कृत वांगमय की प्राचीनता

ईसवी शती के पहले ही हमारे यहां काव्य के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में ही अत्यन्त उत्तम कृतियां हो चुकी थी। यह ठीक है कि अभीतक संस्कृत वांगमय का कालक्रम निर्विवाद रूपेण स्थिर नहीं हो पाया है। किन्तु फिर भी यह बात तो लगभग सर्वसम्मत ही है कि ईसा पूर्व १५००० से लेकर ईसा पश्चात १००० तक संस्कृत वांगमय का कोष अमूल्य ग्रन्थ रत्नों से भरपूर हो चुका था और इनमें से अनेक अनुपम ग्रन्थ तो ईसवी सन के प्रारम्भ होने से कई शती पूर्व ही लिखे जा चुके थे। पराविद्या में उपनिषदों जेसे ग्रन्थ महाकाव्य में रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थ और दृश्य काव्य में भास के जैसे नाटक उस समय तक संस्कृत वांगमय के अंग होगए थे। इनकी तुलना के अथवा इनके सामान हृदयस्पर्शक और रसमय ग्रन्थ मेरे विचार में संसार भर के साहित्य में और कोई नहीं है। यह ठीक है कि पाश्चात्य विद्वानों में से बहुत से यह स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं कि संस्कृत साहित्य यूनान के साहित्य से भी उत्कृष्ट है; किन्तु उनको भी यह तो स्वीकार करना पडता ही है कि उस काल का संस्कृत वांगमय लगभग उतना ही उत्कृष्ट था। यदि निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया जाय तो यह बात निर्विवाद रूपेण माननी होगी कि रामायण और महाभारत जेसे महाकाव्य संसार की किसी जाति के भी साहित्य में नहीं है।

संस्कृत साहित्य की अपेक्षाकृत इस उत्कृष्टता का कारण कछ सीमा तक संस्कृत भाषा की अपनी प्रकृतिजन्य विशिष्टता है। उसका व्याकरण और शद्वों की व्यंजना इतनी खूबी और इतने अर्थभरे ढंग से हो सकती है जितनी कि संसार की किसी भी अन्य भाषा में, चाहे फिर वह प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन, नहीं हो सकती। उसमें समास की पद्धति के कारण घट में सागर भरा जा सकता है जबकि अन्य भाषाओं में यह उस सीमातक न कभी सम्भव हुआ है, न हो सकता है।

इस आन्तरिक गुण के अतिरिक्त संस्कृत वांगमय का विकास ऐसे वातावरण में हुआ जो भौगोलिक और जातिगत दोनों ही दृष्टियों से बहुरंगी था। भारत विशाल देश है। उसमें हर प्रकार की जलवायु और अनेक प्रकार के प्राकृतिक दृष्य, अनेक जातियों के फूल पौधे, पशु-पक्षी और विभिन्न रंग-रूप और रिवाज वाली जातियां पाई जाती है। अतः इस सतरंगी पृष्ठभमि पर भारत के कलाकार यदि अनेक प्रकार के सुन्दर शब्दचित्र बना सके तो यह कुछ अस्वाभाविक बात नहीं थी। एम० विलियम लिखता है कि "भारत में सम्पूर्ण प्रकृति के स्वरूप के अनुरूप ही साहित्य भी अत्यन्त विशद मात्रा में है। हिमालय की मनमोहिनी छटा से और अदभुत कल्पना को उत्तेजित करनेवाली जलवायु से पोषित कविता का विकास प्राचीदिग् की भरपूरता के अनुकूल ही हुआ है"

सारे संस्कृत वांगमय में हमें कोई ट्रेजेडी या दुखांत काव्य या नाटक नहीं मिलता। यह बात नहीं कि काव्य के नायक को हर प्रकार की यातनायें न सहनी पडती हो या हर प्रकार की बाधाओं और विपत्तियों का सामना न करना पडता हो। यह सब भुगतना पडता है। किन्तु अन्ततोगत्वा उसको ये सब यातनायें और विपत्तियां उसके सुख और सफलता का सोपान ही सिद्ध होती है। नल दमयन्ती, हरिश्चन्द्र शैव्या, सत्यवान सावित्री इत्यादि जितनी भी प्रसिद्ध कथाएं हमारे साहित्य में मिलती है इन सभी के नायक विपत्ति सागर को पारकर अन्त में सफलता और सुख को प्राप्त कर लेते है। इसी विश्वास के कारण हमारा सारा साहित्य क्षणिक वेदनाओं को अमरत्व प्रदान करनेवाला शब्दचित्र ही न होकर व्यक्ति और जगत के चिर कल्याण की साधना है। कला के उद्देश्य के बारे में हमारे साहित्यिकों का यह विचार था कि यह केवल लेखक या पाठक के मनोरंजन का ही साधन नहीं है वरन वे साथ ही यह भी मानते थे कि वह चारों पुरुषार्थों का भी साधन है। हमारे प्रधान महाकाव्यों के बारे में तो परम्परागत यह विश्वास सदा से चला आया है कि उनके पठन-पाठन से मनुष्य की मुक्ति हो जाती है। साहित्य मीमांसकों ने भी महाकाव्य की व्याख्या करते हुए कहा कि उसने चातुर्वर्ग फल, अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की भी साधना होती है। रह रहकर यही ध्वनि भारतीय साहित्य के विभिन्न अंगों से ध्वनित होती है। यही

कारण है कि भारतीय साहित्य में अन्ततोगत्वा धर्म और सत्य की विजय ही दिखाई गई है। इस आधारभूत आदर्श के कारण भी संस्कृत वांगमय का महत्व कहीं अधिक हो जाता है। मानव का पशु से देवत्व पद प्राप्त करना ही कवि की साधना का ध्येय हो सकता है, क्योंकि उसीमें उसका अपना आध्यात्मिक कल्याण है और उसीमें मानव जाति का कल्याण निहित है। संस्कृत वांगमय हमारे कवियों और साहित्यिकों की इसी साधना का फल है।

संस्कृत वांगमय की एक और विशेषता यह है कि उसमें सारे व्यक्त जगत की एकता का चित्रण है। उसकी यह मान्यता है कि जड प्रकृति चेतन पशु पक्षी और ज्ञानवान मानव इन सब के अन्तस्तल में एक ही सर्वव्यापी शक्ति विराज रही है। इसलिए नायक के सुख दुख में सारे जड और चेतन जगत का हृदय भी सम्मिलित रहता है। इस कारण संस्कृत वांगमय में प्रकृति, पशुओं पक्षियों का जितना सुन्दर और सहानुभूतिपूर्ण वर्णन है वैसा संसार के किसी अन्य साहित्य में नहीं पाया जाता–यूनानी साहित्य में भी नहीं। संस्कृत के लेखो को शेक्सपीयर के जन्म से शताब्दियों पूर्व पाषाणों में पावन गीत और सरिताओं में शस्त्रपाठ सुनाई देता रहा है। यहां के कवियों ने मेघों को, शुकों को दूत बनाकर नायक का संदेश लेकर नायिका के पास अनेक बार भेजा है। संस्कृत वांगमय में नायक और नायिका की जीवनधारा की दिशा निर्माण में परमेश्वर और देवगण प्रकृति और उसकी प्रेरक शक्तियां, सभी भाग लेती हैं।

अपनी इन विशिष्टताओं के कारण वह साहित्य अनेक ऐतिहासिक परिवर्तन होनेपर आज भी अपना मस्तक ऊंचा किए हुए खडा हुआ है और संसार के महान साहित्यों में सर्व प्रथम स्थान रखता है।

इस संबंध में प्रोफेसर मैक्समूलर ने अपनी 'व्हाट इडिया कैन टीच अस' नामक पुस्तक में लिखा है– 'यदि मै सारी दुनिया में एक ऐसे देश की खोज करूं जिसे प्रकृति ने इतना धन, शक्ति और रमणीकता प्रदान की है जितनी कि प्रकृति कर सकती है और जो कुछ सीमा तक पृथ्वी पर स्वर्ग है तो मै कहूंगा कि वह देश भारत है। यदि मुझ से पूछा जाय जाए कि किस देश में मानव बुद्धि ने अपनी सर्वोत्तम योग्यताओं में से कुछ का पूरा विकास किया है, जिसने जीवन के गहनतम समस्याओं पर गहराई से विचार किया है और उनका ऐसा हल निकाला है जिनपर उन लोगों को भी ध्यान देना चाहिये जिन्होंनें प्लैटो और कान्ट का अध्ययन किया है तो मै कहूंगा कि वह भारत है। जब में यह सोचता हूं कि वह कोन सा साहित्य है जिसमें हम लोगों को जो केवल यूनानियों, रोमवालों और सेमिटिक जाति की एक शाखा अर्थात यहुदियों के विचारों के आधार पर ही पले हैं, वह बात मिल सकती है जिससे हमारा आन्तरिक जीवन अधिक पूर्ण अधिक विशद, अधिक व्यापक और सच ही अधिक मानविक हो जायगा अर्थात ऐसा जीवन हो जायगा जो केवल पार्थिव ही नहीं है वरन अमृतमय है तो मैं फिर कहूंगा कि वह भारत है।''

मैं ऊपर दिखा चुका हूं कि संस्कृत वांगमय का अध्ययन और अनुशीलन कितना आवश्यक वांछनीय और महत्वपूर्ण है और इसलिये इसको हमारे सभी शिक्षालयों में केवल स्थान ही नहीं बल्कि काफी प्रोत्साहन भी मिलना चाहिए। मैं यह भी कहना ही उतना ही आवश्यक समझता हूं कि जो लोग केवल संस्कृत का ही अभ्यास करते है उनके लिए भी यह अनिवार्य होना चाहिये कि आधुनिक गतिविधि में परिचय प्राप्त करें। संस्कृत के विद्वानों को आधुनिक विषयों में अधिक ज्ञान नहीं हो तो कुछ इनके साथ परिचय और उनमें थोडा प्रवेश अवश्य होना चाहिए। वह हिन्दी पुस्तकों द्वारा बहुत अच्छा हो सकता है पर पुरानी रीति से शिक्षित पंडित हिन्दी को कुछ हेय दृष्टि से देखते आए है। उनके लिए संस्कृत में भी आधुनिक विषय संबंधी ग्रंथ बनने चाहिए। मैं आशा करता हूं कि प्राचीन वांगमय के अध्ययन के साथ साथ वह प्रयत्न भी चलता रहेगा जिसमें वह वांगमय जिसकी प्रगति कई शताब्दियों से रुक गई है फिर एक बार अपने श्रोत को जारी कर सके और कुछ शताब्दियों के बाद उस वांगमय के इतिहासकार को यह भी कहने का सुअवसर मिले कि इस युग में भी संस्कृत साहित्य किसी आधुनिक भाषा से आधुनिक विद्या के प्रचार में कम नहीं रहा।''

हॉवर्ड फॉस्ट

श्री शिवप्रसादसिंह

[बँगला के लेखक]

अभी (कुछ दिन पहले) बम्बई में अमरीकी उद्योग, सोश-लिस्ट सहयोग से बडे आडम्बर सहित 'सांस्कृतिक स्वाधीनता कांग्रेस' अनुष्ठित हुई थी। इस सभा के आयोजकों ने संस्कृति के प्रश्न की जितनी अधिक चर्चा नहीं की, उससे अत्यधिक चर्चा की साम्यवाद के प्रश्न की। साम्यवाद के चक्कर में पडकर विश्व की संस्कृति आज जैसे विपन्न और त्रस्त हो रही है। अतएव जिससे संस्कृति विपन्न न हो इसके लिये सात समुद्र तेरह नदी पार करके अमरीकी प्रजातंत्र की ध्वजाधारी 'संस्कृति' के एक मात्र अभिमानी लोग देश देश में जाकर दिन रात पहरेदारी करते घूमते हैं। यह कितना बडा परिहास है, इतिहास का कितना बडा व्यंग है, यह आज हममें से किसी के लिये भी अनजानी रहने वाली बात नहीं है। हॉवर्ड फास्ट विषयक कुछ चर्चा करने से पूर्व ही, यह भूमिका अत्यावश्यक है। क्योंकि संस्कृति की 'आदि और अकृत्रिम' पृष्ठपोषक इसी अमरीकी सरकार के निर्देश पर इसी देश के लेखक होने पर भी, फॉस्ट बहुत दिनों तक कारावास में जीवन यापन करने को बाह्य हुये है।

विश्व के प्रगतिशील साहित्य के दरबार में, अमरीका के हॉवर्ड फॉस्ट का नाम उच्चकंठसे ध्वनित हो रहा है। फॉस्ट निस्संदेह आज अमरीकाके एक श्रेठ प्रगतिशील औपन्यासिक - साहित्यिक हैं। फरीडम रोड,' 'दि अमेरिकन''सिटीजन टाम पेन,' 'माई ग्लोरियस ब्रदर्स' आदिके लेखक के रूप में उन्होंने अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण दिया है। फॉस्ट के उपन्यास मूलतः और प्रधानतः ऐतिहासिक हैं। उनकी कहानियों की पृष्ठभूमि और विषय वस्तु इतिहास का अवलंबन लेकर ही निर्मित हुई है। फॉस्ट ने वास्तविकता से दूर भागकर किसी एक काल्पनिक राज्य में आश्रय पानें के लिये नहीं, इतिहास के सत्य को कहानी के अंदर से रूपायित करने के लिये इतिहास का अवलम्बन किया है। यह रूप संवारने की चेष्टा में उन्होने देखा है, समाज सचेनन यथार्थवादी लेखक रूप में भी देखा है कि, जो इतिहास के प्रकृत नायक या महानायक हैं, वे हैं जनसाधारण। साधारण दुःख वेदना विजड़ित, वीरता से उज्जीवित, हथौडीधारी श्रमिक, हलधर किसान, गरीब खेतमजूर यही इतिहास के प्रकृत चालक हैं। फास्ट ने अपनी कहानियों के विषयवस्तु के रूपमें इतिहास का अवलम्बन इसलिये और किया है कि इतिहास के जिन पृष्ठों को जानबूझ कर छिपाया गया है उन पृष्ठों को लोगों की आँखों के सामने ले आयें। इतिहास के निर्मम सत्य और अमोघ निर्देश को स्पष्ट करकें दिखा दें। अपने देश अपने देशवासियों के प्रति गहन प्रेम और उसके साथ साथ विश्व मानवता बोध ने फास्ट के अन्दर इस ऐतिहासिक बोध, इस समाज-सचेतनता को जन्म दिया है।

हावर्ड फॉस्ट अपने स्वदेश अमेरिका को खूब प्यार करते हैं। इस प्यार मे कोई त्रुटि नहीं है। फॉस्ट के किसी एक उपन्यास के नायक ने कहा है— "This is my land; it has been so for as long as I can remember, and I think it will be so for whatever time is left to me. It is my land because it made me, it shaped me, it nourished me. The thoughts I think came from this land, and the dreams. I dream came from this land............" यह बात फॉस्ट की भी बात है। यह देश मेरा है; किन्तु जिस अमरीका को वे प्यार करते हैं वह मार्शल–ट्रूमेन–एचिसन का अमरीका नहीं है। अपने असंख्य लेखों में उन्होंने बार बार हमें बताया है कि उनके मन में आज अमरीका की दो तस्बीर हैं जो जनतन्त्री अमरीका आज ट्रूमैन द्वारा परिचालित हो, सम्पूर्ण विश्व की शांति ध्वंस करने के लिये अणुबम का जयगान गाता है, देश देश में विरोध का बीज बोता है, उस अमरीका को वे घृणा करते हैं। अपने समस्त अन्तर से घृणा करते हैं। वे उस अमरीका को प्यार करतें हैं जो प्रकृत

ज्ञान तत्व की वाणी लेकर एक दिन निर्मित होगा, वे उस अमरीका को प्यार करते हैं, जो लिंकन, जेफरसन और उनके उपन्यास के नायक गिडियन जैक्सन जैसे नीग्रो को लेकर निर्मित हो उठा था। उन्होंने अपने उपन्यास 'दि लॉस्ट फ्रन्टियर' के समर्पण-पृष्ठपर कहा है– "(पुस्तक को) समर्पित करता हूँ पिता को जिन्होंने अमरीका जो कुछ था केवल उसे ही नहीं, आगामी दिन के अपरीका को भी प्यार करना सिखाया था। " हॉवर्ड फॉस्ट वही काम कर रहे हैं, उनके लिये लिख रहे हैं अमरीका के लाखों मेहनतकश जन–साधारण के लिये, उनके पवित्र जनतान्त्रिक अधिकारों की रक्षा के लिये जो अपनी फाशिस्ट शासक श्रेणी के विरुद्ध अक्लान्त संग्राम चला रहे हैं। फॉस्ट ने उस अमरीका का स्वप्न देखा है जहाँ शोषण का अवसान हो गया है, जाति विद्वेष नहीं है, जहाँपर केवल जन–कल्याण के लिये स्वयं को नियोजित करने का आग्रह है। फॉस्ट ने इसीलिये आज अपना कंठ मिलाया है उस जनता के साथ जो आज विश्व में नये युग का सूत्रपात करना चाहती है। उन्हीं का पथ फॉस्ट का पथ है, फॉस्ट के साहित्य का पथ है। अपने उपन्यास 'फ्रीडम रोड' को उन्होंने समर्पित किया है–"उन सब मनुष्यों को काले या श्वेत, पीले या बादामी, किसी देह–वर्ण के ही वे क्यों न हों, उन सब नर नारियों को फासिज्म के विरुद्ध संग्राम में जिन्होंने प्राण दिये हैं। फास्ट की दृष्टि वास्तविक और ऐतिहासिक ह, इसीलिये उनके लिये यह बिलकुल ही बडी बात नहीं है। उनके लिये बडी बात है मनुष्य का आदर्श, मनुष्य की सच्ची मुक्ति–साधना, फाशिज्म और मानवीय अधिकार हरण के विरुद्ध मनुष्य का क्षमाहीन संग्राम।

हावर्ड फास्ट के श्रेष्ठ उपन्यासों में से निस्सन्देह "फ्रीडम रोड' श्रेष्ठतम है। इसकी कहानी सन् १८६१–१८६५ के अमरीकी गृहयुद्ध के परवर्ती कुछेक अध्यायों को लेकर बनी है। नीग्रो दासों की मुक्ति और संयुक्त राज्य की संस्कृति की बात को लेकर, लिंकन एक दिन अमरीका को गृहयुद्ध में लिप्त करने से डरे नहीं थे, सामयिक रूप से उनके आदर्श की जीत भी हुई थी। सामयिक रूप से इस कारण कि आज के अमरीका में नीग्रो–मुक्ति का वह स्वप्न न जाने कहाँ खो गया है वर्तमान के धनिकतन्त्र शासित अमरीका में, नीग्रो लोगों का जीवन तक विपन्न है। तीव्र जाति विद्वेष का प्रचार करके अमरीका का शासक–शोषक वर्ग, वहाँ के जन साधारण को एक गहरे नरक के कीचड में घसीट ले जाकर गिरा देना चाहता है। किन्तु ऐसा क्यों हुआ ? इस परिवर्तन का बीज कहाँ छुपा हुआ था, किस रूप में, इसी का संकेत फॉस्ट ने अपने उपन्यास 'फ्रीडम रोड' मे किया है।

गृहयुद्ध इस समय बिलकुल समाप्त हो गया था, संयुक्त राज्य के उत्तरी देशों के साथ दक्षिण के कपास बागानों के मालिकों का युद्ध। इस युद्ध में लिंकन ने जीत हासिल की, संयुक्त राज्य को और भी दृढ रूप में सम्बद्ध किया, इस युद्ध के फलस्वरूप दासप्रथा का लोप हुआ, नीग्रो लोगों की स्वाधीनता का अधिकार स्वीकृत हुआ; और यह इसलिए संमत हुआ कि इस युद्ध में राष्ट्रीय सेना में नीग्रो लोगों ने अगणित संख्या में योग दिया। युद्ध की समाप्ति पर नये शासन तंत्र के गठन का कार्य शुरू हुआ। आगे बढकर आये नीग्रो लोग जो अभीतक मनुष्य ही न माने जाते थे। आगे बढकर आया गिडियन जैक्सन, साऊथ कैरोलिना के एक अंश नीग्रो लोगों का मुखपात्र बनकर। गिडियन जैक्सन हावर्ड फास्ट की अविकृत सृष्टि है। स्वाधीनता और गणतंत्र की आकांक्षा मनुष्य को किस महत्व तक उठा सकती है, यह विशाल धैयधारी नीग्रो मनुष्य इसी की पूर्णाग तस्वीर है। जैक्सन नीग्रो है अधिक लिखना पढ़ना नहीं जानता, कायदे-कानून के दाँव-पेंच नहीं जानता, किन्तु फिरभी उसे साहस मिलता है, उसके आसपास जो लोग रहते हैं, जो उसके आजीवन के साथी है, जो उग्रीके कर्म-संगी है, ऐसे गरीब सफेद चमडेवाले खेत मजदूर एबनर स्पाइट जैसे लोग भी हैं। यही उसे सहारा देते हैं, यही उसे विधान परिषद में भेज देते हैं। समय आगे बढ़ता है। बागानों कें मालिक धीरे धीरे दल बांधते रहते हैं, प्लांटर्स लोगों की बैठक होती है, कभी गुप्त और कभी प्रकाश्य रूप से। वे ठीक करते हैं कि वे फिर से क्षमता का पुनरुद्धार करेंगे, मुक्त नीग्रो लोगों को फिर सेठ चाबुक के नीचे ले आयेंगे, मनुष्य के अधिकारों की सनद को वे टुकडे कर फाड फेकेंगे। अत्यन्त हीन किन्तु सर्वनाशी इस प्रक्रिया का अनिवार्य प्रकट रूप दिखाई देता है श्वेत नकाबधारी आतंकवादी क्लू क्लक्स क्लान दल में। संयुक्त राज्य की दिशा दिशा में वे सर उठाते हैं और नीग्रो लोगों की कष्ट से प्राप्त

स्वाधीनता छीन लेते हैं। नीग्रो लोगों की स्वाधीनता का अधिकार कागज कलम से स्वीकृत हुआ है, किन्तु उससे क्या ? अमरीका का शासक वर्ग तो सच सच ही मनुष्यों का समान अधिकार नहीं चाहता। प्लान्टरों के हाथों से जिन्होंने क्षमता छीन ली है, जिन्होंने उन्नततर यांत्रिक सभ्यता का सूत्रपात किया है। वे बनिये हैं, नये युग के सौदागर। अतएव वे शोषण को अव्याहत ही रखना चाहते हैं, श्रेणीभेद को भी बचाये रखना चाहते हैं। और इसलिये ही आतंकवादियों के अत्याचार बढ़ते ही चले गये। राष्ट्रयन्त्र के हर कलपुर्जे में क्लु क्लूक्स क्लान की गुप्त शाखा-प्रशाखायें उभर उठीं। शासक श्रेणी निर्विकार रही। 'फ्रीडम रोड' जंक्शन के कंधे से कंधा भिडाकर हाथ में बंदूक लेकर सफेद चमडी वाला गरीब किसान एबनर स्पाइट है। मनुष्य के रूप में मनुष्य का अधिकृत महत्व दिखाया गया है। फिर भी प्रतिक्रिया की जीत हुई। शासक वर्ग निर्विकार रहा। आज जो अमरीका में नीग्रो लिंचिग की खबरें हम पाते हैं, आज हम जो सुतते हैं कि अमरीका में 'काले आदमी' (जिनमें भारतवासी भी शामिल हैं) लोगों को बडे होटलों में घुसने नही दिया जाता, साईन बोर्ड लटकता है-'कुत्तों और नीग्रो लोगों को भीतर आने का अधिकार नहीं," आज जो अखबार में पढते हैं कि पॉल रॉब्सन की गान सभा गुण्डों द्वारा भंग करा दी जाती हैं, मिथ्या अपराधों पर नीग्रो लोगों को प्राणदण्ड से दण्डित से किया जाता है तो इसका कारण खोजने में क्या हमें बहुत देर लगती है ?

हॉवर्ड फॉस्ट स्वाधीनता के पुजारी हैं, अतएव जहाँ भी उन्होंने देखा है कि साधारण मनुष्य स्वाधीनता की रक्षा के लिये संग्राम कर रहा है या उसने किया है, वहीं वे अपने को रोक नहीं सके हैं उसके प्रति अपना अभिनंदन प्रकट करने से। उनके "लास्ट फ्रन्टियर" की कहानी इसी स्वाधीनता रक्षा की ही कहानी है, स्वदेश की मिट्टी के प्रति मनुष्य के गहरे प्यार की कहानी है। इस उपन्यास में, एक कहानी के भीतर लेखक ने अमरीकी शासक वर्ग का और एक कुत्सित रूप, हमलावर का रूप दिखाया है। कहानी में दिखाया गया है कि 'रेड इंडियनों' के एक दल को अपने स्वदेश से हटा ले जाकर, ओकाहामा अंचल में 'सभ्य करने' के लिये रखा गया है। साधु प्रचेष्टा है, संदेह नहीं। किन्तु ओकाहामा की उत्तप्त जलवायु और धूलि धूसर प्राकृतिक वातावरण रेड इंडियनों को सहन नहीं होता; काले पहाड के उस पार शीतल छाया है, शान्त देश है, उनकी अपनी मातृभूमि का दुर्निवार आकर्षण उन्हें निरन्तर हाथ उठाकर बुलाता है। अन्त में एक दिन वे छिपकर निकल पडते हैं–केवल तीनसौ व्यक्ति, सरल प्राण, मिट्टी की सन्तान आदि अधिवासी रेड इंडियन। तत्क्षण ही खबर फैल जाती है, जनरल क्रुक के आधीन दस हजार सुशिक्षित सैनिक सामरिक साजसज्जा और योजना लेकर निकल पडते हैं। तीन महीनों के बाद मुट्ठीभर बलहीन कुछेक बचे खुचे रेड इंडियनों को पकड पाते हैं; वहाँ भी वे जेल तोडकर भागने की चेष्टा करते हैं; तब उनमें से प्रत्येक को, शिशु, स्त्री, वृद्ध प्रत्येक को गोली से उडा दिया जाता है; ज्योत्ना–आलोकित तुषार के ऊपर गोलियों और संगीनों से बिंधी हुई कंकालों की कुछेक लाशें ठंढ से कठोर होती हुई अमरीका की उन्नत सभ्यता की जय घोषणा करती रहती हैं।

फॉस्ट का 'माई ग्लोरियस ब्रदर्स' नामक उपन्यास अमरीका की पृष्ठभूमि पर नहीं लिखा गया, किन्तु इसका भी मूल उपादान स्वाधीनता संग्राम–अपनी धरती के लिये रक्तदानका गौरवोज्ज्वल इतिहास है। ईसा से लगभग दो शताब्दी पूर्व, किस प्रकार पॅलेस्टाईन के मुट्ठीभर यहूदी किसानों के एक दल ने सीरियल और ग्रीक साम्राज्यवाद के आक्रमण से किस वीरत्व के साथ रक्षा की थी, उसी जनयुद्ध की कहानी इस उपन्यास में हिब्रू भाषा के आन्दोलित कर देनेवाले छन्दो में कही गयी है। पुस्तक उन्होंनें समर्पित की है–"उन सब यहूदी और अन्यान्य सम्प्रदायों के लोगों को, जिन्होंने मनुष्य की स्वाधीनता और महत्ता की रक्षा के उस प्राचीन और असमाप्त संग्राम में जीवन दिया है। मुखबन्ध में फास्ट ने कहा है– "प्रायः तीन दशकों तक इन्होंने (यहूदियों ने) जो लडाई चलाई थी, वह प्रतिरोध या मुक्ति संग्राम के रूप में इतिहास मे लगभग अतुलनीय है।" कहानी में हम देखते हैं कि धनी यहूदी गण जिस समय शत्रु के साथ बातचीत चलाते हैं; शत्रु के आश्रम में अपने को निरापद समझते हैं, राष्ट्रीय संग्राम में बिभीषण का काम करते हैं, उसी समय संग्रामी किसान लोग प्राण प्रतिरोध उठाते हैं। सन्धिवार्ता में वे विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं कि उनके धर्मगुरु साइमन ऐडन ने उन्हें बार बार सतर्क कर

दिया था कि "स्वाधीनता का मूल्य केवल रक्त के द्वारा ही आँका जाता है" (That only in blood is the price of Freedom reckoned) अतएव उन्होंने ऐसा एक सैन्य दल गठित किया, जिसका प्रकृत नाम हो सकता है जनसेना। किन्तु इन यहूदियों का तो राजा नहीं था, उनका परिचालक कौन होता? उनका परिचालक हुआ वह जन नेता जिसे वे 'मैकाबी' कह कर पुकारते हैं। वे मैकाबी को चाहते हैं, क्योंकि "मैकाबी" और जनता अभिन्न हैं। इन जननेता द्वारा परिचालित जनसेवा का मुक्ति संग्राम फिलस्तीन की दुर्गम उपत्यकाओं, पहाडियों और वनान्तरालों में चलता जाता है और अंतमें एक महान विजय में परिणत होता है।

हॉवर्ड फॉस्ट की पुस्तक 'दि अमेरिकन' ने अनेक पाठकों की प्रशंसा प्राप्त की है। पुस्तक की विस्तृत आलोचना यहाँ पर संभव नहीं है। इस उपन्यास को एक 'ट्रेजेडी' कहा जाता है। पीतर आल्टगिल्ड इस कथानक का मूल चरित्र है। यह उपन्यास उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग में प्रारम्भ होता है। पीटर सच्चे अमरीकी की प्रतिमूर्ति हैं; अमरीका में जो कुछ भी अच्छा है, एक आत्मघाती, तुच्छ धनतान्त्रिकता के कुत्सित कवल से, उसकी रक्षा करने के लिये पीटर का संग्राम चलता है। पीटर राज्ययन्त्र और न्याय विभाग के साथ से इस सर्वनाशी धनतान्त्रिकता का रूप प्रत्यक्ष करता है—और सच्चा अमरीकी होने के नाते ही अपने विवेक के निर्देश पर, इसके विरुद्ध अपने जेहाद की घोषणा करता है, किन्तु उसे पराजय माननी पडती है, क्योंकि बिना विप्लव के पथ पर गये धनतन्त्र का उच्छेद नहीं किया जा सकता फिर भी, पीटर के चरित्र की परिणति इस दिशा में हो सकती थी, इस बात का संकेत उपन्यास में मिलता है। साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक मीटिंग में वक्तृता देते देते पीटर आल्टगिल्ड अवस्थ हो जाता है और आखिर उसकी मृत्यु हो जाती है। इस उपन्यास के इस परिच्छेद में वर्त्तमान अमरीका की शासन पद्धति, श्रमिक संगठन तोडने के लिए शासकों के घृणित षडयन्त्र, उनका नीतिहीन व्यभिचार सभी स्पष्ट रूप से कहानी की गति के साथ दिखाई देते हैं। किन्तु सभी अमरीकावासी ट्रूमन—मैकार्थर नहीं हो गये हैं, पीटर के द्वारा महान् अमरीका कहता है—"अपनी मिट्टी के लिये, विदेशी आक्रमणकारी के विरुद्ध जो युद्ध होता है वह न्याय युद्ध होता है, साम्राज्यवाद चाहे ब्रिटिश, अमरीकी, जर्मन किसी भी मार्के का क्यों न हो, उसका कुत्सित चेहरा कहीं भी देख पाने पर मै उसे धिक्कारूँगा।"

हॉवर्ड फॉस्ट के सभी उपन्यासों का परिचय देना यहाँ पर सम्भव नहीं है। केवल कुछेक कथायें भर बतलादी है। उनकी और भी अच्छी रचनाओं में से हैं-'दिचिलड्रेन,' 'दि अनवैन्क्विश्ड,' 'कन्सीन्ड इन लिबर्टी' इत्यादि। उनका उपन्यास' 'क्लार्कटन' अमरीकी श्रमिक आन्दोलन का एक परिस्फुट चित्र है। यही भर नहीं, इनका सबसे बडा मूल्य इस बात को दिखाने में है कि धनतन्त्रवाद अमरीका के नैतिक मान को किस हदतक घसीट लाया है, इसीके आसपास एक और तस्वीर भी है-साधारण मनुष्य की नैतिक बलिष्ठता से समुज्ज्वल, मेहनती जीविका के अन्न से गठित एक साहसी और उदार मानव गोष्टी की तस्वीर नये जीवन के सूर्य के उपासकों का दल, साम्यवादी संग्राम के अक्लान्त सैनिक गण।

हॉवर्ड फॉस्ट यथार्थवादी लेखक है। वे ऐतिहासिक वस्तुवाद (Materialism) में विश्वास करते हैं, अतएव वे इतिहास के प्रकृत रूप को ग्रहण कर सके हैं। फॉस्ट ने यही स्वच्छ दृष्टि लेकर अपने देश के इतिहास को दिखाया है और यह नतीजा निकाला है कि श्रेणी विहीन समाज को छोडकर और सब समाजों का ही इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। (The history of all hither to existing society is the history of class struggles.)

फास्ट की कृतियों में जो त्रुटि मालूम पड सकती है, वह है, अमरीकी बुर्जुआ अभ्युदय को उसकी प्रथम अवस्था में एक महान अभ्युदय के रूप में मान लेना। फॉस्ट की कृतियों से बीच बीच में ऐसा मालूम दे सकता है कि अमरीका का स्वाधीनता युद्ध (War of independence) वास्तव में समस्त अमरीकियों का मुक्तियुद्ध ही था। फॉस्ट की रचनाये अनेक स्थलों पर एक जैसी ही प्रतीत होती है-इसका कारण जानपडता है उनकी कहानी मे बहुत से युद्ध विग्रह की कहानियों का समावेश। किन्तु यह बहुत कुछ बाह्य जान पडने वाली बात है; क्योंकि प्रत्येक क्षेत्रमें ही फॉस्ट ने संग्रामी जनता के मनोभावों का विश्लेषण करने की चेष्टा की है। उपन्यासों के अतिरिक्त फॉस्ट ने अनेक छोटी कहानियां भी लिखीहैं, उनका परिचय भी यहां

पर नहीं दिया जा सका । फॉस्ट की रचनाशैली की सुन्दर विशेषता है सरलता और स्पष्टता में उनका कवित्व सौन्दर्य है । उनके उपमा प्रयोगों में भी यही सरलता और वास्तविकता के चिन्ह दिखाई पडते हैं ।

हॉवर्ड फॉस्ट कीं लेखनी की तीव्रताने अमरीकी साम्राज्यवादी बनियों को डरा हुआ और आतंकित बना दिया है । हॉवर्ट फॉस्ट को कारागार में बन्दी बनाकर वे उनका कंठरोध करना चाहते हैं । द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर जब देश देश में मनुष्य गणतन्त्र की लडाई को और भी व्यापकतर करने लगा, विश्वव्यापी शांति आन्दोलन उठा है उसी समय ट्रूमैंन के अमरीका में 'गैर अमरीकी कार्यकलाप जाँच कमेटी' की स्थापना हुई हैं, नित्य नये काले कानून तैयार किये जा रहे हैं, प्रगति की गति को रोक रखनें के लिए, मनुष्य के मुक्ति के स्वप्न को व्यर्थ करने के लिये । दरअसल सभ्यता या संस्कृति का कोई स्थान ही आज ट्रूमैंन की अमरीका में नहीं है । वहां आज वैज्ञानिक आईन्स्टाईन, विश्व के श्रेष्ठ हास्य अभिनेता चार्लीचैप्लिन लेखक, कलाकार अगणित सच्चे व शुभ बुद्धि सम्पन्न तमाम लोग ही गैर अमरीकी है– सभी आसामी है, सभी अभियुक्त हैं । आज रोटी के लिये एक बात कहना, अपने अस्तित्व को बचायें रखने के लिये एक बात कहना, जीवन और शांति के लिये बात कहना ही अपराध है, गैर अमरीकी है– Un-American फॉस्ट ने गैर अमरीकी की परिभाषा की है:– " This struggle, which is very basic struggle, Yowr Honour, a struggle for bread and warmth, for life itself, is called an un-American struggle and treason toward a country which welcomed them with open arms"– The American. किन्तु वहांपर यह सब अपराध होने पर भी, दिन प्रतिदिन जघन्य गल्प–उपन्यास, अश्लील फिल्म प्रकाशित करके मनुष्य की रुचि को विकृत करना, दिनरात नयें से नये उपाय से सोवियट के विरुद्ध कुत्सित प्रचार करके संघर्षशील मानव का निभ्रान्त करना बिल्कुल ही अपराध नहीं है । अतएव यह बिल्कुल ही अप्रत्याशित नहीं है कि हॉवर्ड फॉस्ट जैसे तरुण और प्रतिभाशाली अमरीकी लेखक को अमरीकी कारागार में दिन काटने पड रहे हैं । फास्ट का कण्ठ अवश्य रुद्ध नहीं हुआ, विश्व के प्रगतिशील पाठकों के पास तक उनका कण्ठ स्वर पहुँचा है और उपयुक्त रूप से ही अभिनंदित हुआ है । इसीलिये लैटिन अमरीका के कवि पैब्लो नेरुदा ने हॉवर्ड फॉस्ट को उद्देश करके कहा है:–

"Those of us who love you are in all lands
We see in you the figure of the people
We hear in your voice chords not to be muted
We march towards peace with you and with your people
Your face is a banner that we see from your prison, and we follow the steps of "each jailor"
By your example we will grow
We will be a multitude upon the earth
Our energy will be an ocean's infinity,
Today's prisons will be tomorrow's victory'.

अवनीन्द्र की कला-साधना

श्री· मन्मथनाथ गुप्त

अवनीन्द्र प्रतिभा के उन वरपुत्रों में थे जिन्होंने भारतीय कला में एक नये युग का प्रवर्तन किया। अक्सर प्रतिभावानों की कला-साधना का इतिहास लोकचक्षु के अन्तराल में रह जाता है परन्तु यह सोभाग्य की बात है कि अवनीन्द्र की कला साधना का इतिहास हमें बहुत कुछ मालूम है।

उसके ब्योरे में जाने के पहले संक्षेप में यह बता दिया जाय कि भारतीय कला जगत में अवनीन्द्र का स्थान क्या है। श्री नेहरू ने 'भारत का आविष्कार' नाम से एक ग्रन्थ लिखा है। उनका मतलब शायद पाश्चात्य जगत के सम्मुख भारत के आविष्कार से था, क्योंकि उनकी पुस्तक भारत के बाहर के जगत को सम्बोधित करके लिखी गई है। जो कुछ भी हो, नेहरू किसी भी अर्थ में भारत के आविष्कारक नहीं माने जा सकते। उनके सम्बन्ध में अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य जगत के सामने उन्होंने भारत को रखा, पर यह भी काम उनसे पहले हो चुका था।

जिन लोगों ने सचमुच भारत का आविष्कार किया है, भारत के पुराने स्व को खोजकर उसे नवप्रतिष्ठा देने की चेष्टा की है उसकी सूखीं हड्डियो में प्राण-प्रतिष्टा की है, उनमे अवनीन्द्र का नाम प्रमुख है। उन्होंने कलामय भारत का आविष्कार किया, अपनी पुरानी थाती को सामने रखा, और उसपर नव निर्माण कार्य करने का प्रयास किया।

जिस समय हमारे श्वेतांग शासकों की ओर से यह कहा जा रहा था कि हम में कुछ भी नहीं है, हमें पाश्चात्य जगत के सामने साष्टांग लेट जाना चाहिये; जब इस प्रकार से हमारी आत्मा का हनन हो रहा था, उस समय जिन लोगों ने हमारे भूतकाल के गोरव को लाकर हमारे सामने रखा, उन्होंने एक बहुत बडा प्रगतिशील कदम उठाया। दलित तथा पराधीन जातियों में प्राय: प्रगति का सूत्रपात पुनरुज्जीवनवाद के रूप में हुआ इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

कोई जाति अपनी शासक जाति के विरुद्ध सफलता के साथ तभी खडी हो सकती है, जबकि वह यह अनुभव करे कि वह भी कुछ है। इस भावना को उत्पन्न करने में पुनरुज्जीवनवादी विचारों ने (जिनमें अक्सर अतिरंजन भी होता था) बहुत बडा प्रारम्भिक कार्य किया। धर्म तथा विचारधारा के क्षेत्र में राजा राममोहन, महर्षि दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द आदि ने जो काम किये, साहित्य तथा कला के क्षेत्र में इसी काम को बंगाल में ठाकुर परिवार ने किया।

अवनीन्द्र कवीन्द्र रवीन्द्र के भतीजे थे। कला के क्षेत्र में नवजीवन के प्रवर्तन करने का श्रेय अवनीन्द्र को ही प्राप्त हुआ। इस दृष्टि से उनका नाम भारतीय इतिहास में अमर रहेगा। रहा यह कि अवनीन्द्र ने जो मार्ग दिखलाया, और जो बाद को चलकर बंगाल स्कूल के नामसे मशहूर हुआ, वही सर्वकाल के लिये भारतीय कला के भविष्य मार्ग को नियंत्रित करेगा। मैं इस बात को नहीं मानता। इसपर कुछ ओर कहने के पहले यह स्पस्ट करदिया जाय कि बंगाल स्कूल का अर्थ बंगाली कलाकारों से नहीं है। बंगाल-स्कूल तो अब एक शैली का नाम है, जिसके प्रतिपादको में बंगाल से बाहर के सैकडों कलाकार हैं। इसी प्रकार आधुनिक-स्कूल में जो वहुत कुछ 'एकोल दपैरी' याने पैरिस-स्कूल से प्रभावित है बहुतसे बंगाली है जैसे नैलोज मुखर्जी इत्यादि। मैंने इतना कहना इसलियें आवश्यक समझा कि कहीं कोई सधारण पाठक यह न समझ ले कि यह प्रान्तीय आधार पर कलाकारों की एक लडाई है

मैं यह समझता हूं कि बंगाल स्कूल ने अपने समय में बहुत बडा कार्य किया, हमारे लुप्त बल्कि दलित आत्म सम्मान को पुनस्थापित करनें में इस स्कूल ने बडाभारी कार्य किया, इसके अन्तर्गत लोगों ने कुछ बहुत अच्छे प्रयोग भी किये, जिनमें कईबडें सफला भी रहे, । स्वयं अवनीन्द्र ने ही 'बुद्ध ओर सुजाता', 'कच ओर देवयानी', आदि कितने ही सुन्दर चित्र बनाये।

पर इस कारण यह कहना कि भारतीय कला केवल इसी दायरे में कोल्हू के बैल की तरह घूमेगी, वह बाहर के प्रभावों को अपने पास फटकनें नहीं देगी, यह बिल्कुल गलत है। जैसे आज कोई यह कहे कि भारत केवल वर्णाश्रम के विचारों तक ही अपने दृष्टिकोण को सीमित रखेगा, और समाज रचना के नये सिद्धान्तों को नही अपनायेगा, तो वह जैसे हास्यास्पद होगा, उसी प्रकार से बंगाल-स्कूल से आगे न जानें का सिद्धान्त बहुत गलत होगा। साथ ही मै उनलोगों को बहुत ही भ्रान्त और गुमराह समझूंगा जो नये युग की नई वाणी के आवेश में यह कहते हुये पाये जाते हैं कि ऐतिहासिक रूप से भी बंगाल स्कूल ने कुछ नहीं किया। ऐसे लोगों के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि इन्होंने इतिहास को गलत ढंग से पढा है। यह कहना दूसरी बात है कि अमुक का युग ढल गया पर यह कहना कोई अर्थ नहीं रखेगा कि जिन शक्तियों ने इतिहास में बडा काम किया, उन्हे बिल्कुल अस्वीकार ही कर दिया जाय।

अवनीन्द्र का स्थान तो एक दृष्टि से और भी ऊंचा है। वे केवल एक कलाकार ही नहीं थे, साथही वे कलाकारों के गुरू भी थे। कितनेही कलाकार उनसे शिक्षा प्राप्त कर आचार्य हो गये।

उन्होंने लिखा है 'चित्र बनाना सिखाने मे कितने दिन लगते हैं? अधिक दिन नही केवल छः महीनें। मैने जो शिक्षा दी, वह इतने ही अर्से में समाप्त होगई और मैनें कलाकार बना दिये। इससे अधिक समय तो नही लगना चाहिये। जिन्हें कुछ होना जाना होता है, वे इसी अर्से में सीख जाते हैं, और जिन्हें इस बीच में कुछ होना नहीं है उन्हें चाहिये कि वे घर लौट जायें। हां, यह मैं मानता हूं कि अण्डे से बच्चे के निकलनें में बंधा हुआ समय लगता है। इसके बाद तोउड जाओ। हाँ, यदि बत्तखके के बच्चे हो, तो पानी में तैरने लगो। चित्र तो बना रहे हो। तुम इसमे मास्टर साहब क्यो करोगे। तुमने पेड की डाल को जिस रूप में देखा है उस रूप में चित्रित किया है। तुम मास्टर साहब की तरह डाल क्यों बनाओगे? तरकारी में यदि नमक अधिक पड गया तो उसे फेंककर फिर से खाना पकाओ, खीर में शक्कर कम है तो शक्कर डालो। चित्र में भी गलतियां होती हैं, उसे मिटाकर नया चित्र बनाओ। बार बार एक ही विषय कोलेकर चित्र बनाओ। मैं होता तो ऐसा ही करता। चित्र में इधर उधर सुधार कर देना या बनादेना यह कैसी शिक्षा है? जरूरत हो तो थोडा नमक या चीनी और डालो पर पेड की डाल ऐसी होगी, और टांग ऐसी ही होगी, इस प्रकार की शिक्षा देनें में मैं विश्वास नहीं करता। मैनें नन्दलाल आदि को ऐसे नहीं सिखाया है'।

इससे यह स्पष्ट है कि अवनीन्द्र अनुकरण के विरुद्ध थे, और अनुभूति पर जोर देते थे। फिर भी इस समय बंगाल स्कूल में अनुकरण का बोलबाला है, इसमे न तो इसके प्रवर्तन का दास है, और न इसीं में कोई अन्तर्निहित नुक्स है। इसका कारण यह है कि एक ओर तो इस शैली की सम्भावनायें समाप्त प्राय हैं, और दूसरा यह कि अब यह ऐसे लोगों के हाथों में आकर मुख्यता अटका है, जिन्हें अवनीन्द्र की भाषा में घर लौट जाना चाहिये था।

अवनीन्द्र की कलासाधना में हम इसी बात को प्रत्यक्ष रूप में देखते हैं कि प्रतिभा में अपरिमित मात्रा में कष्ट सहन करने की सामर्थ्य है। उन्हीं की भाषा में पहले असफलता में ही आयी। उनके बडे भाई सेन्टजेवियर में चित्रांकन विद्या सीखते थे, और इसके लिये उन्हे पुरस्कार भी मिला था। घर में कई और लोगों का झुकाव भी कला की ओर था। एक साहब हाथी के दांत पर चित्रकारी सीखते थे। वे स्वयं भी रंग और कूंची लेकर कुछ न कुछ किया करते थे, पर कोई निरन्तर अभ्यास नहीं चल रहा था। संस्कृत कालेज में एक साहब ने उन्हें लक्ष्मी, सरस्वती का चित्र बनाना सिखाया था।

जब बडे हो गये, विवाह हो गया, एक लडकी के बाप भी हो गये, तब उन्हें 'स्वप्न प्रयाण' नामक कविता के चित्रण की धुन सवार हुई। इससे जैसे उनके मनमन्दिर की चाबी खुल गई। औरभी दो एक चित्र बनाये और वे प्रकाशित हुये।

अब उनकी ही भाषा में सुनिये। मेरी भी इच्छा हुई कि मै चित्रविद्या सीखूं। उनदिनों यूरोपीय कला के अतिरिक्त कोई गति नही थी। कोई भारतीय कला का नाम भी नहीं जानता था। गिलार्डि आर्ट स्कूल के उपाध्यक्ष एक इटालियन कलाकार थे।

यह तय रहा कि उनसे उस कलाकार का परिचय करा दिया जाय। प्रति सबक २० रुपये पर तय हुआ और महीने में तीन चार सबक होते थे। वे खूब प्रेम से सीखते थे।

उन्होने उन्ही से पेड, पेड की डाल और पत्तों का चित्र बनाना सीखा । पॅलस्टेल का काम भी सीखा । तैलचित्र भी सीखा पोर्ट्रेट बनाना भी सीखा ।

'कुछ दिन बीते तो मालूम हुआ कि प्रारम्भिक शिक्षा के बाद विद्या आगे नही बढ रही है । तेल और रंग का शुरू किया, तो देखा कि इटालियन शैली पर आगे नही बढ सकते । बने हुये सरगम की तरह केवल अनुकरण से चित्र बनाना अच्छा नहीं लगा । पहले पेड पत्ते बनाने में कुछ आनन्द मिलता था । यह आनन्द अब जाता रहा । ६ महीने में स्टुडियो की सारी शिक्षा समाप्त कर सटक गया ।'

इसके बाद उन्होंने अपने घरमें स्टुडिओ बनाया और उसमें रवीन्द्रनाथ की प्रेरणा से कला साधना चलने लगी । एक दिन रवि वर्मा घर में आये तो वे घर पर नही थे, चित्रों को देखकर बता गये कि इस युवक का भविष्य अच्छा है । इसके बाद वे सी. एल पामर नामक एक अंग्रेज से तैलचित्र बनाना सीखने लगे । एक गोरा माडेल के रूप में लाया गया, तो वह ऊपर के कपडे उतारकर पेन्ट उतारने लगा । अवनीन्द्र ने उसको मना किया तो वह बोल। 'नहीं तो तुम हमें कम पैसे दोगे ।' किसी तरह उसे समझाया गया । एक मेम माडेल बनकर आई तो उसे अपना चित्र इतना पसंद आया कि वह पैसे न लेकर चित्र मांगने लगी । उसे भी किसी प्रकार समझाया गया ।

इस प्रकार यह भी विद्या समाप्त हुई, तो उन्हें बताया गया कि अब शरीरविद्या सीखनी चाहिये । एक मुर्दे का सिर चित्रित करने गये तो उसे १०६ डिगरी का बुखार चढ आया । थोडे दिन के लिये चित्र विद्या समाप्त हुई । इसके बाद वे कुछ दिनों तक मुंगेर की तरफ घूम घूम कर दृश्यों का चित्र बनाने लगे । वे इन दिनों मानसिक रूप से भटकही रहे थे कि उनके हाथों में कुछ ईरानी चित्र तथा रविवर्मा के चित्र पड गये । ये चित्र यूरोपीय चित्रों से भिन्न थे ।

यहीं से इनका प्रेरणा मिली, और उनकी दृष्टि भारत के प्राचीन चित्रों, मूर्त्तियों आदि की तरफ गईं । रवीन्द्रनाथ ने उन्हे वैष्णव पदावली पर चित्र बनाने की प्रेरणा दी । पर पहला चित्र जो 'शुक्लाभिसार' के नाम से बना । उसमें जो राधा बनी वह साडी पहनी हुई मेम साहब की तरह बनी । इसपर उन्हें निराशा हुई, और वे भारतीय चित्रकला की टेकनीक सीखने की ओर झुके । यहीं से अवनीन्द्र ने उस भारत का आविष्कार किया जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है । भारत को कला के मानचित्र पर रखवाने का श्रेय बहुत कुछ उन्हीं को है ।

आत्महन्ता

श्री 'भिक्खु'

मन्मथ और मनोज दो अभिन्न मित्र थे। मनोज मन्मथ की छाया की तरह साथ रहता, फिर भी कोई न जानता कि मनोज भी कोई है। जिस मनोज को मन्मथ की प्रेयसि रति भी नहीं जान सकी, उसे मैं जान गया, इसपर आप अचरज करें तो मुझे अचरज न होगा! मनोज को मै कैसे जान पाया, यह फिर बताऊँगा!

मनोज को छोडकर सबका विश्वास रहा है कि मन्मथ अजातशत्रु है! कोई उसका द्वेषी नहीं। कोई उसका निंदक नहीं! उसमें अहंकार नहीं, उसमें स्वार्थ नहीं! कर्म वह योगी की तरह करता है और जीवन का सामान्य भोग भोगी की तरह। वह अभी नवयुवक ही है, फिर भी बडे बूढे उसका उदाहरण दिया करते हैं! मनोज प्रशंसा का अमृत पीकर इतना छका हुआ हैं कि अब इसकी सभी इच्छाएँ संन्यास सा ले चुकी जान पडती हैं। यह बात वह सगर्व कह भी दिया करता है और उसका यह गर्व मनोज को छोडकर किसी को मिथ्या नहीं लगता।

एक दिन मन्मथ ने मनोज से कहा-तुम मुझमें सदैव लालसाएँ जगाने के लिए प्रयत्नवान हो, पर मैं कहता हूँ कि मैंने जीवन का वह रस चख लिया है जिसके बाद तृप्ति ही तृप्ति है!

मनोज ने हँसी से ताडित करते हुए कहा-तुम झूठे हो!

मन्मथ को लोग शिव भी कहते है, जिसपर असर ही नहीं होता! पर मै जानता हूं कि मनोज की प्रत्येक बातपर वह बिगड उठता है। अपना गुस्सा छिपाने की हर कोशीश उसके गुस्से को और उभाडा ही करती है। अपने क्रोध के दमन की मिथ्या चेष्टा करते हुए उसने कहा–तुम सिर्फ बुराही देखते हो!

मनोज– जो जैसा है मैं उसे वैसा ही देखता हूँ!

मन्मथ– तो मैं झूठा हूं!

मनोज– हाँ, तुम सच्चे नहीं हो! तृप्ति तुमसे दूर है!

मन्मथ– कैसे?

मनोज– तुम्हारी इच्छा अभी मरी नहीं!

मन्मथ– मेरी कौन इच्छा मरी नहीं?

मनोज– कोई भी!

मन्मथ– पर कोई एक!

मनोज– क्या रति मर गई!

'रति' मन्मथ काँप उठा। काँपते हुए स्वर में बोला– मनोज तुम बडे कठोर हो। तुम खिले हुए फूलों को सिर्फ नोचना जानते हो! लहलहाती खेती पर सिर्फ पाला बनकर पडा करते हो! रति मेरी आत्मा है! रति मेरा स्वर्ग है। रति मेरा तीर्थ है। रति मेरी स्त्री है। उसमे मेरे समस्त पाप भस्मसात हो चुके हैं! अब मैं केवल प्रणयशेष रति मे के प्रणय की तृप्ति हूँ।

मनोज अपने अट्टहास से उसे विचलित करता रहा। और जब मन्मथ का सारा प्रवाह न रुका तो कह दिया– तुम कविता अच्छी कर सकते थे मन्मथ! तुम्हारी कल्पना कम से कम भव्य है!

मन्मथ चीख उठा– तुम मेरे कमरे से निकल जाओ मनोज!

मनोज कुर्सी पर और आराम से बैठगया। और धीरे से हँसकर कह दिया– कहां जाऊं मित्र! मेरा आसन तो एकही है।

मन्मथ की आवेश में मुठ्ठियाँ बन्ध गई। वह......

आप मन्मथ को अच्छी तरह जानते रहे हैं? कदाचित् इसी से मेरा विश्वास नहीं कर रहे है! शांत मन्मथ इतना उत्तेजित हो ही नहीं सकता, यह आप का ध्रुव विश्वास है! ठीक बात है! आप अपने विश्वास की रक्षा कीजिए और मुझपर वैसे न बिगडिए जैसे मन्मथ अपने सखा मनोज पर बिगडता है! आपको शांत रखने के लिए मैंनें उसदिन की बात यहीं छोडी।

आप मन्मथ से मिलनें गए होंगे तो उसके बैरागियों के से रहन सहन से अवश्यही प्रभावित हुए होंगे!

साथही उसने अपने कमरे की दिवालों पर जो वेदवाक्य टांग रखे हैं उन्हें आपने अनेकों बार प्रशंसा से पढा होगा ! पर मनोज जाने, क्यों उनका भी मजाक उड़ाया करता, उनपर भी व्यंग किया करता !

यह मन्मथ की पूजा का समय था ! वह अपने ध्यान में लगा हुआ था । मनोज कभी उसकी मुद्रा को देखकर हँसदेता, कभी उन दीवाल पर टंगे वाक्यों का । उसके पूजा के आसन पर से उठते ही वह बोला- मन्मथ तुम जिसे जीवन की सिद्धि समझते हो वह वंचना है ! इससे तुम न यहां कुछ भोग सकोगे, न वहां कुछ पाओगे !

मन्मथ – अविश्वासी मनोज, तुम केवल संदेह के ही साधक हो !

मनोज–नहीं, विश्वास मेरा किसी से कम नहीं ! पर मैं झूठ को झूठ मानकर ही विश्वास करता हूँ !

मन्मथ–तुम्हारी दृष्टि इतनी मैली है कि दिन को भी रात समझते हो !

मनोज–हाँ रात को मैं दिन नहीं समझ सकता ! !

मन्मथ– तुम्हारा हर जबाब उल्टा होता है !

सीधी बातों का जबाब ही सीधा हो सकता है !

मन्मथ का धैर्य छूट रहा था ! उत्तर में उफ कहने को उसके होठ काँप ही रहे थे कि मनोज ने धीरेसे कहा-इधर, जरा मेरे पास आकर बैठो मित्र ! अच्छी अच्छी बातें तो अपने बारे में तुम सारी दुनिया से सुना करते ही हो ! कुछ अप्रिय बातें मुझ से भी सुन लिया करो !

मन्मथ- उफ, तुमसे छुटकारा नहीं ! कहो, क्या कहना चाहते हो !

मनोज– मन मे तुम विश्वास रखते हो !

मन्मथ– बुराई की तरह !

मनोज– बुराई को तुम पूजना चाहते हो !

मन्मथ– तुम्हारा मतलब !

मनोज– तुम्हारी पूजा ! दीवालों पर टंगे ये आदर्श वाक्य ?

मन्मथ– इनसे तुम्हें चिढ क्यों है ।

मनोज– भ्रम से चिढ होनी ही चाहिए !

ठहरो मित्र, उत्तेजित क्यों होते हो ! मुझे कुछ कहने तो दो ! तुमने इधर लिखकर टांग रखा है- अश्माभव अर्थात् पत्थर बन ! यह झूठ की कैसी पूजा है ! इन्सान अगर पत्थर बन जायगा तो पहाड चलने लगेंगे और घर बनाकर रहने लगेंगे ! धीरे धीरे उनके नगर बन जाएँगे !

मन्मन्थ– तुममें प्रतीक को समझने की अक्ल नहीं है । पत्थर इच्छा का निषेध करता है ! आदमी इच्छा को छोड दे !

मनोज- इससे पहले आदमी को जीवन छोडना होगा और तुम्हें रति !

मन्मथ– तुम रति के पीछे क्यों पडे हो ! जानते हो वह मेरी साधना है ।

मनोज- जानता हूँ कि वह तुम्हारी हर बात की कसोटी है ! तुम्हारे मन के सब झूठ उसपर कसे जाकर छिपे नहीं रह जाते ! देखो यह दूसरा झूठ है ।

मन्मथ– क्या ?

मनोज– तुमने लिखकर टांग रखा है-'जो सुख शरीर की अपेक्षा रखता है, वह मिट जायगा ! अमर सुख आत्मा की उपलब्धि है ! जिसकी छाया है वह पाप है, मिथ्या है ! जिसकी छाया नहीं, उसे ढूंढो !' यह तुम्हारी अपनी सूझ जान पडती है दोस्त ! खूब लिखा ! पर अर्थ हीन !

मन्मथ– स्थूलता में रमनेवाली तुम्हारी आँखें इसका अर्थ न देख पाएँ तो किसका दोष ! तुम छाया नहीं छोड सके, इसीसे सत्य भी नहीं पासके !

मनोज– तुमने किसी एक ने भी वह सत्य पालिया होता तो मैं छाया छोड देता ! मैं कभी की छोड दूंगा छाया मित्र, पर पहले बताओ तुम रति को छोड सकोगे !

'रति' मन्मथ के होठ हिलकर रह गए !

मनोज– क्या तुम्हारा प्यार भी स्थूलता से नहीं ! छाया छोडनेवाले शरीर से नहीं !

मन्मथ– मैंने रति को नहीं, उसके सुंदर शरीर को नहीं, उसकी आत्मा को प्यार किया है !

मनोज– वह आत्मा कभी देखी है ।

मन्मथ– उसके आचरणों में !

मनोज– और वे आचरण किसका विषय हैं प्यारे !

मन्मथ– शरीर का !

मनोज– और तुम उसी को छोडना चाहते हो ! आधार की हिंसा में लगे हो !

मन्मथ– मैं तुम्हारी बातें नहीं समझ पाता !

मनोज– समझते तो हो, पर स्वीकार नहीं कर सकते ! एक बात कहदूं, रतिको शरीर से नहीं पासके तो आत्मा को भी न पा सकोगे ! जो रस इंद्रियों से नहीं पाया जा सकता वह भ्रम है ! जो सत्य शरीर को अस्वीकार करता है, वह झूठ है ! और इस झूठ कीं साधना करते करते एक दिन तुम आत्महिंसा करोगे।

मन्मथ– तब तुम उत्सव मनाना !

मनोज– तब मैं रोऊँगा !

मन्मथ– क्यों ?

मनोज– मैं शरीर में विश्वास रखता हूं। मैं तुम्हारे बिना न रह सकूंगा ! तभी पूछता हूँ कि रति को देखने की इच्छा क्या तुममें नहीं होती भाई ! उससे मिलने की उत्सुकता क्या तुम्हें नहीं होती ! बताओ न कि तुम किसे देखना चाहते हो, तुम किससे मिलना चाहते हो ! क्या आत्मा ? क्या शरीर नहीं ! आत्मा को संपर्क की इच्छा क्यों ? वह कुछ होगी तो क्या ये आंखें देखपाती हैं। जो तुझ में आंखें देख पाती हैं, वह छाया है, शरीर है, रति की मांसलता है, उसका योवन है, पुरुष में प्यास जगानेवाला उसका स्त्रीत्व है।

मन्मथ नें चाहा कि कुछ उत्तर दे ! पर तभीं रति आगई ! मनोज जैसे अन्तर्ध्यान हो गया !

मन्मथ का मुख मलिन था ! रतिने आते ही पूछा– क्यों तुम, आज उदास क्यों हों !

मन्मथ ने पूछा– रति, बताओगी कि प्यार क्या है।

रति मुसकुराई ! उसकी कमल सी आंखें हास के रससे भरकर मन- मधुप के लिए और भी आकर्षक होगई। उसनें होठों के बिंबखिलाकर कहदिया–मैं और वे ! बस यही प्यार है।

मन्मथ– दूसरों की समझ में यह भाषा न आएगी !

रति– न समझो दूसरे ! तुम तो समझते हो न !

मन्मथ– फिर भी प्राण !

रति– दो आत्माओं का मिलन !

मन्मथ– और यह प्यार ही क्यों जाता है ?

रति– जब मन्मथ रति को देखलेता है ?

मन्मथ– रति नहीं देखती !

रति– दोनो देखते है ! दोनों आकृष्ट होते है ! दोनों प्यार करने लगते है !

मन्मथ ने अनायास ही रति की लंबी लंबी पतली अंगुलियाँ अपनेहाथों में लेलीं ? पूछा– दोनो किसे देखने हैं ! किसकी ओर आकृष्ट होते हैं। किसे प्यार करते हैं।

रति–कहा न कि रति मन्मथ को। मन्मथ रति को ! वे ही आकर्षण हैं। वे ही प्यार हैं ?

मन्मथ– और आत्मा ?

रति की कुंचित लटें पुष्ट कंधो पर से झूलकर वक्षाकर उभार लेती हुईं गोद में खेलने लगी थीं ! मन्मथ उनमें उलझता हुआ पुनः अपना प्रश्न दोहरा बैठा–और आत्मा सखि !

रति ने मुसकुराकर कह दिया–वह इन आंखों से नहीं दिखाई देती।

और मन्मथ इन आँखों से हड्डियों को सुंदर बनाने वाले मांस, मन को मत्त करनेवाले रक्त के ऊष्ण आकर्षण के अतिरिक्त कुछ नहीं देख पा रहा था ! जब रति प्यार उच्छवास सी लौट गई तो मन्मथ ने उसके रिक्त स्थान पर कुछ न देख पाकर जब आंखें बंद करलीं तो वहां केवल अंधकार ही रहगया जिसमें प्रयत्न करने पर भी वह किसी आत्मा का प्रकाश नहीं देख सका ! उसका मन आप ही प्रश्न कर बैठा– रति आत्मा है या शरीर ! रति छाया है या सत्य ! छाया ही सत्य है या....

तभी उसे लगा कि सामने कुर्सीपर बैठा हुआ मनोज उसकी विद्वत्ता पर हँस रहा है ! वह चीख कर कह भी न सका कि निकल जा मनोज !

तब से मन्मथ दिन प्रतिदिन दुबला होनें लगा ! उसके दुबलेपन का संबंध आप सदा उसकी साधना और तपस्या, मार्ग और संयम से लगाते रहे ! मै कुछ और कहूं तो आप उसके प्रशंसके होने के कारण बुरा मान जाएँगे ! अच्छा तो में कहानीं कहूं ! आप मेरी किसी बात का विश्वास न करते हुए उसे सिर्फ कहानी समझकर सुनते जाइये !

मन्मथ ५००) महीना कमाते हुए भी अमीतक

अविवाहित था! रति से उसका प्यार मनोज के अलावा कोई न जानता था, इसीसे सब उसे 'साधु-पुरुष' समझकर ही संतोष किया करते थे? अभी वह शरीर और आत्मा की गुत्थी सुलझा ही नहीं सका था कि उसके पास दूर के संबंधी की एक लडकी एम. ए में पढने वहीं चली आई! उसका नाम कामना था और वह रहती मन्मथ के साथ थी! कामना का रहन सहन सादाथा, पर इच्छाएँ उतनी सरल नही थी। मन्मथ के पास आते ही वह घर की स्वामिनी सी बन बैठी थी और हर एक काम को बडी तत्परतासे करती! वह तत्परता जैसे कामना के ऊपर चढने की सीढी थी। कामना सुंदर थी और अपनी सुंदरता के प्रति असावधान रहकर ही जैसे वह उसका प्रचार किया करती थी!

कामना और मन्मथ को साथ रहते रहते कई मास बीत गये! मनोज उनके बढते हुए मेल का पूरा ख्याल रख रहा थी? एक रात को अकेले में पाकर उसने सदा की तरह कहा—कामना सुंदर लगती है मन्मथ!

मन्मथ ने चिढ के साथ कहा—वह दूर के संबंध से मेरी बहन है!

मनोज- होगी! पर मूर्ख मेरा प्रश्न है कि कामना सुंदर लगती है।

मन्मथ- मनोज तुम ऐसी बातें करोगे तो मैं तुम्हारी हत्या कर दूंगा!

मनोज- मेरी हत्या; तुम आत्महत्या की भी सोचने लगे।

मन्मथ- धूर्तता न दिखाओ! मैं तुम्हारे प्राण ले लूंगा!

मनोज- मैं धूर्त ही सही। पर तुम मूर्ख हो! किसके प्राण लोगे। प्राण लेनेवाले तुम नहीं हो मित्र! भूलो मत प्यारे कि हमारा जीवन किसी विराट की इच्छा है! हमारी मृत्यु भी उसी विराट की इच्छा है। हम उसकी इच्छा में दखल देनेवाले कोई नहीं। मृत्यु जब आएगी तो विचार की जरूरत न रह जायगी।

मन्मथ—मृत्यु के भय ने तुम्हे दार्शनिक बना दिया।

मनोज- दार्शनिक ही सही! जाने क्यों, किसी भी सच बात को तुम रहस्य का रूप दिये बिना स्वीकार नहीं कर सकते! बताओ, कामना सुंदर है, यह स्वीकार करने में तुम डरते क्यों हो!

मन्मथ- मैं डरता नहीं! मैंने एक ही सुंदर को देखा है, वह है रति!

मनोज- पर रति की सुंदरता से तुम्हारा मतलब! रति के शरीर को नहीं आत्मा को तुमने प्यार किया है! रति तुम्हारी आत्मा है!

मन्मथ- हां, वह मेरी आत्मा है। परमात्मा है! पापी तुम भागो।

मनोज—भाग जाऊंगा! आत्मा का पुण्य तो तुमने ले लिया, शरीर का पाप मुझे देदो! रति की स्थूलता मुझे अर्पित कर दो! उसकी आत्मापर तुम अपना प्यार जीवित रखना!

मन्मथ- मुझे पागल न बना डालो! आज तुम इसी तरह बात करते रहे तो मै सचमुचही तुम्हारी हत्या कर दूंगा;

मनोज- उसे मैं विराट की इच्छा मानकर निश्चित हूं।

मन्मथ- तो तुम चले जाओ?

मनोज- कहां चलाजाऊँ मित्र! आनेवाला जाता है! मैं तो न आनेवाला हूं। इसी से न जानेवाला हूं! फिर अधूरी बात छोडकर जा भी कैसे सकता हूँ!

मन्मथ—पाप, तुम अपनी बात पूरी करो और भागो!

मनोज- मन्मथ. पुण्य के छल में तुम गिर रहे हो? तुम्हें गिरते छोडकर मैं कैसे भागूं। प्यारे रति को आत्मा समझो तो समझो! पर उसके शरीर को न भूलो! अपने शरीर को न भूलो! आत्मा को आत्मा से प्यार करो! शरीर को शरीर से प्यार करो! प्यार के फल मे बीज भी है, रस भी। तुम एक को भुला देते हो! फिर भी अपनी सिद्धि को पूर्ण समझते हो! रति यदि तुम्हारी तृप्ति है तो तुम अतृप्ति बने रहो! प्यार की पूर्णता इसी मे है! और अपनी अतृप्ति के समाधान के लिए रति के शरीर को अपने शरीर से प्यार करो।

मन्मथ परेशानी के साथ अपने स्थान पर से उठ खडा हुआ। विचलित स्वर में बोला—तुम नहीं जाते तो मैं जाता हूं! अब मेरे पीछे न आना!

मनोज- पर उधर कहां चले!

मन्मथ- कहीं भी;

मनोज- तुम ऊपर जा रहे हो!

मन्मथ- हां !

मनोज- ऊपर कामना का कमरा है !

मन्मथ- चुप रहो !

मनोज- तुम्हारा शरीर काँप रहा है !

मन्मथ- तो ! तुम बराबर मेरे पीछे आरहे हो ! देखो और आगे मत बढो !

मनोज- ऊपर स्थूलता बैठी है ! ऊपर छाया है ! ऊपर तुम्हारे शब्दों में मिथ्या है-शरीर है ! तुम अपने प्यारसे शरीर में न रमकर अन्यत्र रमने जा रहे हो !

मन्मथ- ओ ! तुम चुप नहीं रह सकते !

मनोज- बहुत चुप रहा ! बहुत दिनों से देखकर चुप रहा !

मन्मथ- तुमने क्या देखा ! बताओ क्या देखा। लो में ठहर गया ! बताओ क्या देखा ! अपनी बात पूरी कर लो मित्र और मेरा पीछा छोडो। मुझे जाने दो।

मनोज- तुम प्यार में शरीर पाने का साहस न कर सके। अब पाप में उसे खोज रहे हो !

मन्मथ- में प्यार को कलुषित नहीं कर सकता !

मनोज- प्यार की मृत्यु कर सकते हो! शरीर की वितृष्णा में अंधे मन्मथ तूने कभी जाना ही नहीं कि बिना प्यार शरीर का भोग पाप है। प्यार ने ही उसके भोग को पुण्य बनाया है ! उसी से तू परांग मुख है !

मन्मथ- तू अधम है ! मुझे किसी के शरीर का आकर्षण नहीं !

मनोज- कल रात तुम क्या कर रहे थे !

मन्मथ- क्या ?

मनोज- कामना का सिर तुम्हारे वक्ष पर था !

मन्मथ- वह दुःखी थी ! वह रो रही थी !

मनोज- और तुम्हारा वक्ष उसे सांत्वना दे रहा था ! तुम्हें रोमान्च करुणा वश हो आया था ! तुम्हारा रक्त वेदनावश उष्ण हो चली थी ? और कामना, कदाचित् तुम्हारी सहानुभूति से कृतार्थ होकर आंसुओं में भी हँस रही थी जिसे सिर्फ अंधकार ही देख रहा था।

मन्मथ- कामना एक अनाथ लडकी है ! मेरे घर मे है। मैंन उसे आश्रय दिया तो तुम्हें पाप लगा।

मनोज तुमने शरीर को आश्रय दिया और उसने शरीर की खोज में भटकती हुई तुम्हारी आत्मा को आश्रय दिया। तुम धरती पर रहे। प्यार तुम्हारा आकाश का नक्षत्र हो गया। तुम वन्चक हो मन्मथ।

मन्मथ से मनोज के सामने न ठहरा गया ! वह मुडकर तेजी से सीढियों पर चढ़ने लगा और चढते चढते जब रुका तो कामना के कमरे के दरवाजे पर ! कमरा दूसरी मंजिल पर था ! किवाड और खिडकियाँ खुली थीं ! अष्टमी के चाँद की फीकी सी चाँदनी चोर सी सहमती कमरे में घुस रही थी ! कामना असंयतसी खाटपर रूपकी ढेरी सी पडी थी ! वसन शिथिल, केश श्लथ ! 'कामना सुंदर है'-मनोज ने मन ही मन कहा! उसने खिडकी से बाहर आसमान में नजर डाली ! शुक्र नक्षत्र अंगारे सा दहक रहा था, उसे लगा, प्यार हुआ ऐसाही है। जो आकाश में ही शोभित रहेगा ! धरती तो देह में पली हैं ! कामना सचमुच कहती है ! देह है ! सुंदर है ! और रति...रति आत्मा.. पुण्य प्रकाश-

तभी मनोज ने धीरे से कहा- देह की आसक्ति।

चीख उठा- तुम यहाँतक चले आए।

मनोंज- चीखो मत मूर्ख। कामना जाग जाएगी। उसका सोते रहना ही श्रेयस्कर है।

मन्मथ- मैं तुमसे छुटकारा चाहता हूँ -

साहित्य-संदेश
का
विशेषांक प्रकाशित हो गया

आलोचना प्रधान प्रमुख मासिक-पत्र साहित्यसन्देश का इस वर्ष का विशेषांक आलोचनांक के नाम से प्रकाशित हो गया। इसमें हिंदी के माने हुए विद्वानों के गंभीर लेख है। यह पत्र हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। यह विशेषांक तो अपूर्व है। अकेलें इस अंक का मूल्य १) है। साल भर का पूरा मूल्य ४) भेजने पर इस अंक से उन्हें ग्राहक बना लिया जायगा। १९५०-५१ के वर्ष की कुछ फायलें बची हैं- मूल्य ५) पोस्टेज ।||-) विषय सूची मुफ्त मँगायें।

हिन्दी पुस्तकों का सूची पत्र मुफ्त मँगायें।

साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

मेरा पीछा न करो मनोज । सच....सच में तुम्हारी आत्मा भी कर सकता हूँ । तुम मेरे लिए असह्य हो उठे हो।

मनोज– रति के शरीर को भी प्यार करो, उसे हत्या हीं नही देह भी समझो, उसे पुण्य नहीं कर्त्तव्य भी समझो, उसे प्रकाश ही नहीं छाया भी समझो, बस मैं सत्य हो जाऊंगा ।

मन्मथ– तुम साक्षात् पाप हो ।

मनोज– ओर तुम छिपे पाप । अति भयानक । दूसरों के लिए नहीं अपनें लिए भी अति भयानक

मन्मथ– उपदेश न दो । लौट जाओ !

मनोज– आओ हम साथ ही लौटें । कामना जाग गई है । अब रुकना ठीक नहीं ।

कामना– मन्मथ ।

मन्मथ– हाँ ।

कामना– में बड़े बुरे सपने देख रही हूं । मुझे अकेले भय लग रहा है । तुम आगए में बच गई ।

मनोज– पर मन्मथ तुम न बचोगे ।

मन्मथ– फिर पाखण्ड मचाया । तो तू यों न मानेगा । अच्छा ठहर । तेरी मृत्यु मेरे ही हाथों लिखी है ।

मनोज– आत्महत्या न कर मित्र ।

मन्मथ– अब भय न दिखा । कामना ठहर । पहले इस धूर्त्त से छुटकारा पालूं । इस खिडकी से ढकेल कर इसका अंत कर दूं ।

कामना मन्मथ की वह हिंसा वृद्धि देखकर चीख के साथ बेहोश हो गई । उसकी चीख के साथ ही एक देह खिडकी से नीचे गिरकर जीवन से वंचित हो गई ।

अगले दिन सुबह होने पर मन्मय के हितैषियों को उसकी मृत्यु का पता चला । मामला साफ आत्महत्या का था । कारण कोई कुछ न जान सका । मन्मथ की आत्मा रति भी न जान सकी । रोई । आत्मा होकर शरीर के लिए रोई । कैसी माया ।

और अब में आपको मन्मथ के अभिन्न सखा मनोज के बारे में भी बता दूं । उसका परिचय मैंनें मन्मथ की डायरी से पाया था । डायरी के उन पन्नों से जिनमें उसके जीवन का अन्तर्द्वंद्व अंकित था । अंततक मन्मथ अपने मनकी सच्ची इच्छा न जान सका और वंचना के मार्ग से बढ़ते बढ़ते मृत्यु का हो गया । पर वह मनोज आज भी नहीं मरा । वह हम सबके साथ जीवित है । हमारा वैसा ही अभिन्न सखा है, वैसा ही घोर शत्रु ।

नए इंसान से तटस्थ वर्ग

श्री महेन्द्र भटनागर

[मध्यभारत के तरुण कवि और लेखक]

ओ नए इंसान !
तुमसे एक मुझको बात करनी है ।

बात वह ऐसी
कि जिसको
वर्ग के मेरे अनेकों
मर्द — औरत
वृद्ध, बच्चे, नवयुवक
सब चाहते हैं आज तुमसे पूछना !
और वह है जिन्दगी की बात !
आज से बेहतर, नई खुशहाल
प्यारी जिन्दगी की बात !

जो कि उस दिन
(याद है मुझको)
अधर में रुक गई थी;

क्योंकि तुम संघर्ष में रत थे,
विरोधी चोट से
सारे तुम्हारे अंग आहत थे;
तुम्हारे पास, पर,
उज्जवल भविष्यत् का
बडा विश्वास था,
आदमी की शक्ति का इतिहास था !
उसकी विजय का चित्र
आँखों-में उभरता था,
युगों का स्नेह
इस घायल धारित्रीपर बिखरता था !
तभी तो तुम
दमन के बादलों को चीर कर
काली मुसीबत की
भयानक रात का उर भेद कर,
अभिनय -- किरण बनकर
नए इंसाम की संज्ञा
जगत से पा रहे हो !
और उसको तुम
प्रगति -- पथ पर
सतत ले जा रहे हो !

पास मन्जिल है !
उछलता भोर का दिल है !
बडा नजदीक साहिल हैं !!

भरोसा है मुझे
तुम्हारे हर इरादे पर,
अकेली बात इतनी हैं
कि तुम कैसी नई दुनिया बनाओगे ?
हृदय में आज मेरे भी
नई रंगीन दुनिया की नई तस्वीर है,
दुनिया बदलने की प्रसवनी पीर है !
क्या तुम उसे भी देख
मुझको साथ लेकर चल सकोगे ?
क्योंकि मैं अबतक
विलग, निर्लिप्त तुमसे
मध्यवर्ती
दूर और
तटस्थ था !

दीपशिखा के आलोक तत्व

श्री शिवचन्द्र नागर

[कवि, आलोचक और संस्मरण-लेखक]

जिस प्रकार सदैव से जीवन, समाज और मानव विकासशील और गतिशील रहा है वैसे ही साहित्य भी। साहित्य के भीतर जिस युग में जो विशेष प्रवृत्ति अधिक व्यापक और प्रबल रही उसी प्रवृत्ति के नाम पर साहित्य में उस युग विशेष का नामकरण हो गया, जैसे उदाहरण के लिये द्विवेदी-युग, छायावादी-युग रहस्यवादी–युग। इस युग विशेष का अर्थ जहाँ एक ओर विशेष प्रवृत्ति की व्यापकता और प्रधानता होता है वहाँ दूसरी ओर दूसरी प्रवृत्तियों की नितान्त शून्यता नहीं होता। साहित्य तो एक जलधारा की भांति है; जैसे गंगा ही आगे चलकर हुगली हो जाती है। ऐसे ही एक युग–विशेष अपनी विशेषता को खोते खोते और अन्य किसी विशेषता को अपनाते अपनाते एक दूसरे युग में परिवर्तित हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य मे दो युगों के बीच एक विभाजक सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। छायावादी युग में भी प्रगतिवाद की, उत्कृष्ठ रचनाये हुई है और प्रगतिवादी युग में भी छायावाद की उत्कृष्ठ रचनायें होंगी।

महादेवीजी की 'दीपशिखा' निस्संदेह छायावादी युग की एक उत्कृष्ठ रचना तथा भावात्मक रहस्यवाद की एक सुंदर रस-मंजूषा है। पर फिर भी यदि हम ध्यानपूर्वक अपनी विश्लेषक दृष्टि से देखें तो जहां महादेवीजी की दीपशिखा में उनकी रहस्य साधना की स्नेह ज्योति है वहाँ दूसरी ओर एक विशेष मार्ग पर निरंतर बढनेंवाले पथिक के साहसिक तथा प्रगतिशील तत्वों के प्रकाश कण भी हैं।

प्रगतिवादी आलोंचकों ने महादेवीजी के काव्य में केवल व्यथा, वेदना और आंसू के हीं दर्शन किये है, पर उनकी व्यथा के पीछे क्या कथा है, उनकी वेदना के पीछे कौन सी भावना है और उनके आंसुओं में कौन सा रंग है; उनकी सीमित दृष्टि अपनी परिधि में यह सब कुछ नहीं भर सकी। मनुष्य के साहस, उत्साह, शक्ति और प्रेरणा को डुबा देनेंवाले अथवा छिन्न भिन्न कर देनेवाले आंसुओं में तथा मनुष्य में नवीन उत्साह, शक्ति और प्रेरणा भर देनेवाले आंसुओं का भेद भी उन्होंनें भुला दिया है। उन्होंने इस सत्य की ओर भी ध्यान नहीं दिया कि दुःख की एक अभिव्यति मनुष्य को कायर बना देती है और उसी दुःख की दूसरी अभिव्यक्ति, साहसी, वीर दृढ प्रतिज्ञ और विद्रोही। अपनी दीपशिखा के प्रथम गीत में ही महादेवीजी कहती हैं।

दीप मेरे जल अकंपित, धुल अचंचल।
स्वर प्रकंपित कर दिशायें
मीड सब भू की शिराये।
गा रहे आंधी प्रलय,
तेरे लिये ही आज मंगल।

आँधी और प्रलय से वे घबराई नहीं वल्कि उन्होंनें उसमें मंगलगान हो सुना है।

रास्ते के शूलों को देखकर वे न तो निरुत्साह ही होती और न उनके पैर ही डगमगाते। वे अपनें संकल्प पर दृढ है और तबतक चलती रहेंगी जबतक उनके चरण नवप्रभात की स्वर्णवेला को नहीं छू लेगें।

पंथ रहनें दो अपरिचित,
प्राण रहने दो अकेला।
अन्य होंगे चरण हारे,
और है जो लोटते दे,
शूल को संकल्प सारे।
दुखव्रती निर्माण उन्मद
यह अमर नापते पद,
बाँध देगें अंक संसृति से
तिमिर में स्वर्ण वेला।

अंधकार उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे तो उसे प्रकाश से जगमगाना चाहती है।

सब बुझे दीपक जला लूं।
घिर रहा तम आज दीपक
रागिनी अपनी जगा लूं।

और दीपक की ओर संकेत कर वे कहती हैं:-

112380

तेरी छाया में अमिट रंग
तेरी छाया में अमर गान
उस पार कुहर धूमिल कर से
उजला संकेत सदा झरता
चल आज तमिस्रा के उर्मिल
छोरों में स्वर्ग तरल भरता

उन्मद हँस तू।
मिट मिट बस तू।

चिनगारी का पी मधूरस तू
तेरे क्षय में दिन की उड़ान।

वे कहती हैं कि यदि प्रभात होते होते मेरा दीपक बुझ भी जाय तो कोई चिंता नहीं पर प्रभात वांछनीय है। युग के अंधकार को दूर करने के लिये उन्हे अपने अस्तित्व को मिटाने में भी तनिक संकोच नहीं।

तम में बन कर दीप सवेरा,
आंखों में भर बुझ जाऊंगी,

अंधकार से वे कभी भी आतंकित नहीं होती।

घिरती रहे रात
न पथ रुँधती ये
गहनतम शिलायें
न गति रोक पाती,
पिघल मिल दिशायें
चली मुक्त मैं ज्यों
मलय की मधुर बात।
न आंसू गिने औ,
न कांटे सँजाये।
न पगचाप दिग्भ्रांत
उच्छ्वास खोये।

मुझे भेटता हर पलक--पात में प्रात।

अभी अंधकार का कितना रास्ता शेष रह गया है यह पूछना भी उन्हे सह्य नहीं—

पूछता क्यों शेष कितनी रात?

पथ पर चलना ही, उनकी साधना है वे इधर उधर की उलझनों में नहीं पडती वे स्पष्ट कहती हैं।

मै कैसे उलझूं इति--अथ में?
गति मेरी संसृति है पथ में।

अपने मार्ग पर वे इतनी दृढ़ है कि:-

छा--भलें ले आज अग-जग
वेदना की घन---घटायें
सिहरता मेरा न लघु उर,
काँपते पग भी न मृदुतर।
ज्वाल के हों सिंधु तरलित
तुहिन विजडित मेरु शत--शत
पार कर लूंगी वही पग--चाप,
यदि कर दे निमंत्रित।

पथ के अनेको कांटों का अपने पद तलों से तथा ज्वालाओं का अपनी हंसी से स्वागत करने के उपरांत भी उन्हें यह विश्वास है कि इस पथ का पारायण अवश्य ही अनंत सुख में होगा पर फिर भी वे पूछती है कि मैंने बडे साहस से उतना मार्ग तो तय कर लिया अब बताओं--

अब कहो संदेश है क्या?
और ज्वाल विशेष है क्या?

अग्नि पथ के पार चंदन चांदनी का देश है क्या?

रास्ते की बाधाओं से वे ऊबती नहीं और न उन पर क्रुद्ध ही होती बल्कि अपने भीतर के स्नेह से उनकी कठोरता को धो डालती है—

रोके निठुर धुल,
थामें कठिन शूंल,
पथमें बिछें या हँसे व्यंगमय फूल,
सब का चरण लिख रहें
स्नेह इति हास।

थक जाने पर भी वे कहती हैं:-

आज थके चरणों ने सूनें,
तम में विद्युत लोक बसाया,
बरसाती है रेणु चाँदनी की
यह मेरी धूमिल छाया।

रास्तेपर यदि फिर शूल आ गये हैं और पैरों में छाले पड़ गये हैं तो वे कहती हैं कि:—

फिर तुमने क्यों शूल बिछाये?
इन तलवों मे गति परिमल है,
झलकों में जीवन का जल है,
इनसे मिल कांटे उड़ने को
रोयें झरने को मुस्काये।

वे वरदान भी यही मांगती हैं कि—

स्वप्न-संगी पंथ पर हो,
चाप का पाथेय भर हो,
तिमिर झंझावात ही में
खोजता इसको अमर गति की
कथा का एक स्वर हो।
यह प्रलय को भेंट कर
अपना पता ले जान।
आज दे वरदान।

वे सपनों में अवश्य विचरण करना चाहती हैं पर उनके सपनों में पराजय की कल्पना नहीं वल्कि विजय का आलोक है–

सपने जगाती आ।
शूल सहते,
फूल रहते,
मौन में निज हार कहते,
अश्रु अक्षर में पता जयका
बताती आ।
कर व्यथायें सुख कथायें,
तोड़ सीमा की प्रथायें,
प्रात के आलोक से
हर दृग सजाती आ,
उर उर बसातीं आ,
सपने जगाती आ।

उन में इस संसार के निठुर सत्यों से मुंह मोड कर भागने की पलायनवादी वृत्ति भी नहीं मिलती। यहाँ केवल नरक की कीचड ही कीचड है यह भी वे नहीं मानती उनका विश्वास है कि मनुष्य अपनी करुणा और स्नेह से इसी धरा पर स्वर्ग करा निर्माण कर सकता है, वे कहती हैं--

अब न कह जग रिक्त है यह
पंक ही से सिक्त है यह
देख तो रज में अचंचल
स्वर्ग का युवराज तेरे,
अश्रु से अभिषिक्त है यह।

उनके गीत इसी धराके हैं पर वे किरणों के आलोक रथ से आकाश को छूना चाहते है कि जिस मार्गपर चलने की आलोक कथा को उन्होंनें अपनें गीतों में व्यक्त किया है वह पथ भी शाश्वत है और इस लिये उसकी कथा भी अमर रहेगी। वे कहती हैं:–

अब धरा के गान ऊने
मचलते हैं गगन छूनें

किरण रथ दो
सुरिभ पथ दो,

और कहदो अमर मेरा हो चुका संदेश।

उनकी साधें यह बात सच है कि करूणा-जनित हैं पर फिर भी उन में संध्या-समय, वर्षा के रंगीन बादलों के से रंग है 'और विद्युत का प्रकाश है जो प्रत्येक के हृदय में बस जाता है–

साधें करूणा अंक ढली हैं,
सांध्य गगन सी रंगमयी पर
पावस सी सजला बदलीं हैं'
विद्युन के दे चरण इन्हे'
डर डर की राह बताना

उनके चरण सृजन की ओर उन्मुख रहे हैं और उन्होनें अपनी वाणी से सृजन का ही संदेश भी दिया है और हम देखते है कि कहीं कहीं दीपशिखा के गीतों में मुक्ति की सशक्त भावना भी सिहर उठी है–

कहो मत प्रलय द्वार पर रोक लेगा ?
वरद मैं मुझे कौन वरदान देगा ?
हुअ कब सुरभि के लिये फूल बंधन ?

बादलों पर लिखते हुए महादेवी जी एक साधारण कृषक के दृष्टि कोण को भी नहीं भूलती–

कहां से आये बादल काले ?
कजरारे मतवाले ?
वह जड़ता हीरों से डाली,
यह भरती मोती से बाली,
नभ कहता नयनों में बस,
रज कहती प्राण समा ले।

इन अनेकों उदाहरणों से हम देखते हैं कि मूलत: उन में कोई क्षयवादी (Decadant) निराशावादी (Pessimist) तथा प्रतिक्रियावादी (Reactionary) प्रवृत्ति नहीं है बल्कि उनका काव्य आशावादी जीवन के उज्वल आलोक से झिलमिला रहा है। यह बात सच है कि आलोक तक पहुँचने का मार्ग अंधकारमय अवश्य है पर उस अंधकार को उन्होंनें कुछ भी नहीं

समझा; उस अंधकार की छाती पर उनका पथविद्युत रेखा की भांति पार चला गया है।

यह बात भी सत्य है कि उनके काव्य में आँसु व्यथा, वेदना तथा कसक की चर्चा आई है पर महादेवी जी के लिये इनमें से कोई भी साध्य नहीं, साधनों की संज्ञा भी उन्हें नहीं दी जा सकती बल्कि वें तो उनके बढने के पथ पर, संघर्ष पर विजय के चिन्ह मात्र हैं।

यह बात भी सत्य है कि दीपशिखा की कथा शोषक और शोषित के संघर्ष की कथा नहीं, पर, तम और आलोक के शाश्वत संघर्ष की कथा अवश्य है। उसमें साम्यवादी सिद्धांतो का विवेचन नहीं, पर वह जन कल्याण की मंगल कामना से पुलकित अवश्य है। उसमें ध्वंस के शोले, मशाल और चिंगारियाँ नहीं पर सृजनात्मक, शांत और सुंदर आलोक अवश्य है। उसमें कोरे बुद्धिवादी तर्कजाल में सत्य नहीं बंधा पर निस्संदेह उसमें सत्यों का विविधरंगी व्यापक आकाश अवश्य बंदी है।

महादेवी जी ने तो युग की व्यापक व्यथा को अपने छोटे से मृण्मय दीपक के अक्षय सनेह में डुबा दिया और फिर शुद्ध आलोक बखेरती हुई जली उनकी 'दीपशिखा'। उसकी लौ में प्रगतिवादियों को धूँआ ही धूंआ दिखाई देता है पर वास्तव में सत्य यह है कि वे राजनीति के धूंआँधार चक्करों के बीच फँस कर आलोक को परखने की क्षमता भी खो बैठे हैं। सत्य के दर्शन सब को एक ही प्रकार से नहीं होते, मेरी समझ के नहीं आता कि जिस सत्य के दर्शन मार्क्स और ऐंजिलस ने किये थे उसी सत्य के दर्शन क्या किसी और को संभव नहीं? पर बात यह है कि तोते की तरह वेद पाठ करने वाले छाँदसों के लिये वेद की ऋचाओं का क्या महत्व? दुःख की बात यही है कि मार्क्स और एंजलस के अधिकतर अनुयायी ऐसे ही छाँदस हैं राजनैतिक वादों के पीछे पडकर उन्होंने जीवन के दूसरों सत्यों को—कि जिनमें भी प्रगतिशील तत्वों की अभिव्यक्ति हो सकती है— समझने के वातायन बंद कर दिये हैं। इन साहित्यिक छाँदसों के कोलाहल तथा मूर्ख पुजारियो के घंटे घड़ियाल और शंखध्वनियों के बीच महादेवीजी की दीपशीखा के स्वर खो सकते है पर आलोक नहीं।

गीत

श्री 'कुमार'

[भावुक कवि]

जिन्दगी से प्यार है तो मृत्यु का भय राह का व्यवधान हो सकता नहीं है ।

हैं खडे संकट अनेकों जिन्दगी की हर डगर पर
खिंच रहीं भय की लकीरें आज जीवन के अधर पर
मानता हूँ क्या ठिकाना इन घुमडते बादलों का
कौन जाने हँसपडे कब यह प्रलय---तूफान सर पर
किन्तु यह भी सत्य है चिरकाल से ही मुस्कुराता
जल रहा जो दीप मानव के हृदय का, वह कभी भी म्लान हो सकता नहीं है ।

है चिरन्तन सत्य जीवन का प्रगति की प्रेरणा में
बज रहा है एक ही स्वर हर मनुज की चेतना में
पंथ के हरएक पत्थर का धरम है क्रूरता ही,
है न अन्तर आदमी के दुःख--सुख में, वेदना में
हैं बँधा हरएक प्राणी स्नेह-बन्धन में प्रकृति से
प्यार जिसको है नहीं इन्सान से ही वह कभी इन्सान हो सकता नहीं है ।

आजतक विश्वास जीवन का अमर सम्बल रहा है
आज लेकिन आदमी को आदमी ही छल रहा है
तथ्य यह भी है कि लाखों बार घिर आए प्रलय-घन
जिन्दगी का कारवाँ फिर भी निरन्तर चल रहा है
छूट जाये मध्य में ही श्वास यदि तो साधना क्या ?
जो न गायक जिन्दगी के गीत का वह लेखनी का मान हो सकता नही है ।

राजकुमार का अभिषेक

श्री. आस्कर वाइल्ड

[अंग्रेजी के विश्व प्रख्यात उपन्यासकार और कहानी लेखक]

अभिषेक तिथि के पूर्व रात्रिकी बात है। राजकुमार एक सुसज्जित कमरे में अकेला बैठाथा, दरबारी गण शिष्टाचार के अनुसार अभिवादन करके अपने अपने विश्राम गृहों को चले गए थे, और उनमें कुछ, जो अबतक आचार व्यवहार में कोरे थे-उचित आदेश पानेके लिए राजप्रासाद के बड़े कमरे में एकत्रित हो रहे थे।

राजकुमार की आयु अभी केवल सोलह वर्ष की थी। दरबारियों के चलेजाने से वह तनिक भी खिन्न न था, बल्कि इतमीनान की गहरी सांस लेकर जरी के मखमली गद्दोंपर बडे आराम से लेटाहुआ था। उस समय उसके नेत्रों मे एक विचित्र प्रकार की उन्मत्तता थी और मुख खुला हुआथा-इस समय उसकी दशा, चम्पक वर्ण वन- देवता के सदृश, अथवा बहेलियों के फंदे में ताजा फँसे हुए जवान जंगली पशु की भाँति थी।

वास्तव में, बहेलियोंने ही उसे तब पाया था, जब वह अपने आपको अपने अभिभावक गडरिये का पुत्र समझता हुआ, नंग बदन, प्रतिदिन जंगल मे भेडें चराया करता था। उसके एक हाथ में बांसुरी रहती थी और दूसरे हाथ में एक पतली सी किसी जंगली लकडी की छडी। लोगों का कथन था कि बूढे महीपति की एक मात्र कन्या किसी अज्ञात व्यक्ति पर, उसके बीन बजाने के अद्भुत ढंगपर मोहित हो गई थी और यह राजकुमार, उसी के संसर्ग से जार पुत्र था। यह भी कहा जाता था कि वह नवजात बालक अपनी सोती हुई जननी की बगल से चुराया जाकर एक साधारण किसान दम्पत्ति को सौंप दिया गया था। इस दम्पत्ति की गोद अपने बच्चों से सूनी थी और वे नगर से सुदूर वन के पूर्वीय भाग में रहते थे। इधर उसकी जननी राजकुमारी की निद्रा जब भंग हुई, और अपनी संतति को बगल में खोजने पर भी नहीं पाया तो हीरे की कनी चाटकर उसने आत्महत्या करली। उधर छः दिन के शिशु को घोडेपर सवार होकर ले जानेवाला विश्वासी दूत जिस समय गडरिये के झोपडे के खुरदरे किवाडों को झकझोर रहा था, उसी समय शहर पनाह के बाहर एक एकान्त स्थान मे लगाई गई चिता पर राजकन्या का शव रखा जा रहा था। इसी श्मशान में कुछ देरपूर्व एक अपूर्व परदेशी तरुण के शव– जिसके हाथ रस्सी से पीछें बँधे थे और छाती पर कई घाव थे– मे आग लगाई गई थी, जो अभी भी जल रहा था।

यही कथा, जिसके सत्यासत्य के सम्बध में कुछ निश्चय नहीं कहा जासकता, लोग एक दूसरे से कहते थे। और अन्तमें एक वृद्ध महीपति, जब मृत्युशैया पर पडा था, तो अपने उस कृत्यपर उसे बहुत ही पश्चाताप हुआ। साथ ही राज्य की वंश-परम्परा कायम रख सकने का भी उसे ख्यालआया अत: जंगल से उस लडके को बुलवा भेजा और राज-मंत्रियों के सामने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

यद्यपि अब उसके शरीरपर से गाढे की मिरजई और कमली उतार कर फेंक दी गई थी और सुन्दर वस्त्रों और बहुमूल्य आभूषणों से वह सजाया गया था फिर भी समय समय पर अपने जंगली जीवन की सुखद स्वच्छन्दता की स्मृति उसे नहीं भूलती थी। वह राजसभा की शुष्क रीतियों से सदा ऊबा करता था। वह विराट् राजप्रासाद, जिसे लोग "आनन्द निकेतन" के नाम से अभिहित करते थे, राजकुमार को अपने लिए रचाया गया, एक अनोखा-संसार मालूम होता था। इसीलिए मंत्री–मण्डल से ज्योंही उसका पिंड छूटता, वह संगमूसा के चमकीले बडे जीने से, जिसके पीतल कें शेरों पर सोने का पानी फिराथा– कूदता हुआ नीचे उतर जाता, कमरे कमरे, बरामदे–बरामदे, इस प्रकार घूमता फिरता, मानो सौंदर्य में कोई विरही औषधि खोजरहा हो, अथवा अभिसारिका प्रेयसि की व्यग्र प्रत्याशामे संकेतस्थल में टहल रहा हो।

इससे निरुद्देश्य अन्वेषण के समय कभी कभी उसके छरहरे उन्नत वक्ष अनुचर भी साथ रहते थे। जिनमे से किसी के हाथ में गंगाजमनी डण्डी का चँवर, किसीं के हाथ में सोंने का जडाऊ गिलोरीदान और

किसी के हाथ मे जरी की पंखी होती थी। अधिकतर वह अकेला ही रहताथा। सम्भवतः किसी सहज बुद्धि के सहारे, जोएक प्रकार की दैवी प्रेरणाथी, उसे भासित हो गया था कि कलाकौशल के रहस्यों का भेदन एकाग्र में ही होना सम्भव है और सुन्दरता, बुद्धिमत्ता की भाँति अपने एकाकी उपासक से ही स्नेह करती है।

इन दिनों अनेकों अद्‌भुत बातें उसके सम्बन्ध में प्रचलित होरही थीं। कहा जाता था कि पैतृक राज गुरुने, जो उसे, राजमंत्रियों की मंत्रणा से, राजकीय कर्तव्यों की शिक्षा देने नित्य जाया करते थे, उसे एकदिन अत्यन्त भक्तिपूर्वक एक मनोहर चित्र के सामने, जो हाल ही में बाहरसे आयाथा, नत मस्तक हो, प्रणाम करते देख लिया था। उसकी यह क्रिया मानो नवीन देवताओं की उपासना का संकल्प था। एक बार घंटोंतक उसका पता ही नहीं लगा था और बहुत देर खोजने के पश्चात राजप्रासाद के उत्तरी बुर्ज की छोटी सहंचीं में किसी बहुमूल्य पन्ने मे अंकित रति देव की मूर्ति को तल्लीन सा एक टक निरखता पाया गया था। किंवदंती के अनुसार वह एक प्राचीन प्रतिमा थी, जो पत्थर का पुल बनाते समय नदी के गर्भ में मिली थी और जिसपर राजकुमारी का नाम अंकित था। एक बार समस्त रात्रि उसने एक चाँदी की किन्नरी पर चटक चाँदनी का प्रभाव मनन करनें में ही बितादी थीं।

सभी अनोखी और बहुमूल्यवस्तुओं में उसके लिए गजब की मोहनी शक्ति थी और उन्हें पाने की उत्कट लालसा से उसने अनेक सौदागरों को सुदूर देशों में भेजा था। कुछ सात समुद्र पार भाँति भाँति के वस्त्र लाने गयें थे। कुछ उन दुष्प्राप्य व्याल मणियों की चिन्ता में घने जंगलो और प्राचीन दुर्गों के खण्डहरों में गए थे, जो तमपूर्ण रजनी को प्रकाशमय कर देती है और जिनके बिना विषधर भुजंग सिर पटक पटककर प्राण दे देते हैं। कुछ राजमुक्ताओं की खोज में कजरी बन को भेजे गये थे। कुछ रेशमी और ऊनी चीजों कें लिये विभिन्न देशों को गए थे। कपड़े के व्यापारी सुन्दरतम वस्त्रों के लिए अनेक नगरों को गए थें। कासानी मखमल, चीन की अतलस, गुल्दार हाथी दाँत, चन्द्रकांत मणि, मीनाकारी के आभूषण, गोटा किनारी, कोसों तक गंध फैलानेवाले इत्र और मिट्टी के सुरंजित खिलौने लाने की भी आज्ञा दी चुकी थी।

किन्तु सबसे अधिक उसका चित्त उस पोशाख में धरा रहता था, जो वह अभिषेक के दिन पहिनने को थी। कीमखाब और जरवफ्त के वस्त्र, माणिक्य मण्डित मुकुट, मोतियों की लड़ियों से सुशोभित राजदण्ड! वस्तुतः, आजरात को जब अपने जरी के मखमली गद्दे पर लेटा हुआ गुल दस्तों में रखे हुए गुलाब और चंपा के पुष्पों के गुच्छों को, वह निहार रहा था, तो वह उन्हीं बातों की चिन्ता में लीन था। तात्कालिक चुने हुए कारीगरों के कौशल के नमूने जब कई मास पूर्वं मंत्रियों ने उसके सामने रखे थे तो उसने आज्ञा दी थी कि दिनरात काम करके वे समय पर काम पूरा करदें, तथा उपर्युक्त रत्नों की खोजमें समस्त वसुधा छान डालीजाए।

कुछ देर पश्चात्, वह अपने बिछौने से उठा, और एक ओर लाल पत्थर की चौकीपर बैठकर जिसपर अँगूरी रंग की झालरदार रेशमी गद्दीपर बाघाम्बर बिछा था, कमरे के चारों ओर दृष्टि डालने लगा। दीवार पर लगेहुए दर्पण चमक रहे थे, जिनके फरेमपर चटकीले पक्के रंगो के बेलबूटे बनेहुए थे और विविध प्रकार कें विचित्र पक्षी सौन्दर्य का विजय गीत गाते से जान पडते थे। कमरे के एक कोने में तिपाई पर एक काठ की सन्दूकची रखी थी, जिसपर हरी बनात का गिलाफ चढा था और जिसके भीतर नीलोत्पलादि सुन्दरातिसुन्दर रत्न जड़े थे। उत्तर की ओर बीचवाली खिडकी के सामने पीतल की एक सुनहरी चौकी शोभायमान थी, उसपर सोने और रूपे के कई गिलास रत्न जटित गडुआ और पन्ने की एक कटोरी थी। पलंग पर बिछे रेशमी आबी पलंगपोशपर पीले नीले कई प्रकार के फूल कढे हुए थे, मानो निद्राकुमारी के अलसी ले हाथों से खिसक पडे हों। उस पलंग के चारों पाये चाँदी के थे और उनके डंडे हाथीदांत के, उन्हीं के सहारे जरदोजी की मसहरी तनी हुई थी। पैताने में संगमरमर की एक पुतली अपनी माथेपर दर्पण लिए खडी थी। कपडछत से रंगीन काँच के तीन झाड लटक रहे थे, जिनमें बीचवाला सौ कमलोंका था और आसपासके दोनों पचास पचास के। दीवारों के ऊपरी भागों में देवताओं, रूपराशि रमणियों और विविध सुन्दर दृश्यों के चित्रों की पंक्ति, जिनके चौकटों की सुनहरी जमीन पर मीन के आसमानी रंग के बेल बूटोंकी रमणीयता का वर्णन नहीं हो सकता, शोभा की पिचकारियाँ छोड रही थीं।

खिडकी की राह बाहर देखने पर वह राजकीय देवालय के विशाल शिखरको जो, मनों की धारा पर बुलबुले की तरह तैर रहा था, और राजप्रासाद के नदी की ओर के फाटक पर ऊँघते हुए पहरेदारों को लटपटे चक्कर काटते देख सकता था। बहुत दूरपर रसाल बन में कोकिल पंचम स्वर में गान कर रही थी और केवडे, कामिनी मोलसिरी, मोतिया, और बेले के पुष्पों की सुगन्ध लेकर वायु थिरकती चली आरही थी। उसने अपनी काली काली घुंगराली केशराशि को मुखकी ओर से समेट कर पीछे को फेंका और बांसुरी उठाकर बजाने लगा। उसकी घनी पलकें झुकने लगीं, एक अनोखी शिथिलता से वह अलसाने लगा। सोन्दर्य का नशा उसपर इतना और कभी न जमा था– ऐसा उद्दाम आनन्द और कभी उसे नहीं मिलता था।

जब पहरेवालेने महल के अहाते में आधीरात का घंटा बजाया, तब उसने भी एक घंटी बजाई। तुरंत ही कई नौकर कमरे के भीतर 'आया सरकार' की आवाज लगाते हुए पहुँच गए। उन्होंने इशारा पाते ही शरीर से वस्त्र उतारे, मस्तक पर गुलाब जल छिडका। सेजपर इत्र लगाया और तकिए के इधर उधर सुगंधित पुष्पों के गुच्छ बिखराये, फिर आज्ञा पाते ही वे बाहर चले गए और राजकुमार तुरन्त ही निद्रादेवी की गोद में क्रीडा करने लगा।

नींद में उसने एक स्वप्न देखा, वह इस प्रकार था:-

"उसे मालूम हुआ, जैसे वह एक लम्बे और नीचे पटे हुए दालान मे अनेक करधों की खटपट और ठकठक के बीच में खडा है। इधर उधर लगी हुई खिडकियों से दिवाकर का धीमा आलोक भीतर आरहा था। उसने देखा कि कोरियों के कमजोर शरीर अपने अपने करधों पर झुके हुए हैं, और उनके पैर गड्डों में लटक रहे हैं। रोगीसे पीले-पीले कुछ बच्चे आंगन में खेल रहे हैं और कुछ दालान की एक ओर फटी हुई चटाई पर सोये हुई हैं। कोरी अपने बुनने के काम में व्यस्त है। उनके शरीरों पर केवल चमडी है, मांस का लेश नहीं। पतले पतले से हाथ काम करते हुए थरथरा रहे हैं। कुछ खिन्नमन स्त्रियां एक ओर मैली कुचैली दरीपर बैठी रेशम की लच्छियां खोल रही है। दालान में एक भीषण दुर्गन्धि का साम्राज्य है। वायु नाम को भी नहीं आती और दीवारें सीलन से सौंदी हुई है।

राजकुमार एक कोरी के निकट जाकर खडा हो गया और ध्यानपूर्वक उसके हाथों की सफाई को देखने लगा।

कोरी ने घूर कर उसकी ओर देखा और कहा– तू मुझे क्यों ताक रहा है? क्या तू मेरे मालिक की ओर से यहाँ तैनात किया हुआ जासूस है?

राजकुमार ने पूछा– तुम्हारे मालिक कौन है?

कोरी माथे में हाथ मारकर बडे ही उदास स्वर में बोला– "हमारे मालिक हमीं लोगों जैसे मनुष्य है। हां, उनमें और हममें इतना अन्तर अवश्य है कि वे अच्छे अच्छे वस्त्र पहिनते हैं और हमें चीथडों से तन ढांकना पडता है। वह तर-भोजन की अधिकता से रोग का शिकार बनते है और हम भोजन के अभावसे छटपटाते है।"

राजकुमार– देश स्वाधीन है, तो फिर तू किसीका गुलाम कैसे है?

कोरी ने कहा– समर काल में बलवान दुर्बलों को गुलाम बनाते हैं और शान्ति के समय में पूंजीपति और पूंजिपतियों के दल व्यापार की ओट में, गरीबों को गुलाम बनाते हैं। हमारे देश में व्यवसाय का यह नूतन विधान अपनी अनुभवहीनता के कारण हमें और भी अधिक खल रहा है। जिन्दा रहने के लिए हमें काम करना पडता है, पर हमें इतनी कम मजदूरी मिलती है कि हम मरे जाते है। दूसरों के आराम के लिए हमसे बलात् काम लिया जाता है और हठ करने पर हमारी उँगलिया काट ली जाती हैं। इन नवीन निर्दय व्यवसायियों की ज्यादतियों से जिन्हें हमने पहिले कभी नहीं देखाथा, और जो न हमारे धर्म के हैं, न हमारी जाति के है, हमारा शासक हमारी रक्षा करने में असमर्थ है। इधर हम दिनभर उनके लिए पिसते हैं, उधर वे अपनी थैलियों में अशर्फियां भरते हैं। हमारे बालक– कलेजे के टुकडे, छटाकभर दूध के बिना समय के पूर्व ही मुर्झा जाते हैं, और उधर विविध प्रकारकी मिठाइयाँ, खिलौनों और वस्त्रों से किसी का श्रृंगार सजाया जाता है। जिन्हें हम प्यार करते हैं, उनके चेहरे कठोर और कुत्सित हो जाते हैं और जिसको वे स्पर्श करते हैं, वह स्वर्ग की परी और बहिस्त की हूर को भी मात करते हैं। अंगूरों को बोते, बनाते और निचोडते हैं हम, और अंगूरी शराब का मजाक कोई दूसराही ले लेता है। अनाज भी हमी पैदा करते हैं,

और भूखों भी हमी मरते हैं। हम ऐसी जंजीरों से कसे हुए है. जो हमें दिखाई नहीं पडती । हम ऐसे गुलाम हैं, जिसे लोग स्वाधीन वतलाते हैं। हमारी गुलामी यहाँतक बढी हुई है कि जो वस्तु हम निजी तौर पर तैयार करते हैं, उसे भी वे लोग मनमाना मूल्य देकर उठा ले जाते हैं और हम जबान तक नहीं खोल सकते।"

राजकुमारने पूछा–क्यों, तुम सभी की यही अवस्था है

कोरीने उत्तर दिया– हां! जवान और अधेड, नर और नारी, बालक और वृद्ध सबकी यही गति है। पण्डे और पुरोहित पालकियों पर सवार हमारे पास से निकल जाते है, पर हमारी अवस्थापर भूलकर भी वे ध्यान नहीं देते। हमारी अन्धेरी गलियों मे जहाँ धूप कभी नहीं पहुँचती, दरिद्रता अपने क्षुधार्थ नेत्रों से हमें ताकती हुई रेंग जाती है और उसके पीछे दबे पैरों से मत्तमुख पाप अपनी लीला प्रारंभ करता है। सवेरे मुसीबत हमें जगाती है, और रातको अधमता और बेहयाई हमारे साथ बसेरा करती है। पर तुझे इन बातों के सुनने से क्या मतलब ? तू हमारी श्रेणी का नहीं है, तेरा मुख मण्डल आनन्द की ज्योतिसे प्रफुल्लित है।'

इतना कहकर वह मुह बनाते हुए फिर अपने काम मे लग गया। राजकुमार ने देखाकि वह रेशम और सोने के तारों का कपडा बुन रहा था। एक बिकट आतंक ने उसे घर दबाया। कुछ देर की निस्तब्धता के पश्चात् वह फिर कोरी से बोला–यह कौनसा वस्त्र तू बुन रहा है ?

कोरीने उत्तर दिया–हमारे राजकुमार का अभिषेक होनेवाला है, यह कपडा उसीके लिए है।

इतना सुनतेही राजकुमार निद्रामें बहुतजोर से चिल्ला उठा। देखता क्या है कि वह अपने ही कमरे में है और खिडकी से मधु वर्ण राकेश अपनी स्निग्ध ज्योति भीतर की ओर फेंक रहा है। अलसाया सा वह फिर स्वप्नदेखने लगा जो इस प्रकार था–

"वह एक बडी नौकापर बैठा हुआ है, जिसे पूरे सौ सेवक खे रहे हैं। उसके समीप ही नौका का मालिक भी बैठा हुआ है, जिसका रंग आबनूस के समान काला था। उसके सिरपर रेशमी पगडी बंधी थी। उसके हाथों में हाथीदांत का कांटा था और कानों में चांदी की बडी बडी बालियां झूल रही थीं। सेवक खुले बदन थे, केवल एक लंगोटी उनकी लज्जा निवारण कर रही थी। तेज धूप में वे पिघल रहे थे, वे अपने पतले पतले हाथों को फैलाये हुए डाँडों से पानी को काट रहे थे। खारे फेन डाँडों के फलों से छिटक रहे थे। तट से वायु का हल्कासा झकोला आया और नौकाकी विशाल तख्ते बन्दी तथा बडे भारी पाल को महीन लाल धूल ने ढक लिया। इतने में ही लुटेरोंने बर्छी लेकर इनपर आक्रमण किया, पर नौका अधिपति की एक ही गोलीने इन्हें भयभीत बना दिया। एक लुटेरे का गला बिंध गया, जिससे धडाम से वह तरंगों में जा गिरा, और उसके अन्य साथी सरपट भागकर नौ दो ग्यारह हो गए।

यहीं लंगर डालदिया गया, पाल उतर आया। एक नौकर नौकाके गोदाम में घुसा और रस्सों की एक बडी सीढी निकाल लाया, नौका अधिपति ने एक ओर उसे जल में फेंका और सिरे को लोहे की दो मेखों में बाँध दिया, फिर नौकरों में से एक सबसे कम उम्र सेवक की बेडी काट दी गई, उसके कमर में पत्थर बाँध दिया और कान नाक में मोम की डाटें लगादी। वह धीरे धीरे सीढी से उतरा और अगाध जलमें विलीन होगया। जहां उसनें गोता लगाया वहाँ कुछ बुल बुले उठे, और अन्य सेवक नौकाके पतवार के निकट बैठकर ढोलपीटने लगे। कुछ मिनटों के पश्चात गोताखोर पानीसे बाहर निकला, वह हाँफतासा सीढी से चिपट गया, उसके दाहिनें हाथ में एक मोती था। नौकरों ने उससे मोती ले लिया और उसे पीछे ढकेलदिया। इसी प्रकार वह बार बार पानी में गोता लगाता गया और प्रतिवार अपने हाथ में एक सुन्दर मोती लाता गया। अन्त में नौका अधिपतिने मोतियों को परखा और तोला। फिर हरे चमडे की एक थैली में उन्हें रख लिया।

यह देख राजकुमार कुछ बोलनें का प्रयत्न करनें लगा। पर उसके मुंह से आवाज न निकली। गोताखोर जब अन्तिमबार पानी के ऊपर आया, तो अपनी मुठ्ठी में एक ऐसा अदभुत मोती लाया, जैसा अबतक किसी के देखने में न आया था। उसकी आकृति पूर्णिमा के चाँद के समान थी, और रंग भोर के तारों से भी कुछ स्वच्छ ! पर गोताखोर के मुखपर एक विचित्र प्रकारका पीलापन था। वह ज्योंही नौका के

तख्ते पर आया, बेहोश होकर गिर गया। उसके कानों और नथनों से रक्त बहने लगा। थोडी देर तक वह तडपता रहा, फिर वह ठण्डा हो गया। सेवकों ने अपने कंधे चमकाए, और सामने पडी निर्जीव देह को उठाकर नीचे पानी में फेंक दिया।

इस करुण काण्ड से नौकापति को कुछ व्यथा, कुछ चिंता न हुई बल्कि वह हँसने लगा। मोती को देख देखकर प्रसन्न होने लगा। उसने अपना सिर झुकाया और फिर बोला– यह मोती राजकुमार के राज-दंड में लगाया जायेगा। फिर सेवकों को लंगर उठाने का संकेत किया।

राजकुमार यह देख सुनकर चीखते हुए जाग पडा। खिडकी के द्वारा प्रातःकाल की लम्बी भूरी ऊंगलियों को कुम्हलाते हुए तारों को दबोचते देखा।

कुछ देर पश्चात् वह फिर सोगया और फिर स्वप्न देखने लगा, जो इस प्रकार था –

वह एक अन्धेरे वन में घूम रहा है। इस वन मे अद्भुत प्रकारके फल और विविध प्रकार के फूल लग रहे हैं। जिधर वह जाता है, उधर ही भयंकर सर्प उसे फुफकारते है। हरे हरे तोते टेंटें करते हुए एक डाली से दूसरी डाली पर जा बैठते हैं। गर्म गर्म कीचड पर कछुए सोये हुए हैं। वृक्ष वानरों और मयूरों से भरे हुए हैं।

चलते चलते वह आखिर जंगल के सिरे पर पहुँचा। वहाँ उसने सूखी हुई नदी की तह में मनुष्यों के एक बडे समूह को काम करते देखा, चीटियों के समान वह काम में तन्मय थे। वे भूमि में गढे खोदते थे और उनमे उतर जाते थे। कुछ बडे बडे कुदालों से पत्थरों को भी काट रहे थे। कुछ इधर उधर दौड रहे थे और एक दूसरे को पुकार रहे थे। अभिप्राय यह कि एक आदमी भी निकम्मा नहीं था।

एक गुफा के अन्धकार में से मृत्यू और लोभ उन्हे ताक रहे थे। मृत्यु बोली–मैं थकगई हूं, उनमें से तीसरा मेरे हवाले करदो, तो मैं चली जाऊँ।

किन्तु लोभ ने सिर हिलाकर कहा– वे सब मेरे भृत्य है।

मृत्युने पूछा–तेरे हाथ में क्या है?

लोभ ने उत्तरदिया–मेरे पास तीन दाने अन्न के हैं, पर तुझे इनसे क्या मतलब ?

मृत्यु ने कहा–उनमें से एक–केवल एक, तुम मुझे देदो। मुझे बाग में बोना है।

लोभ बोला–मैं कुछ भी न दूंगा। फिर वस्त्रों के भीतर उसने अपना हाथ छिपालिया।

मृत्यु खिल खिलाकर हँसने लगी। फिर अपनी झोलीसे उसने एक कटोरा निकाला और पानी के एक कुण्ड में डुबोकर निकाल लिया। कटोरे से जूडी निकली, जिसके देखतेही कांप कर तीसरा आदमी ढेर हो गया। शीतज्वर उसके पीछे जारहा था और पनीले सर्प बगल बगल दौड रहे थे।

जब लोभ ने मजदूरों के समूह में से तीसरे मनुष्य को मरा देखा, तो छाती पीट पीट कर रोने लगा, वह चिल्लाकर कहने लगा– तूने मेरे सेवकों में से तीसरा खून किया। हे चाण्डाल! अब यहां सें लम्बी हो। देश के सीमान्त पर समर हो रहा हें। देख, दोनों पक्षों के सेनापति तेरा आवाहन कर रहे है। वे काले बैल की कुर्बानी करचुके, और रणस्थल की ओर अग्रसर हो रहे हैं। वे अपनी तलवारों को चमकाकर बांध चुके, और शरीर पर लोहे को कवच भी पहिन चुके। क्या मेरी यह घाटी ही तुझे पसंद है, जो तू यहां ठहरी है? तू यहां से दूर– अतिशीघ्र दूर, होजा; और कृपा कर फिर यहाँ कभी न आना।

मृत्यु ने उत्तर दिया– न आऊँगी, किन्तु जबतक तुम अनाज का एक दाना मुझे न दोगे, तबतक मैं कदापि नहीं जाने की!

पर लोभ राजी न हुआ, उसने अपनी मुठ्ठी और भी जोरों से कसली और तनकर कहा–मैं तुझे एक कण भी न दूंगा।

मृत्यु अट्टहासपूर्वक हँस पडी। एक पत्थर उठाया और बन की ओर फेंका। तब धतूरे की झाडी से ज्वाला का परिधान पहिने विषमज्वर बाहर निकला। वह मजदूरों के समूह में गया, उन्हें स्पर्श किया और वे सभी मनुष्य चल बसे जिहें उसने छू दियाथा। चलने से उसके तलवों के तले दबनेवाली घास झुलस गई।

लोभ डर के मारे कांपने लगा, शोक से उसकी मुखाकृति उदास होगई। उसने कहा–तुम निष्ठुर–महा

निष्ठुर हो । देश में घोर दुर्भिक्ष है और समस्त नदियाँ सूख गई हैं, तथा सफेद टिड्डियों के दल पश्चिम से समुद्र लाँघकर आगए हैं, वर्षा एकदम नहीं हुई है । किसान इन्द्र को कोस रहे हैं । तू वहां जा, जहां तेरी आवश्यकता है । मेरा सेवक मेरे लिए छोड दे ।

मृत्यु बोली–में तैयार हूं, पर पहिले तू अनाज का एक दाना तो मुझे दे दे ।

लोभ बोला–में तुझे अनाज का एक टूटा कण भी नहीं देने का ।

मौत फिर हँसी । मुंह में उंगलियां लगाकर वह सीटी देने लगी । तुरन्त एक नारी हवा में उडती हुई आ धमकी । उसके वस्त्र लाल थे, केशराशि सर्प के समान खुली हुई । माथे पर महामारी के दाग थे । उसके चारों ओर गिद्धों का झुण्ड मंडरा रहा था । उसने आते ही सभों को बेसुध बना दिया । अब एक भी मनुष्य जीवित न बचा ।

बेचारा लोभ निरुपायसा चीखता हुआ जंगल की ओर भाग गया । मृत्यु भी अपने लाल घोडे पर सवार होकर सरपट चली । उसकी गति हवा को भी मात कर रही थी ।

इस भयावह दृश्य को देखकर राजकुमार बिलखता हुआ बोला– वे मनुष्य कौन थे ? और किस वस्तु की खोजमें लगे हुए थे ?

उसके पीछे खडा हुआ एक मनुष्य बोला– वे सब मजदूर थे और भावी सम्राट के मुकुट के लिए माणिक्य निकाल रहे थे ।

तरुण कुमार चौक पडा और पीछे फिरकर देखा, तो एक मनुष्य तीर्थ यात्री के वेश में चांदी का दर्पण लिए खडा था ।

कुमार पीला पड गया और काँपते हुए स्वर में बोला– किस सम्राट के लिए ?

तीर्थयात्री बोला–इस दर्पण में देख । वह सम्राट तुझे दिखाई देगा । राजकुमार ने दर्पण पर नजर डाली तो उसे अपना ही मुख दिखाई पडा । वह जोर से चीखा और बिछौने से उछलकर जाग पडा । सूर्य की कमनीय किरणें कमरे को कान्तिमय बनारही थी और बाग तथा वृक्षों से पक्षियों के गाने की ध्वनि आरही थी ।

इसी समय राज्य के प्रधान प्रधान कर्मचारी और मुख्यामात्यजी राजकुमार के कमरे में उचित अभिवादन के लिए आए । सेवकोंने उस समस्त सामग्री को पहुँचाया, जो अभिषेक के लिये मँगवाई गई थी । सभी की दृष्टि उस समय राजकुमार की ओर थी और सभी यह जानने को इच्छुक थे कि वे सामग्री देखकर कितनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं ।

राजकुमार ने ध्यानपूर्वक उन समस्त वस्तुओं को देखा । वास्तव में इतनी सुन्दर पोषाक, राजमुकुट और राजदण्ड आजतक कभी किसी ने एकत्र नहीं किया था । कुमार को वे सारी वस्तुएँ सुन्दर लगीं । पर ज्योंही उसे अपने स्वप्न याद आए, वह खिन्न होगया । अतः प्रधानमंत्री से उसने कहा– यह समस्त सामान ले जाओ । मैं इसे धारण नहीं करूंगा ।

राज्य के सभी कर्मचारी इस बात को सुनकर विस्मित हो गये । उन्हें सहसा अपने कानों पर विश्वास न हुआ, किन्तु जब पुनः राजकुमार ने कडककर कहा कि ये चीजें ले जाओ, मेरी आँखों के सामने से इन्हें दूर करो । यद्यपि आज मेरे अभिषेक की शुभ घडी है, तथापि मैं इनका उपयोग नहीं करूंगा । क्योंकि विषाद के कंधे पर और व्यथा के शुष्क हाथों से मेरी यह पोषाक तैयार हुई है । माणिक्य के हृदय में खून है, मोती के हृदय में मौत । अतः तत्काल इसे मेरे सामने से हटाओ ।

यह सुनकर सब एक दूसरे की ओर ताकने लगे । साहसकर मंत्री ने इसके प्रमाण पूछे । तो उसने अपने स्वप्नों की सारी बातें स्पष्टतया सुनायीं । यह सुनकर लोग कानाफूसी करने लगे कि सचमुच यह पागल हो गया है, क्योंकि स्वप्न और है ही क्या, केवल स्वप्न है, और कल्पना केवल कल्पना है । उसमें वास्तविकता का अभाव है, अतः उसपर विश्वास करना फिजूल है । और जो लोग हमारे लिए श्रम करते हैं, उनके विषय में सोचने की हमें क्या आवश्यकता है ? बोने वाले को बिना देखें, क्या मनुष्य को रोटी नहीं खानी चाहिए ? और ग्वाले से बिना बातें किए, क्या दूध नहीं पीना चाहिए ?

राजमंत्री ने राजकुमार का एक बार और नम्रता पूर्वक अभिवादन किया और कहा–राजन् ! मेरी आपसे प्रार्थना है कि अपने इन भ्रान्त विचारों को त्याग दीजिए और यह ताज अपने सिरपर धारण कीजिए

यदि आप बादशाही वस्त्र न पहिनेंगे, तो लोग कैसे जानेंगे कि आपही महाराजाधिराज हैं ।

राजकुमार ने उनकी ओर देखा और फिर प्रश्न किया कि क्या सचमुच ऐसी बात है ? यदि मैं राज्योचित वस्त्र धारण न करूँगा, तो वे नहीं जानेंगे कि मै सम्राट हूँ ?

एक दूसरे कर्मचारी ने कहा–हाँ, वे आपको कभी भी नहीं जान पायेंगे ।

राजकुमार ने उत्तर दिया–मेरी तो धारणा इसके बिपरीत थी, पर सम्भवत: आपका कथन ही सत्य हो। पर इससे क्या ? मैं तो इन पोषाकों को कदापि स्वीकार नहीं करूँगा, और यदि आवश्यकना हो, तो मैं जैसे आया था, वैसे इस महल से जाने को भी तैयार हूँ ।

इसके पश्चात एक युवक को छोडकर जो आयु में राजकुमार से छोटा था, उसने और सभी को चले जाने का आदेश दिया । अपने साथी परिचारक को वह सखा के समान समझने लगा । स्नानकर चुकने पर उसने एक बक्सा खोला, और उसमें से गाढे की मिर्जई तथा कमली निकाली, जो उसकी पहली पोशाक थी। इसे उसने पहिन लिया और हाथ में ले लिया चरवाहे का भद्दा सोटा जिससे वह पहले भेडें चराया करता था ।

युवक सेवक, जो चकित नेत्रों से उसकी ओर देख रहा था, मुस्कराकर बोला– मालिक ! आपकी पोषाक और राजदण्ड तो मैं देख रहा हूं, किन्तु आप का ताज कहां है ?

राजकुमारने गम्ले में लगे हुए गुलाब की कटीली फुनगी तोडली और उसे मंडलाकार बनाकर अपने सिर पर रख लिया फिर बोला– देख, यही मेरा राजमुकट है ।

इसी रूप में वह कमरे से निकल, उस विशाल राजप्रासाद में गया, जहां-मंत्री, सेनापति, मुसाहिबगण और रईस लोग बैठे उसकी बाट जोहरहे थें ।

राजा को देखते ही रईस लोग हँसते हँसते बोले– राजन ! हम लोग अपने राजकुमार की प्रत्याशा कर रहे हैं और आप उन्हें भिखारी का रूप दिखा रहे हैं ।

कुछ लोग क्रुद्ध हो गए और तपाक से बोले– यह हमारे राज्य के नाम पर हँसी कराता हैं, हमारा राजा होनें के सर्वथा अयोग्य है ।

किन्तु उसने इन कटूक्तियों के उत्तर में मुंह से एक शब्द भी नहीं निकाला । केवल आगे बढ़ता गया । फिर संगमूसा की चमकीली सीढियों से नीचे उतरा और पीतल के फाटक से राजप्रासाद के बाहर निकला। यहाँ से घोडे पर सवार होकर वह भगवान के मन्दिर की ओर बढा । युवक नौकर भी उसके पीछे पीछे दौडा । आगे चलकर वह एक विशाल मैदान में पहुँचा, जहाँ लोगों की मण्डली कहकहा लगाते हुए कहने लगी- यह देखो, हमारे सम्राट का स्वाँग घोडे की पीठपर सवार होकर जारहा है ।

उसने लगाम खींचकर घोडा रोका और कहा– सम्राट का स्वांग नहीं, मैं ही सम्राट हूँ । और उन्हें तीनों स्वप्न सुनाये ।

यह सब सुनकर भीड से निकलकर एक मनुष्य आगे आया और वेदनापूर्ण शब्दों मे बोला–महाराज, क्या आप यह नहीं जानते हैं कि अमीरों की विलासिता से गरीबों का पालन होता है । आपका ठाठबाट ही हम लोगों के जीवन का सहारा है । आपका दुर्व्यसन ही हमारा चारा है । हृदयहीन मालिक के लिए काम, करना दुखद है किन्तु मजदूरों के लिए मालिक का न होना और भी अधिक चिन्तनीय है । क्या आप समझते हैं कि इन भुखमरों से हमारा पेट भरेगा ? क्या आप खरीददार से कहेंगे कि इतने ही दामों पर इसे खरीद और बेचनेवाले से कहेंगे इतने ही दामों पर इसे बेच ? मेरी समझ में तो यह बात नहीं आती । अतः आप अपने शाही वस्त्र धारण कीजिए । आपको हमसे, और हमारे कष्टों से क्या मतलब ?

राजकुमारने पूछा–क्या निर्धन और धनवान भाई नहीं हैं ?

उस मनुष्य ने उत्तर दिया–हैं क्यों नही, पर उस भाई का नाम है घातक ?

राजकुमार के नेत्रों में आँसू आगए । वह लोगों की कानाफूसी के बीच अपना घोडा बढाता हुआ मन्दिर में पहुँचा । यहाँ पुजारी ने उसे गाढे की मिर्जई और काँधे पर कमली लादे देखा तो वह आश्चर्य विभोर हो रहा और अपने उच्चासन से उठा और बोला–

''वत्स ! क्या यही बादशाही पोशाक है ? किस मुकट को मैं तुम्हारे शीशपर रखूं, और कौनसा दण्ड तुम्हारे हाथों में दूं? आज का दिन तुम्हारे लिए

आनन्द का दिन होना चाहिए, न कि विमर्श का–चिन्ता का।"

राजकुमार ने कहा–"क्या हर्ष के समय विषाद निर्मित वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए?" फिर उसने अपने तीनों स्वप्न कह सुनाए।

जब वह उसके तीनों स्वप्नों को सुन चुका तो बोला–मेरे बच्चे! मैं वृद्ध हूँ। मेरे जीवन का अब शीत काल है और मैं जानता हूँ कि संसार में अनेक अत्याचार होते हैं। भीषण लुटेरे बनवीथियों में बैठें, भोले भाले पथिकों को लूटते हैं, उनकी जान माल के प्यासे बनते हैं। सिंह, जलायशों के तटपर छाया में बैठे भूले भटके शिकार की ताक में रहते हैं और शिकार को देखते ही झपट कर चोट करते हैं। जंगली सुअर हरे भरे खेतों को नष्ट भ्रष्ट कर डालते हैं, तोते सुन्दर सुन्दर फलों को कुतर कर पकने से पहले ही चौपट कर देते हैं। लंगडे लूले नगरों की पग डंडियों पर पडे दाने दाने को बिलबिलाया करते हैं, पर कोई उनके पास, तक नहीं जाता। भिखारी घर घर घूमकर भीख मांगते हैं और गन्दे नालों के किनारे कुत्तों के साथ बैठकर खाते हैं। तो क्या तुम इन सारी बातों को संसार से मिटा सकते हो? क्या तुम अपने कोढी को अपने साथ पलंगपर सुला सकोगे और भिखारी को एक साथ थाल में बैठकर खिलाओगे? क्या सिंह तुम्हारी आज्ञा मानेंगे? और बनैले शूकर तुम्हारे इशारों को समझेंगे? जिसने कष्टों की सृष्टि की, क्या वह तुमसे अधिक बुद्धिमान नहीं है? इसीसे तुमने जो कुछ किया है, मैं उसकी प्रसंशा कदापि नहीं कर सकता। तुम्हें आदेश देता हूं कि राजप्रासाद को लौट जाओ। अपना हृदय प्रफुल्लित कर सम्राट के उपयुक्त वस्त्रों को पहिनो और सेवकों से काम लो। अन्यथा मैं तुम्हारे सिरपर मुकट नहीं रखूंगा और न मोतियों का राजदण्ड ही हाथ में दूंगा। अपने स्वप्नों को तुम भूल जाओ। इस संसार का भार एक मनुष्य के लिए बहुत भारी है, और विश्व का विषाद एक आदमी के लिए बहुत तीव्र है।"

मगर राजकुमार "छिः आप भगवान के मन्दिर में ऐसी बातें कहते हैं।" कहता हुआ, ठीक भगवान की मूर्ति के सामने जाकर खडा हो गया। फिर थोडी देर वन्दना करने के पश्चात् साष्टांग झुककर वह प्रणाम करने लगा। इसी समय राजपथ पर सहसा कोलाहल सुनाई पडने लगा और तलवारें चमकाते हुए दरबारी लोग मन्दिर के प्रांगण में आते दिखाई दिए। वे रोष से कह रहे थे–"कहाँ है वह स्वप्न देखनेवाला? वह लौंडा कहाँ है, जो सम्राट का नाम रखाता हुआ, हमारे राज्य को हँसाता है, हम उसका सीस उतारे बिना न मानेंगे।"

पर, वह तो भगवान की आराधनामें तन्मय था। उसे इस कोलाहल और दौडधूप का कतिपय ज्ञान न हुआ। झरोखों से आनेवाली सूर्य की सुनहली किरणों नें उसके शरीर को, जिस आवरण से घेर लिया था, वह उन वस्त्रों से अधिक जग मगारहा था, जो उसके अभिषेक के लिए विशेष यत्न से बनवाए गए थे। उसके पास पडा हुआ सूखा डंडा हरा हो गया था और मोतियों से भी अधिक सुन्दर फूल उसमें दिख रहे थे। उसके मुकट के काँटे लहलहा रहे थे और जरी के कामको मात कर रहे थे। गले में झूलती हुई लालगुलाब की माला मानिकों से भी अधिक लाल थी, जिनकी पंखडिया सोन के पत्तरों की मालूम होती थी।

उसके इस सौन्दर्य को देखकर ही क्रुद्ध दरबारियों की तलवारों ने मियानों का घूंघट काढ लिया। दरबारी लोग स्तुति करने लगे और समस्त मनुष्य–समुदाय अभिवादन! राजपुरोहित का मुंह उतर गया और उसका शरीर थर थर कांपने लगा। उसने कहा, आज तुम्हारे अभिषेकने मुझे भी महान कर दिया और वह राजकुमार की चरण धूलि माथे पर लगाने लगा।

यह समाचार ज्योंही सभा मण्डप में पहुँचा, कि नवल नर्तकियां आनन्द नृत्य करने लगी, और सिंह द्वार के ऊपर नौबत बजने लगी।

सहसा राजकुमार का ध्यान भंग हुआ वह मन्दिर के बाहर निकला, और जनता के बीच से राजप्रासाद की ओर चला। पर किसी का भी साहस नहीं हुआ कि उसके उद्भासित मुख–मण्डल की ओर नजर डाले, क्योंकि स्वर्गीय ज्योति से वह जाज्वल्यमान हो रहा था!

मूर्त्ति-पुजारी से

श्री 'अंचल'

[नई पीढी के तरुण भावुक कवि]

आज जाने से प्रथम मुझको जगा दो ओ पुजारी !

(१)

आज अपनी मूक प्रतिमा में भरो प्रतिकार के स्वर
अर्चना सें सुप्त थी संघर्ष में लूं जाग सत्वर
बद्ध दुख के बादलों में प्रज्ज्वलित सौदामिनी-सी
दीप्त आजीवन रहूँ मुखरित मरण की भिजिनी-सी
छोर पथ का छिप चुका दिखता न जीवन का किनारा
में भटकती यामिनी-सी खोल अन्धाकार सारा
कर कठोराघात-दे सुधि के सितारों की कटारी
आज जाने से प्रथम मुझको जगादो ओ पुजारी !

(२)

आज तुमसे हो भुरु चैतन्य का मेरा प्रथम क्षण
खो रहा जो आज मेरा पा सकेगा कौन वह धन
जागरण औ स्वप्न के मध्यान्ह में रोती पिपासा
जा रहा जब सत्य मेरा, क्या करूँगी ले दुराशा
बन्धनों का साक्षि होगा चन्द घंटों में सबेरा
एक बेपहिचान युग में मौन होगा कंठ मेरा
दो अमर साहस न यह पतवार अब छूटे तुम्हारी
आज जाने से प्रथम मुझको जगादो ओ पुचारी !

(३)

नित नयी पाऊँ व्यथा गत अर्चना का ले सहारा
दुख तरंगों के अधर चूंसे भले यह गात सारा
एक परिचयहीन सूने देश में अस्थिर अकातर
में प्रबल गतिवान झंझा सी खडी रहकर निरंतर
मै चरम गति स्रोत भरकर रख सकें जीवन अलक्षित
दो यही वर कर सकूं मैं युद्ध जीवन वे अंकपित
काँपता मन ले न जाऊँगी--यहीं कर लूं तयारी
आज जाने से प्रथम मुझको जगादो ओ पुजारी !

(४)

आज मेरी आरती की तुम कुलवदी वर्तिकायें
क्या करेंगी उस सुदृढ़ प्राचीर में जलकर शिखायें
जल गया मन्दिर हुआ वह कक्ष भी तो क्षार जलकर
तुम जहां फरियाद प्राणों की चढाते थे उमडकर
कांपती बिखरे तिमिर में दूरवासी पन्थसीमा
इन पिघलते पत्थरों का नाद पडता है न धीमा
जल रहे पाषाण मेरे जल रही प्रतिमा तुम्हारी
आज जाने से प्रथम मुझको जगादो ओ पुजारी !

(५)

आज आगत का कुहासा चीरता आलोक रोता
हो नहीं निस्तेज बिछुडन की घडी नभ व्यग्र होता
लो उठीं जय बोल नव किरणें तरणि ने नाव खोली
उल्लसित लहरें उठीं नव दीप्ति ले वातास डोली
रैन अनुनय में बिती आई विदा की लग्न विह्वल
टिक सकूं--जाऊँ न बह--इन काल स्रोतों में अचंचल
भक्ति दो, जय दो पराजित हो न उज्वलता तुम्हारी
आज जाने से प्रथम मुझको जगादो ओ पुजारी

वृत्त का केन्द्र

श्री जगदीशचन्द्र

[उदीयमान कवि]

सृष्टि का आधार सम्बल
व्यक्ति मानूं याकि मैं समष्टि मानू
आज दोनों में प्रबल गतिरोध जब है
व्यक्ति मुझको मान्य, उसकी वासनायें
मानसिक उद्वेग, अन्तर की क्रियाये
पर समष्टि भी मुझें है मान्य, नूतन चेतनायें
एक के प्रतिरूप दोनों
एक सरिता, कूल दो हैं
एक ही स्वर, राग दो हैं
जिन्दगी के सामने भी दो दिशायें
एक रेखा, एक बिन्दु
अथ किसे मैं और किसको इति कहूँ मैं
केन्द्र किसको और किसको वृत कहूँ मैं
इसलिये स्वीकार दोनों कर रहा हूँ
एक मन तो दूसरा तन
एक छोटी सी लहर है एक संगम
सहज दोनों में समन्वय हो यही है माँग युग की
मौन पृथ्वी, सृष्टि के परमाणुओं की ।

गीत

श्री देवराज दिनेश

[राजधानी के प्रमुख प्रगतिशील कवि]

जो लहर मँझधार में लहरा चुकी हो,
कूल पर आना उसे भाता नहीं है ॥

o o o o

हाल मेरी जिन्दगी का भी यही है
बन प्रबल मँझधार मस्ती से बही है
ढूँढ कोई भी न पाया थाह मेरी
रोक कोई भी न पाया राह मेरी
मैं चला जिस पंथपर तूफान आये
पर चरण मैंने सदा आगे बढ़ाये
मै प्रलय के पंथ में हँसता रहा हूँ
प्राण ! घबराना मुझे भाता नहीं है ॥

o o o o

जो अमावस की तमिस्रा में जला हो
आँधियों की लोरियों के सँग पला हो
मौन खंडहर का रहा हो मीत बनकर
दूसरों के हित जिया हो जो निरन्तर
जो जिया हो, प्यार की बनकर निशानी
कह रहा हो--रूप की मोहक कहानी
शलभ की अनुनय विनय के सामने प्रिय
व्यर्थ बुझ जाना उसे भाता नहीं है ॥

o o o o

घिर रही हों गगन में काली घटाएँ
दामिनी दिखला रही हो निज अदाएँ
चाहती हो चाँद को बन्दी बनाना
चाँद के उद्दाम यौवन को मिटाना
मेघ अगणित बार आआ कर गए हैं
चाँद ने हरबार छेड़े स्वर नए हैं
चाँदपर नूतन कला, नूतन जवानी—
वह किसी बहकाव में आता नहीं है ॥

स्वच्छ, निर्मल-प्यार !....

श्री मधुकर 'कुकरेती'

[तरुण भावुक कवि]

मिल नहीं सकता तुम्हें...
तनिक सा भी प्यार ।
'प्रेम की उल्लोल उमगित'
उर विशाल उदार ।
भिन्न है व्यापार तेरा,
चाह भी सकता भला
किस मूल्य पर फिर प्यार !
सरल उर उपहार ।
तुम !
हम सभी पर,
भार बन कर
प्रतिक्षण ही
शूल मन पर ।
श्रम पर हमारे,
अधर पर थी लटकती,
असि की दुधारी धार
हो व्यथित तब,
कह उठे सब
" निकल जाओ
देश द्रोही !
जन द्रोही !!
हो सभी तुम ।
मिल नहीं सकता तुम्हें
तनिक सा भी प्यार ।
सरल उर उपहार ।
सत्य का शोषण किया है
बुद्धि जीवी
और श्रमजीवी, सभी को
है नचाया
अर्थ की गति पर
निरन्तर. .!
क्रूर ये पण्डे, पुजारी ! ...
सदा के धर्माधिकारी ।
इहलोक में...
मरते रहें...
पिसते रहें...
घुटते रहें हम
कुछ नहीं चिन्ता इन्हें...
खुद ऐश में करते रहें बस ।
परलोक का ठेका लिया पर...
और 'बीमा' भी किया है...
भेजने का
बीत जायें सात दिन भी
क्या अरे ! चिन्ता पड़ी है
भूख से आंतें तड़कती
गुड़गुड़ाती...
हों उदर में...
पर न चिन्ता ।
मात्र इनको बस खिला, दो–
हाथ में इनको थमा,
दो चार...
चांदी के चमकतें ठीकरे ।
द्वार सुरपुर का खुला है
कुछ न फिर तो रोक होगी
बिरादर वो भी इन्हीके
वहां तो सत्कार होगा ।
उर्वशी..,रम्भा..,
वहां पर षोडषी सी अप्सरायें
मेनका भी ।
स्वयं खुद सुरराज भी
निज पार्श्व में आसन बिठा
कृत्य कृत्य होंगे,
और समझेंगे सफल
निज देह धारण
है मिली सुर की उन्हें जो ।

○ ○ ○ ●

मधुर है यह स्वप्न सुन्दर
कुछ न भ्रम है...
पर...

चैतन्य साथी !
मात्र हम तो बने रहना,
चाहते नर ।
दूर ही से नमन उनको
अमरपुर वासी वे सुर
यह धरा ही...
स्थूल...जंगम
हरित तृण युत
विपिन, सरिता
श्रृंग शोभित
है हमारा स्वर्ग ।
सर्व फल दात्री हमें यह
प्राण से भी लाडली अति ।
तब क्यों अपेक्षित...
अमरपुर हो अब हमें फिर ।
भेज दें अब हम इन्हें ही
जो कि हैं 'एजेन्ट' उनके
और पापी साथ में हो...
"अमरपुर के देवताओ !"
सुरक्षित लौटा रहे हैं...
धरा को थी यह तुम्हारी
जो धरोहर ।
शोक है,
समवेदना भी ।
शेष अब कोई नहीं
सिवा इनके
इस धरा में
जो कि हो स्वर्गाभिलाषी ।"
अब धरा ही में हमारे...
स्वर्ग का विस्तार होगा ।
मरुथलों को भी पलटकर
हरितभूमि प्रसार होगा ।
स्वर्ग की वह
कामधेनु
कल्पतरु
नन्दन विपिन सब
हमारे ही कठिन श्रम से
फलित होंगे इस मही में
भूखंड ही तब स्वर्ग होगा ।
श्रमक ही फिर बस सकेगा
इस धरा पर
अमर बनकर ।
जनशक्ति का
होगा गठन फिर
क्रान्ति का विस्फोट होगा ।
उडेगा पाषाण मग से
गतिरोध फिर तो दूर होगा ।
प्रगति की छाया लिये...
हृदय में उश्वास भरकर
सतत और निर्बाध गति से...
बढ़ सकेगा...
नियत पथ पर
पीडित धरा का
आज का नर ।
लुटा भी, अब पा सकेगा...
"स्वच्छ, निर्मल...प्यार ।

गीत

श्री राजनारायण बिसारिया

(प्रयाग के भावुक कवि)

अगरु-धूम-सी नींद उड गयी
पी ने छू भर दिये पलक रे।

१

मिलन-प्रतीक्षा की शैया पर
मैं पल पल पर जागी-सोयी,
निठुराई को देख देख कर
सचमुच बहुत बहुत मैं रोयी।
मेरी गीली गीली आँखें
अभी अभी ही तो सूखी हैं,
इनकी शबनम पोंछ ले गयी
पद-आहट की किरण झलक रे।
अगरु-धूम सी नींद उड गयी
पी ने छू भर दिये पलक रे।

२

दिनभर दर्पण के सम्मुख रह
मैंने अपने केश सँवारे,
मन भरता था नहीं, लटों को
सजा-सजा कोमल कर हारे।
फिर मेरी अखियों ने आकर
फूल-माल-सी वेणी गूथी,
मगर किसी की एक श्वासने
छितराही है अलक अलक रे।
अगरु-धूम-सी नींद उड गयी
पी ने छूभर दिये पलक रे!!

३

मैं समझी नारी की चितवन
नीची रखने की होती है,
चंचल चंचल आंख, लजीली
पलकों का घूंघट ढाती है।
पर साजन ने आकर मुझपर
जाने क्या जादू डाला है?
अब मैं अपलक देख रही हूं
ऐसे कुछ कर दिये पलक रे!
अगरु-धूम-सी नींद उड गयी
पी ने छूभर दिये पलक रे!!

तीसरी किश्त

आत्म-निर्माण की ओर

श्री रावी

[आगरा के प्रमुख कहानीकार, लघुकथाकार और लेखक]

मेरी पिछली बातोंपर आप स्वभावतया पूछने के लिए उत्सुक हो सकते हैं कि जो कुछ मैंने अभी कहा है वह क्या मेरे अनुभव में आई हुई बात है। क्या मैंने वासना का भरपूर सामना करके उसका वास्तविक रूप देखलिया है। तरुणि के रूप और यौवन का सच्चा अभिप्राय क्या मैंने जान लिया है। क्या मैं वासना-रहित निष्काम आत्मा बनगया हूं। इस प्रकार के प्रश्न यद्यपि विचारणीय बात को समझने में कुछ बाधा ही डालते हैं, फिर भी में इनके उत्तर देना पसंद करूंगा, क्योंकि में आपके अधिक से अधिक समीप आना चाहता हूँ।

में पहले कह चुका हूँ कि किसी वक्ता से यह पूछना कि जो कुछ वह कह रहा है, उसकी सचाई का उसने स्वयं अनुभव किया है या नहीं, एक बहुत गलत बात है। जब आप ऐसा प्रश्न करते हैं तब आपका तात्पर्य यह होता है कि यदि उस वक्ता ने स्वयं उस बात की सचाई का अनुभव कर लिया होगा तो वह आपको उस बातपर अधिक विश्वास दिला सकेगा और उसके साक्षात्कार की ओर आपका पथप्रदर्शन भी कर सकेगा। यह अनुकरण और अपने ऊपर अविश्वास की प्रवृति है लेकिन सच्ची बात सच ही निकलेगी, वह चाहे स्वयं अनुभव करनेवाले के मुंह से सुनी जाय, चाहे उस सचाई के प्रारम्भिक अर्द्धानुभवी साधक द्वारा सुनी जाय, चाहे किसी शब्दों को दुहरानेवाले के मुंह से सुनी जाय।

जिस अनुभव की बात मैंने ऊपर कही है, वह मेरा अनुभूत नहीं है। सोन्दर्य या आकर्षण अथवा प्रलोभन के किसी अन्य रूप को मैंने उसके वास्तविक रूप में नहीं देखा है और न उनका सच्चा अभिप्राय ही अभीतक जान पाया हूँ। मैं वासना रहित और महात्मा भी नही बन गया हूँ। लेकिन वासना, निर्धनता आदि कुछ एक रुकावटों का मैंने अपनें पैर जमा कर कुछ सामना किया है। अपने प्रारंभिक प्रयत्नों में ही मैंने देखा है कि वे यह नहीं हैं जो दीख पड़ती हैं। वे चीजें क्या हैं, में जानता; लेकिन इतना मुझे जान पडने लगा है कि उनका [illegible] और प्रभाव यह नहीं है जो मुझे अभीतक दीखता रहा है। मै कह सकता हूँ कि प्रत्येक प्रिय भी अप्रिय, सुंदर या असुंदर रूप अथवा परिस्थिति स्व-रूप-हीन दर्पण के समान है जिसमें मुझे मेरा ही प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। जब में भाग दौड में होता किसी वस्तु को पाने लिए उसके इर्द गिर्द चक्कर लगाता रहता हूँ या उससे बचने के लिए उससे दूर भागता रहता हूँ– तब मेरे भीतर का दीपक बुझा हुआ होता है और वह मुझे मेरी प्रवृत्ति के अनुसार आकर्षक अनाकर्षक, त्याज्य या ग्राह्य किंतु सदैव अंधकारपूर्ण दीख पडती है। लेकिन जब मैं उसके सामने रुककर खडा हो जाता हूँ तब मेरे भीतर का दीपक जाग उठता है और में उसमें अपनी ही सुंदर और सुख-दर्शन झांकी देखता हूँ। कुछ वर्ष पहले मेरे पास एक बाईसिकिल थी। उसका डाईनमों लैम्प तभी जलता था जब बाईसिकिल चलती रहती थी और खडी कर देने पर वह नहीं जल सकता था। में नहीं समझ पाता कि ऐसा क्यों था जब कि मेरा नया अनुभव उससे उलटा है। मेरी समझ में इस विरोधाभास का यही हल हो सकता है कि जब में किसी वस्तु के सामने जमकर खडा होता हूं तब भाग-दौड अवस्था के मुकाबले अधिक गतिशील होता हूं। किसी वासना या बाधा से बचने या भागने का विचार छोडकर उसका सामना करने में भीतर से एक नये प्रकाश और नई शक्ति का आविर्भाव होता है। यह मेरा अनुभव है। मेरा यह अनुभव पूर्ण मात्रा के अनुभव का आधा है या चौथाई मे नहीं कह सकता। यह पूरे अनुभव का सौवां-हजारवां भाग भी हो सकता है लेकिन इस अनुभव में वह

कितना भी आंशिक हो लेकिन हो चेतना तथा संकल्पपूर्ण-एक अजेय शक्ति जो बिना प्रयास ही अधिकाधि बढ़नेवाली शक्ति है।

निर्धनता और वासना ममता अथवा– वासना ममता लोकदृष्टि में एक बहुत क्रयमानित शब्द बन गया है, इसलिए उसकी जगह आप मौन-आकर्षण के उदाहरणों को में यथावसर साथ लेकर इस लेखमाला को चलाना चाहता हूँ। में समझता हूँ कि यदि टेनिस और शतरंज के उदाहरण देना बुरी बात नहीं है तो मौन आकर्षण दोनों का यथेष्ट तीखा अनुभव मैंने जीवन में किया है। दोनों से बचने के लिये बारी बारी मैंने दोनों दिशाओं में प्रयत्न किया है–धनवान होने का भी और धन से विरक्त होने का भी, अपनी प्रेयसियों को प्राप्त करने का भी और उनके आकर्षण से विरक्त होने का भी। लेकिन निर्धनता और मोन-आकर्षण से निर्बन्ध होने के लिए ये दोनों मार्ग बहुत लम्बे, कष्टसाध्य और फिरभी प्राय: असफलतामें ही विलीन होने वाले मार्ग हैं। निर्बन्धता का अर्थ किसी वस्तु की प्राप्ति या अप्राप्ति नहीं है; वह इन दोनों ही अवस्थाओं में हो सकती है। उसके बचने के दोनों मार्गों की हैसियती का कुछ अनुमान पाकर मैंने दूसरे– उसके सामने जमकर उसका मुकाबला करने के मार्ग का भी इधर कुछ अनुसरण किया है। इसने आश्चर्यजनक कार्य किया है।

दो वर्ष पहले मैंनें निर्धनता की अपनी सब से कठिन पीडा का अनुभव किया। उससे बचने के प्रयत्नों की निस्सारता का अनुमान मुझे उससमय तक कुछ हो गया था, इसलिए मैंने उसका मुकाबला करने का निश्चय किया। वैसा करते ही में निर्धनता से मुक्त हो गया। उसकी चर्चा मैंने अपनी एक पिछली लेखमाला में की है। तब से में कुछ अमीर नहीं हो गया हूं, क्योंकि अमीरी और निर्धनता से मुक्ति प्राय: दो अलग अलग वस्तुएं हैं। में अब पहले की अपेक्षा अधिक सुखपूर्वक खाता पहनता हूं और अपने अतिथि अभ्यागतों का अधिक अच्छा सत्कार करता हूं।

दूसरे पक्षों का यथोचित सम्मान और नाम-गोपन का ध्यान रखतें हुए में मोन-आकर्षण सम्बन्धी अपनी सभी प्रेम-व्यथाओं की कहानियां आपको सुना सकता हूँ। उसमें बुराई और पतन की अब कोई वस्तु मुझे नहीं दीखती। मैंने उनसे प्रेम किया है जिनके साथ मेरा पारस्परिक आकर्षण हुआ है। मैंने उनसे भी प्रेम किया है जो मुझे आकृष्ट करने में असफल रहकर भी मेरी ओर आकृष्ट हुए हैं। मैंने उनसे भी प्रेम किया है जिन्होने मुझे आकृष्ट करके मेरी ओर उपेक्षा का भाव रक्खा है। जहांतक मुझे याद है मैंने ऐसे किसी भी आकर्षण या प्रेम की उपेक्षा नहीं की। मैंने किसी आकर्षणशील लेकिन अनुत्तरदायी व्यक्ति पर अपना प्रेम लादने या या प्रेम की भीख मांगने के लिए भी हाथ नहीं बढाया। अपने जीवन का सबसे पहला वैसा प्रेम मैंने तेरह चौदह की आयु में किया। वही मेरे जीवन का सबसे तीव्र प्रेम था। तब से अनेकबार में प्रेम-पाश मे फँसा, अनेक को अपने प्रेमपाश में फंसते पाया। अनेक बार मेरे वियोगाश्रुओं ने मेरे सामने असह्य अंधकार की सृष्टि की और अनेकबार मैंने किसी किसी को अपने प्रेम पाश में विक्षिप्त छटपटाते देखा लेकिन सदैव मैंने उस आकर्षण की पीडा से बचने का ही प्रयत्न किया। कभी अभीष्ट रूप को पाने का सफल या विफल प्रयत्न करके, कभी उसे पतन, वासना या विघ्न का नाम देकर उससे मुंह फेरने का प्रयत्न करके लेकिन अब मैंने वैसे आकर्षण का भी भरपूर सामना करने की रीति अपनाई है। में अब उसकी आग को नापने के लिए कटिबद्ध हूं। सामने आये रूप को में अब न कुरूप कहकर उससे मुंह चराना चाहता हूं और न उसे अपनाकर उसकी ज्वाला को बुझा देना चाहता हूं। फलत: उसका आक्रमण अब मुझपर और भी सीधा, उग्रतर पडने लगा है। मैंने हृदय की सारी नसें वैसे आक्रमण के सामने खोल दी हैं। में पहले से कहीं अधिक संवेदनशील होगया हूँ, एक एक वैसी चितवन, एक एक मुस्कान, एक एक सुगठन और एक एक तत्सम्बन्धी अनुमान अब मुझे अधिक गहराई तक भेदने लगा है। वैसे कठिन से कठिन आक्रमण के सोवें-हजारवें अंश का ही संभव है, मैंने अभी तक अनुभव किया है। में तथाकथित 'पतन' की संभावना से परे नहीं हो गया हूँ। में उसमें कभी भी गिर सकता हूँ और अनुभूति की नई तीव्रता के कारण अधिक वेग के साथ गिर सकता हूँ। लेकिन यह निश्चित है कि मेरे पतन में अब एक विशेष वैभव होगा और उस वैभव की शोभा प्रत्येक अगले पतन के साथ-यदि अगले पतन आयेंगी ही–उत्तरोत्तर बढती जायगी। मेरा प्रत्येक पतन मुझे गिरानेंवाली प्रेरणा के लिए उत्तरोत्तर दुष्कर और दुसाध्य भी होता जायगा। लेकिन अगली

और मेरा पतन होगा ही ऐसी कोई कल्पना मेरे मन में नहीं है। वह यदि होगा तो उसकी मुझे कोई चिन्ता भी नहीं है। प्रत्येक वैसे आक्रमण को सहलेने के पश्चात् मैं अपनी सहन-शक्ति को बढा हुआ ही पाता हूँ; प्रत्येक आक्रमण अब अधिकाधिक तीव्र होता हुआ भी उसका घाव अब अधिकदेर मेरे हृदय पर नहीं टिकता। मैं मानो कडवे से कडवा भी मादक से मादक घूंट एकदम पीकर उसे अधिकाधिक शीघ्रता के साथ हजम कर लेने लगा हूँ। मेरे भीतर से उठनेवाली कोई नई स्फुरण अब अधिकाधिक मेरे हृदय पर स्थाई रहने लगी है और वह हर मीठे-कडवे रस को अपने भीतर शीघ्रता से घोल कर विलीनकर लेती है। यह मेरा अनुभव है।

अपने बचपन का यौवन में पार कर आया हूं, यौवन का बचपन पार कर रहा हूं, यौवन के यौवन--द्वार पर पहुंचनेवाला हूं। जिसे आमतौर पर लोग यौवन कहते हैं, वह यौवन नहीं, बचपन ही होता है, और उस बचपन के साथही उनके जीवन का समस्त यौवन भी समाप्त हो जाता है। वे यौवन में कभी प्रविष्ट ही नहीं होते। यौवन हृदय और पूरे व्यक्तित्व की अवस्था है, केवल शरीर कीही नहीं। चालीस-पैंतालीस वर्ष की आयु से जो लोग बुढापे की ओर झुके दीखने लगते हैं, वे वास्तव में यौवन में प्रवेश ही नहीं कर पाते। वासना, मौन-आकर्षण प्रेम आदि की सभी समस्याएँ वास्तविक युवावस्था में समझने की वस्तुएँ हैं। उनसे बचकर भागकर कोई न उन्हें समझ सकता है और न उनसे निर्बन्ध ही हो सकता है। मैं उन सौभाग्यशालियों में हूं जो अपनी अवस्था को पहचानते हैं और उसकी ऋतुओं का उपयोग करना चाहते हैं।

कृपया सावधान? मैं आत्मनिर्माण की बात कह रहा हूँ। अपने प्रेम-प्रसंगों की ओर संकेत में इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि अपने लिए अगली प्रेमिकाओं को आकृष्ट करना चाहता हूँ। यदि वैसी कोई कामना सूक्ष्म रूप में मेरी होती तो उसको भी मैं बुरा नहीं समझता। तब आप ही क्यों उसके तर्क-वितर्क के पचडे में पडें। आपतो केवल यह देखें कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह कहांतक ठीक और आपके लिए भी उपयोगी है।

मैं आपसे अब फिर पूछता हूँ कि यदि आप निर्धनता, वासना या अन्य किसी रुकावट से बचने या भागने का प्रयत्न न करें तो उसका क्या परिणाम होगा?

(६)

आज निर्धनता, वासना आदि रुकावटों को इस लिए पार कर जाना चाहते हैं कि इनमें अटके रहजाने में आपको पीडा का भय रहता है और इनके पार पहुंच कर किसी विशेष सुख और सुरक्षा की आशा रहती है। इस प्रकार रुकावटों को पार करने के आपके सभी प्रयत्न इन्हीं दोनों प्रेरणाओं से उत्पन्न होते हैं-भयकी प्रेरणा और आशा की प्रेरणा।

गीत

श्री. ब्रजेन्द्र एन, सक्सेना

[कवि, उदयपुरा (भोपाल स्टेट) में मुंसिफ]

सुनयने !
राह मैं देखा करूँगा—
देखती ज्यों राह रजनी
तारकों मैं खोल आँखें !
राह मैं देखा करूंगा——
चातकी ज्यों देखती है
स्वाति-जल की राह !
राह मैं देखा करूंगा—
कल्पना की सजल आँखे
राह को ज्यों देख उठती !
राह मैं देखा करूंगा——
सुनयने !

लेकिन रुकावट के उसपार आपने जिस वस्तुकी आशा बांधी है वह आपकी कल्पना, अनुमान भी दूसरों के दिये हुये आश्वासन पर ही तो निर्मित है। यह सहज संभव है कि वह वस्तु यहाँ न हो, या उसका उपयोग वैसा न हो। यह भी संभव है कि उस रुकावट को पारकर जानेपर आप किसी और भी बडी रुकावट के सामने पहुंच जायें। और इधर रुकावट के इसपार की परिस्थिति से आपको जो भय है वह भी तो आपकी कल्पना, अनुमान भी दूसरों की बनाई हुई धारणो पर निर्भर है। आप किसी वस्तु या परिस्थिति के वास्तविक प्रभाव का-वह प्रभाव सुखद है दुखःद, इस बात का-निर्णय तबतक कैसे कर सकते हैं जबतक उस वस्तुको अच्छी तरह जान न लें? और तबतक आप किसी वस्तु या परिस्थिति को-जिसे आप रुकावट का नाम देते है-कैसे जान सकते हैं जबतक आप उसके सामने रुक कर स्थिर भाव से उसका अध्ययन नहीं कर लेते?

जीवन की समस्याओं को सुलझाने के आपके सभी प्रयत्न इन्हीं भय और आशा की प्रेरणाओं से प्रेरित होते हैं। भय को आप जानते हैं और उसे एक बुरी चीज मानने के लिए तैयार हैं, लेकिन आशा भी कोई बुरी वस्तु है, यह आपको सम्भवतः स्वीकार नहीं है। हां, लोभ को आप अवश्य बुरी चीज मानते हैं लेकिन आपकी आशाएं लोभ से भिन्न और क्या है? आप किसी वस्तु को चाहते हैं। उसके बिना आप अपने आपको असहाय, असंतुष्ट, अपूर्ण पाते हैं। यदि वह वस्तु आपके पास पहले से किसी सीमा तक आवश्यक मात्रा में मौजूद है तो अपनी उस अधिक मात्रा की चाह को आप लोग कहते हैं और यदि वह न्यूनतम आवश्यक मात्रा में पहलेसे प्राप्त नहीं है ओर उसकी प्राप्ति की आप आगे कुछ सम्भावना देख रहे हैं तो उसे आशा का नाम देते हैं। लोभ और आशा दोनों की ही नींव आपकी असहायता, असंतुष्टता और अपूर्णता की भावना में है; दोनों एक ही मसाले के हैं; एक ही मूल की दो शाखाएँ हैं। जिस आशामें प्रत्याशित वस्तुके अभाव में भी असहायता, असंतुष्टि और अपूर्णता की भावना न हो वह आशा ही लोभ से भिन्न कही जा सकती है। जब आप निस्पृह भाव से कहते हैं, "मुझे आशा है कि अगले बृहस्पतिवार को बारह तारीख होगी" और यदि उस दिन तेरह तारीख हो तो आपको कोई परवाह नहीं होती, तब आपकी आशा शुद्ध आशा कही जा सकती है। लेकिन जब आप उत्सुक होकर कहते हैं: "मुझे आशा है कि अगले बृहस्पतिवार को मेरे पुरस्कार के पांच सौ रुपये आजायेंगें" और उस दिन रुपये न आने की दशा में आपको कुछ असहाय, असन्तुष्ट या अपूर्ण रह जाने की आशंका होती है, तब आपकी वह आशा लोभ काही एक रूपान्तर होती है। अपनी प्रत्येक आशापर जिसमें आपकी हार्दिक उत्सुकता का योग रहता है, आप. अपनी किसी न किसी प्रकार की पूर्णता के अथवा तृप्ति के निर्भर रहते है। आपका हृदय उसी वस्तु के लिए उत्सुक हो सकता है जिसका रस, अधिक नहीं तो न्यूनतम आवश्यक मात्रा में, उसे प्राप्त हो चुका है।

अपनी बात को मुझे सचित्र करना पडेगा। आप मेरे कैलास आश्रम में मेरे अतिथि हैं। मैंने कल शाम आपको अपनी मन-पसंद दाल के साथ भरपेट रोटियाँ खिलाई हैं और एक गिलास मट्ठे से आज प्रातः आपका कुछ अतिरिक्त सत्कार भी किया है। यह निश्चित है कि आज दोपहर भी मैं आपको भरपेट भोजन कराऊँगा। आप इस समय मेरे पास बैठे हैं। इस टीले के नीचे जमना बह रही है और जमना के उसपार रेती में खरबूजों का खेत है। आप उसपार जाकर खरबूजे खाना चाहते हैं। आप चाहते है कि किसी प्रकार जमना को पारकर खरबूजे प्राप्त करलें।

आप जमना पार के खरबूजे क्यों खाना चाहते हैं? इसलिए कि आपने कभी खरबूजे खाये हैं और उनका स्वाद आपको पसंद आया है, या खरबूजा नहीं तो तरबूज ही आपने कभी खाया है और किसी ने आपको बताया है कि खरबूजे का स्वाद तरबूज से भी अच्छा होता है। आप इस समय उसका स्वाद लेना चाहते हैं। लेकिन बीच की जमना आपकी एक समस्या एक

रङ्गीला मुसाफिर

भारत के कोने-कोने में हलचल मचा देनेवाला रहस्यमय मासिक पत्र, जो प्रतिमास ५० हजार आंखों के सामने पहुंच रहा है, तुरंत ३) वार्षिक मूल्य भेजकर ग्राहक बन जावें। यदि नमूना देखना हो तो ।=) के स्टाम्प या एक कार्ड पर भिन्न-भिन्न स्थान के १० लिखें पढे आदमियों के सही पते भेजकर मंगावे।

पता:– "रंगीला मुसाफिर" ४७) जगांधरी (E.P.)

रुकावट है। आप जमना को पार करना चाहते हैं, क्योंकि उसपार आपको खरबूजों की आशा है । आप जमना के इस पार हैं, जहां खरबूजे नहीं है, और उसपार जाना चाहते हैं, जहां खरबूजे हैं। आपने कल शाम भोजन के समय, जमना के इसीपार, मेरे घर पर, बिना खरबूजों के भोजन किया है । उस भोजन से आपकी आहार सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति भी हुई है । यदि एकबार आपका भोजन-कार्य बिना खरबूजों के पूरा हो गया है तो निस्संदेह खरबूजों का आपकी भोजन सम्बन्धी 'न्यूनतम आवश्यकता' के भीतर स्थान नही है। और न्यूनतम आवश्यकता से बाहर की वस्तु के बिना यदि आप असहायता, असंतुष्टि या अपूर्णता का अनुभव करते हैं तो यह आपका लोभ ही है। न्यूनतम आवश्यकता से बाहर की वस्तु का ग्रहण और उपभोग भी लोभ नहीं है, यदि उसकी प्राप्ति के पहले आपको किसी विवशता का अनुभव न करना पडे। यदि आप सहज सुगम भाव से जमना को पार कर आते है और खरबूजा खा आते हैं तो खरबूजा आपके लिए लोभ की नहीं, केवल सहज उपलब्धि और उपभोग की वस्तु है । लोभ की वस्तु वह है जिसकी प्राप्ति में थोडी बहुत विवशता और अस्वाभाविक प्रयत्न का सामना करना पडे ।

जिस वस्तु के लिए आपका मन उत्सुक है और जो आपको इस समय प्राप्त नहीं है, वह निस्संदेह आपकी न्यूनतम आवश्यकता से बाहर की वस्तु है और उसकी प्राप्त के लिए किसी रुकावट को दूर करने की कामना लोभ की ही प्रेरणा है । आपकी सारी आशाएँ लोभ की ही एक न एक मंजिल हैं और लोभ-रहित आशा को आप आशा ही नहीं समझते । आपके सारे प्रयत्न भय और लोभ की प्रेरणाओं से ही प्रेरित होते हैं, जहां इनकी प्रेरणा नहीं होती वहां आपके कार्य रुचिहीन भाव से किये हुए और नीरस होते हैं ।

भय और लोभ, और जहां वे प्रत्यक्ष न हो वहां रुचिहीनता आपके प्रयत्नों के अंग-संग रेहनेवाली वस्तुएं हैं। क्या इन दोनों से अलग रहकर आप जीवन में कोई कार्य कर सकते हैं ? यह अत्यन्त कठिन है। भय और लोभ आपके जीवन की सबसे अधिक व्यापक प्रेरणाएँ है। वे वास्तव में एक ही प्रेरणा की दो शाखाएं हैं। वे आपकी निकटतम प्रियतम वस्तुएं हैं। यदि मैं आपके सामने उस भय और लोभ से कुछ देरके लिए विमुख होने का प्रस्ताव रक्खूं तो निस्संदेह एक अति भयंकर प्रस्ताव रखूंगा।

यदि आप क्षणभर के लिए भी भय और लोभ का सचमुच त्यागकर सकेंगे तो आपकी धार्मिकता, नैतिकता आदर्शवादिता, सामाजिकता और जीवन की सारी तथाकथित सरसताएं नष्ट हो जायेंगी। आपका समाज खंड खंड होकर चूर चूर हो जायगा, प्रियजनों के प्रति प्रेम और रुचि की सम्भावनाओं को आप विलीन होते देखेंगे। ऊँचे आदर्शों और अपने पूज्य देवताओं के प्रति आपकी श्रद्धा सेवा का कोई आधार न रह जायेगा। आपके पैरों के नीचे की धरती अदृश्य रसातल में समा जायेगी आपकी सारी दुनिया उजड जायेगी। आप एक अंधकारपूर्ण शून्य में अपने आपको निराधार पायेंगे। उस स्थिति की कल्पना अभी आप भयंकर स्थिति के रूप में ही कर सकते हैं। उस कल्पना में आप अपने आराध्य देवता से या आपका कोई सदा दयालु और अकारण स्नेही ईश्वर हो तो उस ईश्वर से भी अपने आपको कहते पायेंगे : " मुझे किसी का भय नहीं, किसी की चाह नहीं। आपकी समर्थ संरक्षता और उदार देनों की अब मुझे आवश्यकता नहीं है " और उसे आप उत्तर देते सुनेंगे : " तो फिर तुम्हें मेरी भी आवश्यकता नही है, मुझे तुम्हारे सामने से अन्तर्धान रहना होगा।" इस प्रकार आप अपनी ऊँचो से ऊँची लौकिक और पारलौकिक महत्वाकांक्षाओं एवं तत्सम्बन्धी विभूतियों से वंचित हो जायेंगे। आप देख रहे हैं, आपके लोक और परलोक तक का सारा ढाँचा भय और लोभ की प्रवृत्तिपर खडा हुआ हैं।

आप अपने जीवन में से भय और लोभ को–जिस लोभ को आप प्रायः सफलता, विकास और दैवी सम्पदाओं की आशा के कर्ण मधुर नामों से पुकारते हैं निकाल देंतो उसमें एक शून्य और अभाव से भिन्न क्या शेष रह जाता है ?

क्या आप कहना चाहते हैं कि किसी स्थूल श्रेणी तक का भय और लोभ दुःखद और उसके आगे का सूक्ष्म भय और लोभ सुखदायक अतः जीवन के लिए आवश्यक है ? भय और लोभ के आमूल चूल विनाश से उत्पन्न प्रभाव की कल्पना से काँपकर क्या आप ऐसा कहना चाहते हैं ?

लेकिन भय और लोभ–वे किसी भी स्थूल या सूक्ष्म श्रेणी के हों-मूलतः गलत चीजें हैं। उनके आधार

पर टिका हुआ आपका धर्म, समाज व्यक्तित्व, जीवन और उसकी सारी सरसताएं भ्रान्तिकर अतः दुःख-मूलक हैं। जब आप भय-लोभ के आधार पर टिके हुए सुखों का अभाव होता देखते हैं तब आप जीवन के वास्तविक सुख-प्रदेश में पहला पग रखते हैं। अभाव का सुख ही संसारका एक मात्र वास्तविक अतएव सबसे बडा सुख है।

मैंने शरीर, हृदय और मन के अनेक स्तरों के विविध सुखों का अनुभव किया है। मिष्ठान्न के स्वाद का सुख, मुग्धा रमणी के मादक स्पर्श का सुख, दो प्रियजनों के बीच भावनाओं के मधुरालिंगन का सुख, मैंने अनुभव किया है। लेकिन उन सभी अनुभवों के आविर्भाव का सुख अब मुझे अभाव के सुख के आगे फीका दीखता है। मै यह अपने अनुभव से कह रहा हूँ। अभाव के सुख का मेरा अनुभव मेरा नवीनतम और सबसे ऊँचा अनुभव है। यह पहेली सर्वथा सरल तथ्य है। यह मेरा ही नहीं, आपका और सभी का अनुभव है। जब किसी के पेट में दो दिन से पानी रुक जाता है तब वह पीडा से बुरी तरह कराहता चीखता है। जब डाक्टर आकर औषधि या कैथेटर के प्रयोग द्वारा पेट का पानी निकाल देता है तब वह अननुभूतपूर्व सुख का अनुभव करता है। वह अभाव का– किसी संग्रह से मुक्त होने का– सुख है। जब आपके मरणासन्न प्रिय बच्चे का बुखार १०४ डिग्री से उतर कर सौ पर आजाता है तब आपके हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। वह किसी वस्तु की प्राप्ति का नहीं, किसी वस्तु के अभाव का बुखारके अभाव का ही सुख है। जब आपके शत्रु की खिंची हुई तलवार आपके सामने से हटकर उसकी म्यान में लौट जाती है तब सम्भवतः आपको जीवन का सबसे बडा सुख प्राप्त होता है। वह किसी 'भाव' का नहीं, केवल अभाव का- प्राण संकट के अभाव का-ही सुख है। आप धनवान बनने की महत्वाकांक्षा रखते हैं। इसके लिए आप प्रयत्न करते है। प्रयत्न में आप बड़े बड़े कष्ट उठाकर भी आगे बढते हैं। आप दस लाख रुपया कमालेते हैं। आप सोचते हैं कि आप आधी दूरी तय कर आये हैं और शेष आधी के लिए भी तन तोड परिश्रम करते रहते हैं। एक सुबह आपको अचानक पता लगता है कि देश की राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था रातों-रात बदल गई है और बैंक में जमा आपके दस लाख का अब कोई मूल्य नहीं रह गया है। आपको गहरा धक्का लगता है। वह धक्का आपकी पिछली मानसिक प्रवृत्ति का परिणाम है। लेकिन साथ ही आप यह भी देखते हैं कि अब आगे दस लाख कमाने के लिए आपको कोई परिश्रम करनें की आवश्यकता नहीं है। आज से ही आपको उस तन तोड परिश्रम से छुटकारा मिलकर विश्राम का भी अवसर मिल गया है और उपार्जन सम्बन्धी विविध चिन्ताएं समाप्त हो गई हैं। यह अभाव का सुख है, और यह–यदि ठीक दृष्टि से देखा जाय–पिछले आघात के दुःख के मुकाबले बहुत बडा सुख है। छुटकारा, निर्बन्धता, निश्चिन्तता का अनुभव अभाव का ही अनुभव है। मानव मन का सबसे ऊचा अनुभव यही है। इस अनुभव का सौवां-हजारवाँ कौनसा अंश मुझे प्राप्त हुआ है, मैं नहीं कह सकता लेकिन इस अनुभव में एक महान्, उत्तरोत्तर बढ़ने वाली शक्ति है, मै देख रहा हूँ। भय और लोभ की आधार शिला पर स्थित धर्म और आदर्श, ईश्वर और समाज के ढह जाने पर ही हमें सम्भवतः सच्चे धर्म, आदर्श ईश्वर और समाज को देख–समझ सकते हैं। तभी हम वस्तुओं को पहली खुली हुई दृष्टि से देख सकते है।

एकांकी--

रँगा सियार

श्री हीरादेवी चतुर्वेदी

[प्रयाग की कहानी-लेखिका और एकांकी नाटककार]

पात्र-परिचयः

रमेश- दर्शन-शास्त्र का डाक्टर
भोला-रमेश का नोकर
गिरीश- प्रॅक्टिस करनेवाला डाक्टर
रमा- रमेश की पत्नी
सरला
कमला } -रमा की सहेलियाँ

° ° •

पहला दृश्य

स्थान- डाक्टर रमेश का उपवन।

समय- ग्रीष्म कालीन सन्ध्या

(रमा अपनी कोठी के पार्श्व में मुस्कराते उपवन के मध्य में एक कुर्सी पर बैठी है। आसमानी रंग की और सुनहरे किनारे की साडी के नीचे गहरे गुलाबी रंग का ब्लाऊज रमा की तरुणाई को अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक बना रहा है। लम्बी और गुंथी हुई काली वेणी पीठ पर नहीं, बल्कि बाएँ कन्धे पर लहराती हुई उसके हृदय-प्रदेश का स्पर्श कर रही है।

सामने एक छोटी सी गोलमेज पर दो-तीन पुस्तकें और आज के कुछ समाचार-पत्र रखे हुए हैं। गोलमेज की दूसरी तरफ दो खाली कुर्सियाँ पडी हैं। रमा के चारों तरफ देशी विदेशी लाल, गुलाबी, श्वेत और नीले गुलाब के फूल मुसकरा रहे हैं। पवन के मन्द-मन्द झोंकों के साथ फूलों की सुगन्ध उपवन के समस्त वातावरण में व्याप्त हो जाना चाहती है।

उपवन की सीमा-रेखा पर खडे ऊँचे-ऊँचे सघन वृक्षों पर पंछी चहचहा रहे हैं। रमा इन्ही पंछियों की चहचहाहट ध्यानमग्ना की भाँति सुन रही है।

सहसा किसी की मधुर खिलखिलाहट रमा के कानों में प्रवेश करती है। उसका ध्यान पंछियों की ओर से हट जाता है। घूमकर वह आगन्तुकों को देखने लगती है।)

सरला-(रमा के निकट पहुँच, कमला से कहती हैं) देखो, आज तो रमा बहिन फूलों की रानी बन बैठी है।

कमला- और फूलों के राजा की प्रतीक्षा कर रही है!

रमा- (स्वागतार्थ खडी होकर) आओ बहिन!

(सरला और कमला मुसकराती हुई, रमा के सामने रखी गोलमेज की दूसरी तरफ की दो कुर्सियों पर बैठ जाती है। रमा भी अपनी कुर्सी पर बैठ जाती है।)

सरला- मैंने ठीक ही कहा था, कमला!

रमा- (जिज्ञासा के साथ) क्या?

कमला- कोई खास बात नहीं, रमा!

रमा- बतलाने लायक नहीं?

सरला- है क्यों नहीं

रमा- फिर बतलाती क्यों नहीं?

सरला- तो बात यह है रमा कि आज तुम बहुत सुन्दर दिखती हो!

कमला- (फूलों की तरफ संकेत करती हुई) जैसे फूलों की रानी!

रमा- लेकिन...!

सरला- (बीच में ही बात काटते हुए)—लेकिन फूलों के राजा की प्रतीक्षा कर रही हो।

कमला- अच्छी तरह सुन लो, रमा! यही बात है जिसे सरला तुमसे छिपा रही थी अबतक। है न ठीक?

रमा- (धीमे स्वर में) शायद।

कमला- शायद की इसमें गुंजाइश नहीं। मैंने अपनी छतपर से देखा कि आज तुम अकेली बैठी हो। न अखबार पढ रही हो, न कोई पुस्तक। इसी बीच

मेरे पास सरला आ पहुँची। हम दोनों ने तुम्हें देखा और यह समझते देर न लगी कि तुम 'उनकी' प्रतीक्षा कर रही हो। परन्तु तुम हो कि डाल-डाल उड़ने की कोशिश कर रही हो।

सरला– (अभिनय के साथ गुनगुनाती है) तुम डाल-डाल मैं पात-पात; दूंगी तुमको मात साजन!

रमा– ओहो! यह मैंने आज जाना कि तुम कविता भी कर लेती हो।

सरला– कविता तो मैं शायद सात जन्मों के बाद भी न कर सकूंगी।

रमा– क्यों झूठ बोलती हो! अरे, अभी-अभी जो गीत तुम गुनगुना रही थीं, उसमें आधी कडी तो किसी सिनेमा के गीत की है, और आधी ठेठ तुम्हारी अपनी गढी हुई है।

कमला– यह तो तुकबन्दी हुई रमा, कविता नहीं।

रमा– तुकबन्दी करते करते ही कविता होने लगती है।

सरला– तुम एक दार्शनिक की पत्नी हो न! तुमसे बहस करना आसान नहीं।

रमा– इसमें दार्शनिकता की कोई बात ही नहीं।

कमला– अच्छा, रमा! यह तो बतलाओ, इधर डाक्टर साहब दो-तीन दिन से नजर नहीं आ रहे हैं। कहाँ गए हैं?

रमा– मत पूछो, बहिन! आज दिल्ली, कल बम्बई, परसों कलकत्ता। यही क्रम चल रहा है उनका।

सरला–क्यों न हो। उनकी रियासत का मामला हाईकोर्ट में चल रहा है न! तुम्हीं कह रही थीं न, उनकी रियासत उनके चचेरे भाई ने हथिया ली है। दुनिया भी कैसी मक्कार है! थाली की मक्खियां भगाने बैठाया नहीं कि थाली पर ही अधिकार जमा लिया। बेचारे जबतक विदेश में रहे, इधर चचेरे भाई ने उनकी रियासत ही हडप ली। इस हालत में उन्हें इधर उधर दोडना-भागना न पडे तो क्या हो!

कमला– सन्देह नहीं, रमा बहिन! चुनाव तुमने बढिया किया है।

रमा– क्या खाक बढ़िया किया है! दुनिया तो मेरा मखौल ही उडा रही है।

सरला– दुनिया को, खासकर ऐसे लोगों को जिन्हें दूसरों के रोष ढूंढने की लत पड चुकी है, सिवा मखौल उडाने के दूसरा काम ही क्या है।

कमला- और ऐसे लोगों में औरतों की संख्या ही अधिक रहती है, सो भी बूढी--सयानी औरतों की। घर में बहुएँ ग्रहस्थी का काम--धन्धा करती हैं और ये बूढी औरतें पास--पडोस की नुकताचीनी की मजलिस जमाए रहती हैं।

रमा– लेकिन आज की बात ही दूसरी है। मेरे नोकर भोला की घरवाली कह रही थी कि पडोस में जो डिप्टी साहब अभी अभी आए हैं, उनकी श्रीमतीजी कह रही थीं कि लैंसडाऊन में जब वे लोग थे, तब ये डाक्टर साहब भी वहीं रहते थे।

सरला– (बीच में ही टोकते हुए) तो क्या इनकी रियासत वहीं लैंसडाऊन के आसपास है?

रमा– तुम तो पूरी बात सुने बिना ही बीच में टोक देती हो, सरला! सुनो भी तो, वह कहती हैं, लैंसडाऊन में जहाँ वे रहती थीं, वहीं पडोस में ये भी रहते थे। और रियासत वियासत इनके कुछ नहीं है, बहिन!

कमला– (आश्चर्यचकित मुद्रा से) अयँ! रियासत वियासत कुछ नहीं है, इसका पता उन्हें कैसे लगा?

रमा– कहते है, लैंस डाऊन में भी ये एक तरुणी के साथ रहते थे। उससे भी यही सब कहा करते थे, जो मुझसे। और, एक दिन जो वहाँ से गायब हुए कि आजतक वापस नहीं पहुँचे।

सरला– भगवान न करे, यह बात सच हो, नहीं तो क्या होगा तुम्हारा राम?

रमा– (ठण्डी साँस छोडते हुए) जो होना था, वह तो हो ही चुका बहिन! अब क्या होगा?

कमला– सच कहती हो, रमा! यह तो उसी दिन सोचने-समझने की बात थी, जब तुमने अपना जीवन-सूत्र इनके साथ सम्बद्ध किया था। लेकिन मुझे तो ऐसा मालूम पडता है कि तुम्हारे कालेज की प्रिन्सिपल ने तुम्हे वास्तविक परिस्थिति से अपरिचित ही रक्खा। यह हो नहीं सकता कि उन्हे इनकी गति-विधि का पूरा-पूरा पता न रहा हो।

रमा– मुझे तो अबतक सन्देह है।

कमला– यही कि प्रिन्सिपल बेचारी को इस सबका पता रहा होगा।

सरला– इसका कोई प्रमाण है ?

रमा–हाँ। कल जब मैंने भोला की स्त्री से यह सब सुना, तो मैं उनके पास गई थी। उन्हें जब यह कहानी सुनाई, तो वह कहने लगी–'रमा, मैं तुम्हें अपनी बेटी की तरह मानती हूं और स्नेह करती हूँ। इस जीवन में कभी तुम्हारे अमंगल की कल्पना नहीं कर सकती। जब डाक्टर रमेश पहली बार मेरे भाई साहेब के पास एक बंगले की तलाश करते हुए पहुँचे, तो उनकी बातों से मेरे भैय्या बहुत प्रभावित हुए-इतने कि उन्हें बँगला भी किराए पर दिला दिया। धीरे धीरे मैं भी उनसे परिचित हो गई। मैं भी उनकी बातों से बहुत प्रभावित हुई। तभी मैंने सोचा, तुम चूंकि इस दुनिया में अपने माता-पिता की छत्रछाया से वंचित हो, इसलिए क्यों न ऐसे विद्वान और सम्पन्न पुरुष के साथ अपने जीवन का सूत्र जोड लो और सुखी रहो। परंतु अपनी राय देकर मैंने तुम्हें भी तो सावधान कर दिया था कि खूब परख करलो इनकी। और जब तुम्हारा मन भर जाए तब उचित समझो तो मेरे प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करो। तीन महीने उनकी परख करने पर तुमने स्वयं एक दिन 'सिविल मैरिज' करने की बात मुझसे कही। मैंने अपनी धारणा ठीक समझी और तुम्हारे इस प्रस्ताव का समर्थन कर दिया। अब इतने दिनों बाद यदि डाक्टर रमेश के सम्बन्ध में यह बात सुनी जा रही है, तो तुम्हीं बतलाओ बेटी, मैं कहाँतक दोषी हूँ। (कहते-कहते रमा का मुख म्लान हो उठता है।)

कमला– तब तो यह कहना पडेगा कि डाक्टर रमेश मानव नहीं, रँगा सियार है–पढा–लिखा धूर्त्त।

रमा– और मैं भी तो पढी–लिखी मूर्खा हूं, जो तरुणाई के ज्वार में इस प्रकार बह गई!

सरला– लेकिन अभी यह नहीं कहा जा सकता कि भोला की स्त्री ने जो कुछ सुना है, वह ठीक ही होगा। ठहरो, डिप्टी साहब की लडकी विमला से मेरा परिचय है। मैं अभी जाती हूँ और पता लगाती हूँ। (कुर्सी से उठकर सरला जाने लगती है।)

कमला– (सरला की ओर दृष्टिनिक्षेप करते हुए) लेकिन विमला से तुम्हें यह सब पता न चलेगा शायद।

सरला– तो क्या विमला की माँ से नहीं पूछ सकती मैं? (किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही सरला चली जाती है।)

कमला–बुरा न मानना रमा! कदाचित यही कारण है कि हमारे माता पिता वर का चुनाव स्वयं करते हैं और लडकियों की इच्छा-अनिच्छा की परवा नहीं करते।

रमा–इन रँगे सियारों से कुमारियों की रक्षा का जहां तक सम्बन्ध है, यह ठीक है। परंतु अधिकांश कुमारियों का जीवन इस प्रथा के कारण सुखी नहीं रहता, कमला!

कमला– दूसरों की बात इस समय मैं नहीं करती। यदि डाक्टर सचमुच रँगे सियार निकले-आवारा सिद्ध हो गए, तो क्या तुम्हारा जीवन सुखी रह सकेगा।

रमा– इस समय मेरा दिमाग चकरा रहा है, कमला! इस उलझी गुत्थी को सुलझाने में मेरी बुद्धि मेरा साथ नहीं दे रही है। केवल यह कह सकती हूँ कि सभी कुमारियाँ मेरी तरह रँगे सियारों के ही चंगुल में नहीं फंस जाती। मेरा उदाहरण तो अपवाद कहा जाएगा। मेरा भाग्य यदि खोटा है, तो कहीं भी, किसी भी दशा में सुख का स्पर्श मेरे लिए दुर्लभ ही रहेगा।

कमला– यह तो बतलाओ, डाक्टर रमेश कुछ कह गए हैं, कबतक लौटेंगे।

रमा– नहीं।

कमला– इसके पहले जब कभी बाहर जाते थे, कुछ कह जाते थे लौटने की बात?

रमा– कभी नहीं।

कमला– तब यह सन्देह भी नहीं करना चाहिए कि वे नहीं लौटेंगे।

रमा– सन्देह तो भोला की स्त्री की बातों से ही बढ गया है न!

कमला– खैर, सरला अब आती ही होगी। देखें क्या खबर लाती है।

रमा– (तेज स्वर से) भोला! ओ भोला!

(भोला बँगले के बाहरी बरामदे में बैठा-बैठा ऊँघ रहा था। रमा की तेज आवाज सुन वह हाँफता-सा दौडा आया)

भोला– (रमा के निकट पहुंचकर) जी सरकार!

रमा– चाय लाओ।

भोला– बहुत अच्छा, सरकार!

(भोला चाय लाने चला जाता है। कुछ देर तक निस्तब्धता छाई रहती है।)

दूसरा दृश्य

(कमला और रमा दोनों उपवन में चुपचाप बैठी हैं। किसी गहन चिन्ता की रेखाएँ दोनों के मुखपर उभर आई हैं। इसी बीच सरला का प्रवेश। सरला के मुख पर भी प्रसन्नता की कोई झलक नहीं। उदास मुद्रा से गुपचुप वह एक कुर्सी पर बैठ जाती है।)

रमा– विमला से भेंट हुई, सरला?

सरला– हाँ।

कमला– क्या पता चला?

सरला–भोला की स्त्री से रमा बहिन जो कुछ सुन चुकी हैं, उससे अधिक कुछ नहीं। केवल एक बात का और पता चला है। वह यह कि जिस तरुणी के साथ डाक्टर रमेश लेंसडाऊन में रहते थे, वह कहीं बाहर की थी अर्थात लैंसडाऊन की नहीं थी। डाक्टर रमेश जब लेंसडाऊन से सहसा गायब हो गए और तीन महिने तक न लौटे, तब मकान-किराये का प्रश्न बोझिल बनकर उस तरुणी पर पहाड की तरह टूट पडा। हुआ यह कि एक दिन रातोंरात वह तरुणी भी कहीं चली गई। थोडा बहुत जो सामान उस बँगले में पाया गया, उसे नीलाम किया गया और मकान-मालिक ने इसी रकम से सन्तोष कर लिया।

रमा– बहुत भयंकर जीव मालूम पडते हैं।

(चाय का ट्रे लेकर भोला का प्रवेश। गोलमेज के समाचार पत्र तथा पुस्तकें हटाकर भोला चाय पिलाने की तैयारी करता है। तीनों सहेलियाँ चाय पीने लगती हैं। इसी बीच पोस्टमैन आज की डाक भोला को देकर चला जाता है। भोला वह डाक रमा के सामने रख देता है।

अखबारों आदि के पैकेट रमा एक तरफ रख देती है। एक लिफाफे को रमा उत्सुकतापूर्वक खोलती है। लेकिन उसे पढ़ते पढ़ते उसकी मुद्रा एकदम म्लान हो उठती है। उसके ललाट पर स्वेद–बिन्दु झलकने लगते हैं। पत्र पढ़ते–पढ़ते कुर्सी के पिछले भाग पर वह अपना सिर टेक लेती है और निश्चल–सी होने लगती है।)

रमा– (रमा को एक सहेली सहारा देते हुए) ओफ! मैं लुट गई! (और दूसरे हाथ से वह पत्र कमला तथा सरला की ओर बढा देती है।)

कमला– (रमा के हाथ से पत्र लेकर और भेजने वाले का हस्ताक्षर देखकर) अरे, यह तो डाक्टर रमेश का पत्र है।

सरला– कहाँ से भेजा है?

कमला– (पत्र को ऊपर-नीचे दो-तीन बार देखकर) स्थान का कहीं कोई उल्लेख नहीं। डाक-मुहर भी किसी डाकघर की नहीं। शायद ट्रेन में कहीं यह पत्र छोडा गया है।

सरला– बहुत धूर्त हैं डाक्टर रमेश।

कमला– (पत्र पढकर) देखा, इस रंगे सियार को! लिख रहा है, अब मैं वापस नहीं आऊँगा। तुम आशा भी न करना। मैं अपने जीवन में यही खेल खेल रहा हूं। पढी-लिखीं लडकियों को बेवकूफ बनाने में मुझे आनन्द आता है। तरुणाई की लहरों पर बहकर तुम अपना विवेक खो बैठती हो न! मैं उसी का लाभ उठाना हूँ, रमा!

सरला– यह मानव नहीं, शैतान है।

कमला– (सहसा रमा की ओर देखकर) अरे, यह रमा तो मूर्च्छित हो गई। देखो न, उसकी गर्दन कुर्सी के पिछले भाग पर कैसी लटक रही है।

सरला– (अपनी कुर्सी से उठकर) और दोनों हाथ भी कुर्सी से नीचे लटक रहे हैं— चेतना शून्य होकर।

कमला– (तेज स्वर से) भोला! ओ भोला! अरे, दो चार गिलास ठण्डा पानी ला! जल्दी कर।

सरला– गीले कपडे की पट्टी रमा के मस्तक पर रखना चाहिए, कमला।

कमला - इसीलिए तो भोला से पानी मंगवाया है।

(पानी लेकर भोला का हाँफते हुए प्रवेश)

भोला– अरे! मालकिन तो बेहोश....!

सरला– (बीच में ही टोकते हुए) चुप रह भले-मानुष! शोर मचाने से मूर्च्छा नहीं हट जायगी।

(कमला अपने रूमाल को गीला कर रमा के मस्तक पर ठण्डी पट्टी रखती है और सरला बार बार मुंह धोती है।)

कमला–गीले कपडे की पट्टी रखने और मुह धोने से भी कोई लाभ नहीं दीखता, सरला!

सरला– रमा को अब हम बरामदे में ले चलें, कमला! वहाँ टेबिल-फेंन की हवा में सम्भव है, इनकी मूर्च्छा टूट जाए।

कमला– हाँ, यही ठीक होगा ।

(कमला और सरला दोनों ही रमा को बँगले के बाहरी बरामदे में ले जाती हैं और एक आराम कुर्सी पर उसे लिटाकर टेबिल–फैन चालू कर देती हैं ।)

सरला– मैं रमा को देखती हूँ, कमला! तुम भीतरी कमरे में जाकर टेलीफोन से डाक्टर गिरीश को बुला भेजो, बहिन !

कमला– हाँ, सरला ! डाक्टर गिरीश को बुला लेना ही ठीक होगा । अच्छा, मैं उन्हें फोन करती हूँ।

(भीतरी कमरे की तरफ कमला काप्रस्थान)

• • ० ०

तीसरा दृश्य

(रमा के बंगले का भीतरी कमरा जो आधुनिकतम फर्नीचर से सजा हुआ है । एक कोने में छोटी-सी मेज पर टेलिफोन रखा हुआ है । कमला इस टेलिफोन के निकट जाकर डाक्टर गिरीश के फोन का नम्बर मिलाती है और टेलिफोन का रिसीवर उठाकर बात चीत करने लगती है ।)

कमला–हलो-हलो !....डाक्टर गिरीश....। मैं डाक्टर रमेश के बंगले से बोल रही हूँ ।

डाक्टर गिरीश–कौन ? मिसेज रमा ?

कमला–जी नहीं, मैं उनकी सहेली मिस कमला हूँ।

गिरीश–ओह ! गुड ईवनिंग मिस कमला ! कहिए, क्या आज्ञा है ?

कमला–आज्ञा नहीं अनुरोध । आप फौरन आइए मिसेज रमा बेहोश हो गई हैं । डाक्टर रमेश कहीं बाहर गए हुए हैं ।

गिरीश– घबराइए नहीं, मैं अभी आ रहा हूँ ।

कमला– धन्यवाद ।

(टेलीफोन का रिसीवर यथास्थान रखकर कमला बरामदे में रमा और सरला के पास चली जाती है ।)

सरला– आ रहे हैं डॉक्टर गिरीश या नहीं ?

कमला– हाँ-हाँ, वह आ रहे हैं। रास्ते में ही होंगे।

(कुछ ही मिनटों में डॉक्टर गिरीश की मोटर पों-पों करती, बँगले के अहाते में प्रवेश करती है ।)

सरला– लो, डॉक्टर गिरीश आ गए, कमला !

कमला– (डाक्टर गिरीश को सामने देखकर) आइए डाक्टर साहब । देखिए, रमा बहिन अबतक बेहोश हैं ।

गिरीश– (रमा के निकट एक कुर्सी पर बैठते हुए) कोई चिन्ता की बात नहीं । मैं अभी देखता हूँ, उनकी बेहोशी का कारण क्या है ।

(डाक्टर रमेश बारीकी से रमा को देखता–भालता है ।)

सरला– चला कुछ पता, डाक्टर साहब ?

गिरीश– हार्ट (हृदय) पर गहरा शाक (धक्का) लगा है । केस सीरियस (मामला गम्भीर) है । बात क्या हुई ?

(कमला और सरला दोनों एक-दूसरी को ध्यान पूर्वक देखती हैं। आँखों ही आँखों में यह निश्चय करती हैं कि यथार्थ बात छिपा लेनी चाहिए। डाक्टर रमेश का पत्र बतलाने पर रमा की इज्जत का सवाल जो सामने था !)

कमला– (गम्भीर मुद्रा से) पता नहीं, बात क्या है. डाक्टर साहब। आज की डाक देख रही थीं कि बस, मूछित होगई ।

गिरीश– कोई ऐसा पत्र-वत्र तो नहीं आया कहीं से जिसे पढ़कर इन्हें गहरा सदमा पहुँचा हो।

सरला– हो सकता है, यही बात हो। मूच्छित होने के पहले एक पत्र ये पढ़ भी रही थीं । लेकिन उसे अपने ब्लाऊज की भीतरी जेब में सहेजकर रख छोडा है इन्होंने ।

गिरीश– वह पत्र आपने पढा है या नहीं ?

सरला– (यथार्थता को छिपाते हुए) नहीं।

कमला– किसी का पत्र हमें पढना भी तो नहीं चाहिए, डाक्टर साहब। यह तो सभ्यता के विपरीत है न!

गिरीश– आप ठीक कहती हैं। खैर मूच्छित हो जाने का मेरा अनुमान गलत नहीं है। लेकिन डाक्टर रमेश कहाँ गए हैं ?

सरला– पता नहीं कहां गए हैं। दो-तीन दिन से बाहर हैं।

गिरीश– अच्छा, मैं अभी दवा भेजता हूँ। नौकर को मेरे साथ भेज दो ।

कमला– (भोला की ओर देखते हुए) तुम जाकर दवा ले आओ, भोला !

भोला– बहुत अच्छा, सरकार !

(डाक्टर गिरीश के साथ भोला का प्रस्थान । कमला और सरला दोनों चिन्तित मुद्रा से, मूच्छित रमा की तरफ देखतीं हैं। गहन आशंका और अमंगल की रेखाएँ दोनों के ललाट पर उभर आती हैं ।)

यटाक्षेप

'पाती'

श्री शकुन्तला शर्मा

[प्रगतिशील एकांकीकार और कहानी-लेखिका]

सन्ध्या लाजभरी नववधु सी एक बार अरुण होकर क्षितिज के वक्ष में मुख छिपा चुकी थीं। और वैसेही मुख छिपाए छिपाए तरु शिखरों पर इधर उधर जल्दी मे अटक गए दुकूलों को धीरे धीरे समेट रही थी। चारों ओर दूर दूर तक छोटे छोटे घरोंदे से लगनेवाले मकानों की ओर बढती हुई घास काटनेवालियों की पँक्ति चोटियों की कतार सी घनी और पतली दिखाई पड रही थी और मैंने पहले पहल देखा था पर्वत का यह मनोरम दृष्य। उस विराट वैंभव में स्वयं को कही न स्थापित कर पाती हुई सी में एक छोटे किन्तु ऊंचे चबूतरे पर बैठी दूर अनेकों पर्वतमालाओं के पार घूम घूम कर किसी विक्षिप्त सी भटक भटक कर चलती हुई गाडी के सडक की ओर देख रही थी। बीच में उपत्यका से प्रदेश, में स्यापित कलरव भरे नीड सा एक गांव। एक ओर घर घर करती गाडी की सडक के पांव पलोटता सा दूसरी ओर वैंभव की अट्टालिकाओं के चरण तले रौंदा जाता सा। पर उसे दोनों ही सीमाएं दूर से बांध भर रही थीं, घोट नहीं रही थीं। वही धूम्र फेला दोंनो ओर के यात्रियों तथा निवासियों पर विकृति की हंसी सी हँसा करता था।

हाँ तो लहराती हुई सडक और फिर उसके पीछे गोलगकार का एक हरा भरा प्रदेश जो दोनों ओर की उजडी पर्वत मालाओं के मध्य किसी वर्मी की गोल मोल टोपी की याद दिलाया करता। मेरी किशोर कल्पना पहले ही दिन उस जगह दौड गई और फिर मन ही मन ओर बढ कर सफेद सफेद चोटियों की ओर दौडने लगी जिन्हे सब गौरीशंकर कहते थे।

उस गांव तक पहुँचने का एक बडा ही कंकरीला पथरीला किन्तु चौडासा मार्ग था। दोनों ओर ईंट की मेड बनी थी। जो यत्र तत्र वृद्ध के दातों सी बेतरतीब उखडी पुखडी थी। अभी अभी उस जगह से घुमावदार लहँगों की पंक्ति खिलखिलाती बलखाती निकल कर गई थी, कलरव अभीतक प्रतिध्वनित हो रहा था।

तभी एक नीली पीली साडी पर सफेद गोटे की कोर पे लिपटी किशोरी दबा दबाकर पाँव रखती हुई मेरे सामने से निकल गई। अंगुलियों में आंचल को घुमा घुमा लपेटती सी, कभी सिर को अधिक ढंकने का यत्न करती, कभी आँचल को होठों के नीचे दबाती धीरे धीरे जैसे खिसकती रही थी। १०० गज के फासले को पूरा करने में उसने कदाचित पांच सात मिनट लगा दिये। वह जान रही थी कि समीप की ऊँचाई से ही उसे कोई बडे ध्यान से देख रहा है। वह धीरे धीरे मोड पर पहुंच गई और मेरी दृष्टि पुनः उसी टोपी वाले प्रदेश पर। एक पलभर ही सोच सकी थी कि यहाँ कहाँ से यह आधी नागरी आधी गांव की किशोरी निकली।

'नमस्ते बहिन जी'

वंशी से कापते स्वर ने मुझे झटके से जगा दिया घूमकर वही पुतली अपने रुखे रुखे बालों को तार तार हुए गोटे में भरती हुई सकुचाती सी हाथ जोडे खडी थी। नीली साडी के कच्चे रंग ने लाल होठों पर नीलिमा के चित्र बना दिये थे ठीक सन्ध्या की अरुणाई पर रजनी की स्याही से। बडी बडी आखों में लाज लहरा रही थी। सावले में मुझे यह तक न समझने दिया कि यह पर्वती ही है।

अभी मुखर होते हुए भी कुछ सकुचा सी गई वह भी जैसे मेरी आखों में डूबकर फिर उतरा आई थी। मैंने उठकर उसे अपने पास बैठाते हुआ पूछा ' तू

'अभी इधर से गई थीं न?'

'में आपसे ही मिलने आ रही हूँ' बल

मैं फिर उसे अन्दर ले गई ड्राईंग रूम में बैठने पर वह गडी सी जा रही थी। सोफे पर पहले तो ऐसी अधूरी बैठी कि यदि में जोर से बैठती तो वह उछल कर नीचे आ पडती फिर आग्रह करने पर ऐसी घस

गई जैसे बैठे बैठे ही धरती की ओर बढ़ रही है। धीरे धीरे मुझे मालूम होगया वह नयी कक्षा में पढती है गांव की ही बालिका है उसने पहले ही से मेरे बारे में सुन रक्खा था और वह मुझसे मिलकर उतनी ही प्रसन्न है जितनी कल्पना करके हो उठी थी। उसका सकोच सन्ध्या के झुटपुटे के साथ ही मिट गया। नये नये नक्षत्र छिटकने लगे। उसके छोटे छोटे छिदरे दांत मेरे पास हास के मोती बिखेरने लगे। अस्तव्यस्त खोसे हुएबालों पर से आवरण स्वयं हट गया और वह आकाश सी ही निरभ्र हो फिर आने का वायदा करती हुई खडी हुई।

मुझे पढा दोगी बहिन जी। तुम तो मैट्रिक पास कर चुकी न।मुझे भी करा दो फिर मैं भी तुम्हारे साथ कालेज जाऊँगी।

० ० ०

समय पंख लगाकर उड रहा था और हम दोनों किशोर कल्पनाओं में व्याकुलता के पंखोपर उड उड कर दूर दूर नीडो की सैर किया करते। उसका नाम था पार्वती पर मै उसे पाती' कहती और वह भी मेरे नाम को अपने ढग से तोड मरोड कर 'सक्कू' कहती। पाती 'स' को 'श' ओर 'श' को 'स' सहज रुप से ही कहती और वह जानती थी कि यह गलत है पर अपनें आप को बदल न सकी। वह ग्वाले की पुत्री पिता की लाडली होनेपर भी सौतेली मां से सदा ताडना पाती। वह न गाय चराने जाती, न घास लाती, न दूध दुहती, न रोटी पकाती। या तो पढा करती या सक्कू के पास बैठी अंगूर की बेल से खट्टे अंगूर तोड कर खाती, मुझे भी खट्टे अंगूर पसन्द थे कच्चे कच्चे और वह दूर मुख में निचोड कर परख कर फिर मुझे दे देती। साथ में कहती जाती शबरी मीठे बेर छांटती है पाती खट्टे अंगूर। मैं दुखी होकर कहती पाती यदि तू शबरी कहेगी अपने को तो मैं कुद जाऊंगी और अंगूर की बेल बन जाऊंगी। और तब तू मुझे खाएगी। वह झट मेरे मुखपर हाथ रखकर आंसू भरे वे अविचल नेत्रों से मुझे देखती रह जाती। मैं भी हंस कर उसको पलके गिरा देती। पलकों के नीचे आँसू ढलके छलके कि मैं कह देती अच्छा दोनों अंगूर की बेल बन जायें तो कैसा। बस इतना कहते ही वह हंस देती उसके भूसे से बाल कितनी बार मै ठीक करती पर वह बिखेरही बिखरे यह कहकर कि यदि सक्कू तू चिड़िया बन जायें तो मेरे बालों का घोंसला बना लेना।

पाती मेरे अधिक अधिक समीप रहती। मेरी भावुक भोली कल्पनाओं का नियन्त्रण करती और कभी कभी तो बडी बहन बनकर रोष भी प्रकट करती। मुझमें एक नवीन परिवर्तन आरहा था ठीक वैसा ही वैसे स्कूल के विद्यार्थी को कालेज में प्रवेश करने पर। किन्तु उस परिवर्तन में भी कभी कभी क्रीडा कौतुक जागता और तब हम दोनों जी भरकर खेलते। शर्मीली पाती पैंजामा और लाल कोट पहने लडका बनी घूमती और वैसी ही उसकी सक्कू भी। दोनों दुर्गा राग के स्वरों में पहाडी धुन गुनगुना कर साक्षात् दुर्गा का सा बल समेटे चुपचाप आसपास के पहाडी टीलों पर चढ चढ कर घूमा करते। अंधेरे में पेड के कोटर में घुस कर देखते सांप काटता है कि नहीं। बिच्छू घास को अनोखे ढंग से छूने के प्रयत्न में दिन दिनभर हाथ खुजलाते रहते।

पाती कई बार भूखी आती और मेरी ओर बिना देखे ही मेरे पलंग पर ओढ कर लेट रहती। पाती भूख लगी है "अल्ले नई" (अभी नई) आधी पहाडी और आधी देसी के अद्भूत मिश्रण मे वह सदा तीर्थराज सी पुण्यमयी लगती मुझे। उसका मना करना उसकी भूख का प्रतीक होता। पाती को आंखे केवल बरसाती ताल सी लहराती भँवर थी पर कभी छलकती बरसती नहीं थो किन्तु मैं सदा सावन भादों बनी रहती। संसार समझता यह ग्राम किशोरी मुझे रोना सिखा रही है। मुझे रोने का रोग होगया था जैसे।

मेरा अन्तर एक काल्पनिक दुख की सीमा से अनजाने ही सिर धुनता : कदाचित भावुकता छन्द बद्ध होकर निकलना चाहती थी किन्तु बाहर पैर रखने में उस नववधू सी हिचक रही थी जिसे द्वार के बाहिर आने की सख्त मुमानियत हो। अंतर पिंजडे सा दूर उडना चाहता था पर स्यूलता कसकर जकडे हुए थी। इसलिए कदाचित प्रतिक्रिया केवल आसुंओं मेंही होती थी।

पर्वती ग्रामीण युवतियों से मेरा खूब घना परिचय हो गया था। पहाडी गाने वे मेरे सम्मुख गाती। उन्हें मैं फिर गाती तब वे ऐसी खिची चली आती जैसे कृष्ण की मुरली पर गोप वधुएं। पाती और में जरा उँचाई पर बैठ जाते और अन्य युवतियां नीचे बैठकर कभी होली गातीं कभी, लोकगीत। दीवार की उंचाई से ईटों की दरारों में पैर फंसा फंसाकर हम भी

उतर जाते और फिर उनकी हँसिया और उसके स्वर में स्वर मिलाकर लहराता गढवाली गीत 'छान बिलौरी में झुठा दियो बौजू लागला बिलोरी को घाम' सब चले जाते तब भी वह चांदनी में बैठी मुझसे आग्रह करती फिर से गाओ न'।

हमारे कालेज और स्कूल का समय विभिन्न था। कभी कभी उसे जल्दी लौटना होता तो मार्ग में मिल जाती। में आरही होती वह थकी हारी अपनी लम्बाई को झुक कर छुपाती कुछ दौडती सी चली आती। न जाने उसे कितनी लगन थी। कितनी कार्य तत्परता थी। रास्ते में सबसे बोलती चली जाती। जितने दूधवाले मिलते सबसे बात करती और गांव के उतार तक आते आते जैसे पीली पडने लगती। वे रास्ते से मिल जाती तो पुस्तकें मेरी ओर से हटाकर दूसरी ओर कर लेती और बडी आर्त सी होकर मेरी ओर देखती। मैं समझ न पाती कि वही बालिका जो खेलने आते समय इतनी प्रसन्नचित और ओजस्विनी सी रहती है वह मार्ग में हतप्रभ क्यों होजाती है।

मेरा जब जी ऊबता तो मैं ऊँचे अंगूरों की बेल वाले चबूतरे पर खडी होकर पुकारती पाती. .....आ-बल सधू घरऽ लगेणु..... 'अल्ले औणी' की प्रतिध्वनि से सारा प्रान्तर प्रकम्पित हो जाता और वह पाँच मिनट के अन्दर। गाय भैंस की सी चिरायँध भरी कटु तथापि प्रिय गन्ध बिखराती सी मेरी आखें बन्द कर लेती।

कभी कभी मुझे स्वजनों के अभावमें भी रहना होता तब वह न जाने कहां से कलरव का स्रोत जा लाती और मेरे अमुखर प्रकोष्ठ मे लहरा देती। भोली भोली कविताए उसे इतनी अच्छी लगती कि उनमें गीत बन कर उतर आने के लिए वह मरकर नक्षत्र बन जाना चाहती थी। पूर्णिमा का इन्दु उसे विशेष प्रिय था और हर पूर्णमासी को बिना भूले न जाने कहां से टपक पडती और आकाश मे कभी मुस्कराते कभी छिपी बदलियों के अवगुण्ठन मे लजाते कभी दामिनी की कौंध मे लापता हुए सुधाकर की ओर संकेत करके कहती 'मुझे वह भी तुम्हारे जैसा प्यारा लगता है। मुझे उसके इस वाक्य पर सदा इतनी हंसी आती कि शनैं शनैः उसे मैं पागल समझकर उसकी इस बात की उपेक्षा भी करने लगी। एक दिन क्रोध में आकर मैंने कह भी दिया कि आकाश में तो एक चन्द्र है पृथ्वी पर दो जगमगा रहे हैं ने 'और तू' पता नहीं यह उसे व्यंग लगा क्या और वह उठकर चली गई। कई दिनतक दिखी नहीं मैंने लाखों आवाज दे डाली सर उल्ले डा ओणू कभी सुनाई न दिया। मैंने अपने आपको कितना धिक्कारा किन्तु पाती नहीं बोली। मैं सदा उसकी प्रतीक्षा करती। ईंटो के मुंडेर पर बैठी राशि राशि चांदनी में डूबी हुई वनस्थली को देखती। मुझे सारा प्रान्तर पाती की धूमिल आखों सा कुहासे सें भरा लगता। चादनी जैसें उसे फोडकर निकल नहीं पारही थी ठीक वैसे ही जैसे पाती के आंसू आखों मे ही उमड कर वहीं खो जाते थे।

उसे आलू का भुरता बहुत पसन्द था वह भी मैंने छोड दिया। मैं जाऊं कैसे उसके पास नीचे गांव में महामारी का प्रकोप था। और वहीं कहीं पाती भी भूसे के ऊपर धुएँ के ढेर के नीचे उकसी हुई कोठरी में घुट रही होगी। मुझे उस समय लगा जैसे पाती मुझे चाँद सुन्दरता के कारण नहीं वरन नीचे न आ सकने के कारण कहती होगी।

उस दिन मुझे अपनी भूल पर पश्चाताप हुआ और मै रात में चुप चाप सियारों की हू हू की उपेक्षा करती हुई अकेली उस ओर बढ चली। कुत्ते भी नए व्यक्ति पर आश्चर्य चकित होकर गुर्रा गुर्रा कर रह जा रहे थे। उन्हे अपनी पाती से प्यार था इसलिए पाती के लिए जाने वाले को फाड नहीं डाल रहे थे। मुझे मार्ग तो ज्ञात न था। दूर से सरल सीधा दिखाई पडने वाला ग्राम जैसे लखनऊ की भुल भुलैया बन गया था। हर बार चक्कर काटकर वहीं आजाती। भय से कलेजा कांप कांप जाता। आखिर यह हो क्या रहा है। कहीं बास से झुरमुट में जंगली खरगोश सरसराता हुआ निकल जाता। कभी गाय, भैंसों की रोमंथन ध्वनि सुन पडती, कभी एक आध कराह दीपों के चारों ओर विषैली धूम की लकीरे सी बनी जा रही थी और कभी कभी झलक जाती गैस की शीशों से छनकर आती हुई रोशनी। जैसे जल में डुबकी लगाकर दिखाई पडनेवाली चांदकी आभा। मुझे पाती का घर न मिला और मैं लौट आई।

दूसरे दिन से मै भी ज्वर पीडित थी। कालेज से आते ही मेरा शिर घूमा और मेरी संज्ञा लुप्त होने लगी। घरतक चलकर पहुंचना कठिन होगया और मै ढाल से लुढक पडी। जाने कैसे बच गई। ज्वर भूत की तरह सवार था।

मेरी अस्वस्थता में भी रोगिणी पाती आ पहुंची उसके पाण्डुर मुख पर धंसी हुई आं ों में जैसे जीवन ही नहीं शेष रहा था। पलकें झिपती तो लगता कोई सूत्रधार इन्हें बरबश ढँकता और खोलता रहता है। पीली पाती डिब्बे में बोए हुए धान के पौधे सी बुझी बुझी हो गईं थी। लगता था बरसों से भोजन देखा ही न हो।

मैं भी अच्छी हो चली पर मेरा ज्वर अपना आसन अन्दर जमा रहा था। हम दोनों ही रोगी उदासीन से थे। मुझ में जीवन के प्रति अमोघ विरक्ति भर उठी थी मुझे अपनी मृत्यु की चर्चा करने में सुख मिलता था कदाचित इसलिए कि मेरी मृत्यु पाती की सबसे बडी हार थी। मैंने एक दिन हँसकर कह दिया 'पाती अब मैं चांद बन जाऊंगी' तब उसने न तो मेरा मुंह बन्द किया न रोषही प्रगट किया केवल गम्भीरता पूर्वक बोली

बडे आदमियो को नौकर की जरूरत होने वाली ठहरी है। मै जाकर साफ सूफ कर रखूंगी। झाडू बुहारु कर रक्खूंगी तब तू आने वाली ठहरी बल

° ° °

मैं रुग्णा ही परीक्षा की तैयारी कर रही थीं कि सदा को भाँति पाती मार्ग में मिली। वह भी परीक्षां मे व्यस्त थी। मैने उसे दूर से देखा, बह आगे आगे बढी जा रही थी। इतनी तेज थी उसकी चाल कि बीच मे तीन बार पुलिया पर बैठ बैठ कर भी वह मुझसे आगे ही बढी चली आ रही थी। किसी प्रकार पहुंची तो देखा चेहरा स्याह पड गया था। होठों पर पपडी पडी हुई थी और आंखों में विवशता की बूंदें छलक रही थी गले के नीचे हड्डियाँ ऐसी उभर आई थी जैसे उनमे ठोक ठोक कर दरारे डाल दी गई हो। साँस बेतरह फूल रही थी। मैने पूछा 'पाती पर्चा कैसा हुआ' वह घबराकर बोली 'आज तो होगया कल और होजाय फिर बस। कल आखिरी है।

परीक्षा समाप्त हो गई। पाती अच्छी हो गई। फिर एक बार क्रीडा प्रिय किशोर किशोरियों की बाछें खिल गई। परन्तु पाती से सब घृणा करने लगे थे। जाने क्यों वह निरीह बालिका लांच्छित हो रही थी। मेरा उससे मिलना जुलना बन्द हो गया। वह कभी सांझ के झुटपुटे में दौड आती, हलकी हलकी सर्दी पडती होती, आकर रजाई में दुबक जाती। मैं भी डरसे कुछ न बोलती। मुझे साथ सोना सदा अरुचिकर रहा पर मैं इस भय से न बोलती कि वह दुखी होकर कह देगी। 'मैं गाय भैंस जैसी महकती हूं न? कोई कहता वह 'बुरी लडकी है' कोई कहता 'यह क्या बेमेल दोस्ती' पर दोस्ती जो थीं और वह भी ऐसी ममत्व भरी कि मृत्यु में भी साथ नहीं छोडना। पाती कहा करती थी सक्कू तू मुझे निकाल दें तो मैं मर जाऊं' वह दांत निकाल कर फीकी हंसी हंसती और मै डाँटकर कहती जा निकल जा न।

पर यह कहना तो जैसे ब्रह्म वाक्य होगया। उसका उस ओर से आना जाना तक बन्द होगया। एक दूसरे लम्बे मार्ग से पढने जाती। मै दूर से उसे सिर झुकाये लम्बे लम्बे डग बढाये आते देखती तो पुकारती पर वह तो कठपुतली की तरह फिसलती चली जाती। उसे इतना मोह था मुझसे न जाने क्यों इतनी निर्मोही हो गई पर्वती पार्वती। मैंने तो उससे अनेक बार कहा कि इस घर का जिसका नाम कैलाश है तू ही सार्थक कर सकती है। मुझे तो तपोवन में रहना चाहिये। तब वह प्रत्युत्पन्नमती उत्तर देती मेरे जैसे जहर को भी गले में रखनेवाले तुम तो शिव हो न, लेकिन कहीं पार्वती की भूल करने के कारण त्याग न देना। (पाती रामायण खूब पढती थी) पाती भूल भी कर सकती है यह तो मैं कभी नहीं जान पाई। पाती की चर्चा बढने लगी। वह जाने क्यों अपने आप में ही संकुचाई सी मुझ से दूर दूर रहती। उसका पिता कहता कि 'वह किसी का कहना नहीं सुनती' अनुचर कभी आकर सूचना देते वह सन्ध्या समय पहाडी पर अकेले घूम रही थी। कभी कुछ लिखने पढ़ने में व्यस्त होती तो वह किसी समय भी शीशे में से झांक कर दौड जाती। मैं जबतक द्वार खोलूं वह हवा हो जाती।

पाती आस्तिक थी पर उसकी आस्तिकता भी इतनी बौद्धिक थी कि मुझे उसपर सदा आश्चर्य होता। जीवन के प्रति उसका बडा तटस्थ भाव था। हंसने में उसके कभी कभी बडी कटुता होती जब अन्दर को दबे हुए दांत अपने पपडी पडे होठों से छिपाती हुई वह फीकी सी हंसी हंसती तब तो मुझे उसपर करुणा हो जाती किन्तु जब कभी वह खिलखिला कर जोर से हंसती तो मुझे उसपर बडी खीझ आती। जाने क्यों मुझे उसका अट्टहास बडा भद्दा लगता। हरी हरी दूब पर सर्दी की साँझ में बैठकर जब हम दोनों

शीत से ठिठुरते से रहते तब वह ऊँची किन्तु स्पष्ट सडक से वायु सेवन के लिए आते जाते आदमियों को बडी तत्परता से देखती। हवा तीर की तरह नुकीली थी। पत्ते लडखडा लडखडाकर चलते चलते गड्ढों मे गिरे जा रहे थे। 'धारे' से जल लानेवाले बंहगीवाले कनस्टरों को पी टप् खट् झन् झन् फैलाते हुए आ जा रहे थे। ढाल से उतरते पैर की फटी फटी अंगुलिया और उनके भारी भारी फटे फटे पैरों की बिवाइयाँ जैसे रक्त उगलने को तैयार हो जाती। इस शीत में भी उन्हें कुछ नहीं लगता। इसी लिए हम दोनों भी बाहर ही बैठें यह सब देखा करते। उनके कन्धों पर बांस रखते रखते स्थायी गढे पड गए थे जिसमें वह इस सुविधा से बास फिट कर लेते जैसे उनके कन्धे का प्रयोग केवल यही हो। पर पाती का ध्यान इस ओर न होता। वह प्रत्येक जानेवाले को पहचान कर नाम बताती। उसमे अधिकांश परिचित होते। मैंने उससे अनेकबार पूछा कि तू क्या खोज रही है। वह उदासी से उत्तर देती "टी. बी. के मरीज कैसे चलते हैं वह देखती हूं'

क्षय के रोगी इस जाडे में यहां कहां। लेकिन उसे जाडे में ही यह देखना पसन्द था। पाती मुझसे झूठ बोल रही थी। यह मुझे मालूम हो रहा था। उसने मुझसे कई बार पूछा 'तुम दुबली क्यों होरही हो' बुखार अब भी आता है क्या' उसके ऐसे प्रश्नों का उत्तर केवल मेरे पास यही होता

"हां मरने की तैयारी कर रही हूँ"

वह झट् कहती 'अरे अभी रास्ता साफ करने झाड़ू लेकर में तो गई ही नहीं।

ऐसा लगता था जैसे पाती किसी बडे भारी अनुष्ठान में व्यस्त है। मुझे जैसे वह अपने अनुभवों के आगे बच्चा समझती। कभी कभी तो मुझे "तुम कुछ नहीं जानती बल 'तुम्हें तो बस कविता आनेवाली ठहरी' कहकर मेरा उपहास भी करती। मै अपनी उदार वृत्ति से जब कहीं किसी का उल्लेख कर देती तब अपने बाल अनुभवों में वार्धक्य की गरिमा लपेटे गर्दन ऊंची करके कहती। यह शव खराब हैं। वह 'शब' को खराब ही जानती थी अच्छाई में उसका 'भरोसा ही न था। या मुझपर भरोसा था तो वह भी ऐसा कि दूर जाने के नाम से उसका चेहरा पीला पड जाता।

मै उसे 'खन्याडी की मेम' भी कहा करती थी एक दिन हँसी मे पूछा भी कि तेरा साहब कब आएगा'

वह गम्भीर हो गई, जैसे मैंने कोई अप्रत्याशित बात कहदी हो। 'बोजू बात कर रहे हैं' पर मै तो पढने देश चलूगी न तुम्हारे साथ' पाती को मेरा साथ छोडना कभी इष्ट न था। न जानें उस भोली बालिका में कहां से इतना ममत्व जाग उठा था। वह सब कुछ को छोड कर दो वर्ष के अदीर्घ परिचयवाली सत्रू को छोडने की कल्पना भी नहीं करना चाहती थी। मेरा यह स्थान त्यागना निश्चित हो चुका था और उसका आना अत्यधिक कम– जाने कहाँ से एक दिन सुनकर आई कि में डेढ दो महीने में जा रही हूँ। बिना देखे चली गई और एक महिने तक न आई।

° ° °

ग्रीष्म ऋतु का मधुर प्रात था। गुलाब की क्यारियां बतरह गदराई हुई थीं। कैलाश गुलाब के लिए प्रसिद्ध था। छोटे बडे लाल पीले सबतरह के सुमन सुहास बिखेर रहे थे।

'बडी सुहानी ओर' गीत कोई पडोस में गा रहा था। मैं अनायास ही कुछ प्रसन्न थी। गौरीशंकर की चोटियाँ पीले सोने सी चमक रही थीं। लगता था कोरो पर सोना मढा दिया हो। शेष भाग श्वेत स्फटिक सा जगमगा रहा था। बीच बीच में कहीं हरीतमा गहन नीलिमा के धब्बे दूर से ऐसे दिखाई देते जैसे संगमरमर की सीढियों पर काई जम गई हो।

आसपास बादलों की ऊँची नीची पक्तियाँ नील नभपर से मचल २ कर उठी हुई उज्वल लहरों सी प्रतीत हो रही थी। 'गौरी शंकर' श्रृंग के पीछे से फूटती हुई अरुण की अरुणाई ऐसी विकीर्ण हो रही थी जैसे किसी देव-पुरुष के पीछे प्रकाश का जगमग कुंडल नवल हो उठा हो। नीचे पाती का ग्राम कुल कुल कर रहा था। कोसी की पतली इठलाती धारा का आकार बनाती ग्राम को अपनी क्षीण भुजाओ में बांधे पय पान करा रही थी।

मैंने निश्चय किया था पाती के घर जाकर उसे चकित कर दूं। सब लोग कहते थे वह ननिहाल गई है। पर मेरा विश्वास था वह बिना कहे न जायगी। मेरे विचारों के साथ ही पाती उसी पीछेवाले रास्ते की ओर डगमगाती हुई बढती दिखाई पडी। मुझे मालूम था कि उसपर पुकारने का असर न पडेगा। उसे चुप

चाप बढने जाने दिया । मुझे पाती पर क्रोध आरहा था । मैंने भी पीछे मौन धारण करने का दृढ निश्चय कर लिया था । वह आखिर इतनी क्रोधी क्यों हैं ।

° ° °

समय बीतता जा रहा था । उस दिन पाती को जाते देख मेरी प्रसन्नता एसी क्षुब्ध हुई कि न तो पाती को देखने की इच्छा हुई न उस 'कहानी मोर' की ओर ध्यान करने की । मुझे भी वही उदासीवाला रोग और ज्वर प्रारम्भ हुआ । उसे सब क्षय के लक्षण कहते थे । में चिकित्सक के यहाँ तक पहुंचा दी गई । डॉक्टर व्यस्त था A. P. कर रहा था । मै चुपचाप दूसरे कमरे में बैठी सोच रही थी कि मै और पाती सदा साथ बीमार पडते है । पहली बार ग्राम में महाभारी थी तब भी पाती भूसे के ढेर में लेटे लेटे विवशतापूर्वक अच्छी हुई । मेरे लिए कई स्वर्ग की सुविधाएँ उतर आई थी । आज भी में आ पहुंची हूं पर पाती न जाने कैसे जी रही होगी । मुझमें और उसमें कैसा वैषम्य भरा मेल था । वह मेरी किसी सहायता को निर्धनता का उपहास न समझ ले इसलिए में उससे और डरा करती थी । उसके नन्हे से उर-कूल को अपनी किसी भी वैभवमयी विचारधारा से छू कर गिरा देना मुझे कभी इष्ट न था तब भीं वह मुझ से नाराज हो जाती हैं मेरा हृदय स्पन्दन बन्द होगया था हाय तभी खट् से द्वार खुला– दरवाजे के सहारे सिर टेके मुरझाई हुई छुई मुई सी रेखा मात्र पाती खडी थी। मुझे मालूम नहीं क्या होगया था । में अपनी स्थिति भूल कर उसके समीप विद्युत वेग से पहुंच गई। पाती के अतिरिक्त केवल आंसू अभिव्यक्ति को लिए मचल रहे थे । शेष सब पाती की तरह शून्य था । उस शव से निर्जीव आकार में जाने कहां से बल आगया और वह झटका देकर ऐसी दूर हट गई जैसे उससे बिजली का तार छू गया हो। वह पुटपुटाती हुई एक ग्वाले का सहारा लिए पढ़ने लगी–

तुम तो देश जानेवाली हो रही हो । जाओ न ब–ल मै भी जानेवाली ठहरी परसों । एक दो दिन पहले का दिन नही वरन १०,१५ दिन महीने पहले और बाद को भी वह परसों ही कहते हैं ।

डाक्टर ने बताया उसी को A. P. दे रहे थे । उसे क्षय हो गया है और मेरा उसे इस प्रकार छूना कभी ठीक नहीं क्योंकि मै भी दुर्बल और ज्वर ग्रस्त हैं ।

पाती मेरे नेत्रों से ओझल होगई पर मन में बसती चली गई । मेरे आसुओं ने अन्तर की मलिनता को जी भरकर धोया किन्तु में स्वयं को क्षमा न कर सकी तो क्या पाती इसी लिए मेरे जाने के नाम से बीमार है और में उसे छू नहीं सकती, देख नहीं सकती । उसे क्षय है । मुझे अपने ऊपर ही घृणा हो उठी, औषधियां नाली में फेक दी और निश्चय कर लिया कि कभी कोई औषधि न खाऊंगी। मुझे जीने का अधिकार क्या ? जीवन तो पाती को चाहिये । मेरी शारीरिक दुर्बलता भी मुझमें अक्षय मानसिक बल दे रही थी । मुझे ऐसा लग रहा था जैसे पाती मुझसे पूर्व प्रबन्ध करने के लिए जाने की चिन्ता में ही इतनी शीघ्रता कर रही है। मुझमें पाती की रक्षा का बल जैसे आ रहा था । मै सोच रही थीं पाती का जीवन केवल मेरी अपेक्षा कर रहा है । मैने उसे सूचना भिजवादी कि मैं नहीं जारहीं हूं । स्वस्थ्य होकर आए फिर साथ ही पढ़ने चलेंगे ।

१०,१५ दिवस बाद ही उसके पिता ने सूचना दी पाती बच जायगी । वह बिलकुल ठीक हो रही । कल आपसे मिलने आएगी । मेरे झूठ ने पाती में प्राण डाल दिये । वह फिर नव जीवन की स्फूर्ति लिए थिरक उठी । अपने गांव की पगडण्डी सी टेढी मेढी मांग से वे रुखे बालों को दोनों ओर बिखेरे हुए दीपक की लौ सी जगमगांती हुई आ पहुँची । में उसके समीप थोडी उसकी टूटी टूटी सांसों को गिन रही थी जो जीने की भीख मांग रही थीं। पाती बेहद खुश थी। विशेषकर मेरे पास बैठने से । मै भी किसी को आते देख उससे दूर हो जाती अन्यथा कोई टोक देता और पाती फिर अपने को क्षय के हवाले कर देती । तो पाती बेहद प्रसन्न थी पर मै बेहद दुःखी । मेरे जाने में तीन दिन शेष थे । में वहां कहाँ रह सकती थी जब सभी स्वजन वह प्रान्त ही छोड रहे थे । पाती भी क्यों जाने दी जाती मेरे साथ। पाती नव निर्माण के स्वप्न देख रही थी। मैं नव निर्माण की भयानक वास्तविकता । मै उसे सूचित करके उसकी मृत्यु समीप नहीं लाना चाहती थी। पाती जाने क्यों अरुण हो उठी थी। उसके श्यामल कपोलों पर स्निग्धता और दीप्ति जगमग कर रहे थे । वह 'कल फिर आऊंगी' कहकर चली गई। मैंने भी कहा हां अमा पर परसों न आना । परसों आठ बजे तुम्हें डाक्टर ने बुलाया है । १५, २० दिन तक फिर ढाल पर न चढना । मुझ से डाक्टर ने कहा है कि मैं समझाऊँ । मेरा भी कहना न मानेंगी पाती !

पाती ने सिर हिलाकर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दी। दूसरे दिन वह आई मेरे हाथों पर अपने बेतरह पसीजते हुए हाथ रखकर बोली 'अब न जाना तुम, मैं अच्छी हो जाऊंगी'

मेरी आंखें बरसने के लिए मचल रही थीं। आंसू पीने का प्रयत्न करने में लगता था अपना रक्त पिए जा रही हूं। जी में आया पाती के सामने ही जी भर कर रोऊँ। उसके गीले गीले हाथों को और गीलाकर दूं और कहूं कि 'तू मेरे सामने ही मर जा न पाती पीछे क्यों मरेगी।' मरने की चर्चा मैं करती और तैयारी तू कर रही है। मेरी आत्मा क्रन्दन कर रही थी। आंखें पाती की दीप्ति की ओर उठ नहीं रही थी। वह दीपक की अन्तिम लौ की तरह तेजस्विनी जो हो उठी थी।

पाती चली गई। वह चाहती थी आज साथ रहे पर मै उसे घर में नहीं ले जाना चाहती थी। सामान की अस्त व्यस्तता देखकर वह समझ जायगा।

दूसरे दिन आज्ञाकारिणी पाती नहीं आई। पर विश्वासघातिनी आठ बजे मैंने उसे और उसके ग्राम दोनों को छोड दिया।

१० दिन बाद उसका प्रथम पत्र मिला जिसकी प्रक्रिया आज भी उसकी आंखो की तरह तरल सजल और चमकदार है। वह चारपाई पर पडी अपनी अन्तिम श्वासों में मुझे याद कर रही थी। अब वह न बचेगी क्योंकि में उसे छोड आई। जादू से अच्छी होने वाली पाती जादू की तरह फिर जीवन से दूर मृत्यू की ओर दौडने लगी।

पाती ने मेरे प्रति उत्तर की प्रतीक्षा भी नही की। उसे नक्षत्र बनने की धुन जो थी। वहां पहुंचकर जगह साफ रखने की लगन जो थी। रोनी सकू भी यहीं पहुच जाय तो पर यह तो उसकी भूल थी। उसके अन्तर्मुखी आंसू उसके फेफड़ों को गला रहे थे। सकू की आंखें बरसतीं थीं इसलिए केवल कपोल ही धुल सके। फिर वह जो पाती की कन्या जो थी....

पाती का क्या हुआ यह बस वही जानती होगी। प्रथम और अन्तिम पत्र ही पाती का अमूल्य उपहार आज भी जीवन की भीख मांगा करता है। उसमें से कभी पाती के बालों सी महक आती है, कभी अगूंर की बेल जैसी। कभी उसमें जोवन का प्रकाश अगडाइयां लेता तो कभी मृत्यु की नीरवता, पर पाती कभी नही सामने आती; जैसे उसे मुझसे घृणा होगई हो। पाती स्मृति में सुमन बनकर शेष रह गई है जिसका सम्बल न जाने कबतक ऐसा ही मधुर एसा ही, नवल और इतना ही सजीव बना रहेगा।

रोइए मत-हंसिए !
ग्राहक बनिए !!
प्रधान सम्पादक
बेढब बनारसी
सम्पादक
गोविंदप्रसाद केजरीवाल
'करेला'
(हास्य-व्यंग्य प्रधान अनूठा पाक्षिक पत्र)
वा. मू. ४॥) एक प्रति ≡)
प्रकाशक
युगाश्रय प्रेस
विश्वेश्वरगंज
बनारस
शुभ सम्मतियाँ
(१) दैनिक नवभारत टाईम्स, बम्बई।
"करेला" का पहला अंक ऐसा है जो दूसरे अंक के प्रति उत्सुकता जागरूक कर देता है। यह अपने प्रयत्नों को सजगता से हिंदी में हास्य रस की वर्षा करने लगे. तो इस बात को दुहराने की आवश्यकता न रह जायगी कि हिंदी में हास्य रस की कमी है।"
(२) हास्य सम्राट श्री. जी. पी. श्रीवास्तव।
"आपका 'करेला' वास्तव में हास्यमय, हृदयग्राही, विनोद तथा व्यंगपूर्ण है। मैं हृदय से इसकी सफलता चाहता हूं।"
'करेला' ह्वीलर के बुकस्टाल पर खरीदें

संपादकीय-विचार

समन्वय की भावना

इतिहास के घटना चक्र को देखकर यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि विश्व की जाग्रत शक्तियां बंद दरवाजों और दीवारों को फांदकर जबतक खुली हवा में नहीं आ खडी हुई, तबतक आपसी प्रतिद्वन्द्विता एवं संघर्ष की भावना भीतर ही भीतर कुंठित रहकर पुराने पथ से नए पथ की खोज में अग्रसर न होसकी। प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से विश्व की विभिन्न संस्कृतियों, विचारधाराओं, दर्शन, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, भूगोल, इतिहास, विज्ञान और मानव के उदात्त चिंतन एवं सौन्दर्य-तत्वों का परस्पर आदान-प्रदान और समन्वय चिरकाल से होता आया है। मानव कल्पनाओं और सांस्कृतिक अवयवों संस्थान, विशेषकर उनका संगठन और संतुलन एक दूसरे का पूरक, उत्कर्ष और पाथेय रहा है, यों कुछ मतभेदों ने मूलभूत एकता और विश्व को इकाई मानने की भावना पर समय-असमय कुठाराघात भी किया है।

आज समन्वय की भावना एक नए रूप में जाग्रत होरही है। मानव मानव मिथ्या औपचारिक आवरणों को चीरकर एक दूसरे को समझने-समझाने की चेष्टा में निरत है। दृष्टिभेद होते हुए भी भिन्न भिन्न देशों की विचारधारा, साहित्य, संस्कृति बहुत कुछ समान ही है-ऐसा प्रायः सभी समझ गए हैं।

अभी हाल में ही पूर्व और पश्चिम के लगभग एक दर्जन देशों के विचारकों और तत्त्वदर्शियों का सम्मेलन राजधानी में हुआ था, जिसमें फरांस, ब्रिटेन, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, अमरीका, जापान, मिस्र, तुर्की, लंका और इटली के दार्शनिकों और विचारकों ने मानव कल्पना, पूर्व-पश्चिम के शिक्षा-दर्शन और संस्कृतिक सम्बन्धों के बारे में विचार-विनिमय किया था। मानवीय कल्पनाओं में मेल कैसे हो-इसके लिए सभी उत्सुक और चिन्तित थे। सभी वैयक्तिक और सामाजिक विकास के परे उस सर्जनात्मक प्रतिभा का समाधान ढूंढ रहे थे जो मानव मनों का नेतृत्व करती है।

बहुविध तत्वों के योग में उत्कृष्ट साहित्य और मानव चिंतन की व्याप्ति है, एक दूसरे से बहुत कुछ लिया और दिया जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मतभेदों के बावजूद भी एकीकरण की भावना जगाई जा सकती है और विश्व के सम्मुख अनन्त प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। भारत के शिक्षा मंत्री मौलाना आजाद ने इस सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किया है, "समाज-कल्याण की भावना के कारण कई बार अधिनायकी समाज पैदा होगए, जिन्होंने व्यक्ति को दबा दिया। आज जब विज्ञान के कारण पूर्व और पश्चिम निकटतक आगए हैं, यह आवश्यक है कि व्यक्ति या समाज के प्रति, पक्षपात दूर किया जाय और ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित की जाय जिसमें वैयक्तिक और सामाजिक गुणों का ध्यान रक्खा गया हो।

आधुनिक जगत में शिक्षा कार्य एक संगठित समाज में शक्तिशाली व्यक्ति पैदा करना है। इस विकास में पूर्व और पश्चिम दोनों की कल्पनाओं को सहारा देना चाहिए।"

किन्तु यह कार्य सम्मेलनों और कोरी बातों से सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इसके लिए सक्रिय रूप से कुछ करने और आगे बढने की आवश्यकता है। मौलाना आजाद के शब्दों में 'विश्व की लौ फिर से केवल तभी सुलग सकती है जब मानव-आत्मा का पुनर्जागरण हो।' विश्वात्मा की एकता के लिए साहित्य और कला ही सफल माध्यम रहा है। इसका कारण है- साहित्य में कोरी अभिव्यक्ति नहीं, वरन् रूप-विधान करने की भी सामर्थ्य है। हमारे सुचिन्तकों, साहित्य-सर्जकों और तत्त्वदर्शियों का कर्त्तव्य है कि वे आगे बढें और सच्चे अर्थों में समन्वय की भावना निष्ठा और खोया विश्वास जगावें।

कुछ मास पूर्व यहां के कलाकारों, साहित्यिकों और पत्रकारों के प्रतिनिधि-मण्डल रूस और चीन गए थे। वे प्रेम, विश्वास और परस्पर समन्वय की भावना लेकर भारत लौटे। चीन और अन्य देशों के प्रतिनिधि मण्डल भी इधर आए और उनमें भी वही पारस्परिक सद्भावना जागी। पिछले दिनों

श्रीमती महादेवी वर्मा और कुछ अन्य साहित्यकारों ने दक्षिण-पथ की यात्रा की थी। इस दौरान में उन्होंनें यह अनुभव किया कि विचारों के आदान-प्रदान और एक दूसरे से परिचय प्राप्त करने की कितनी आवश्यकता है, बिना इसके साहित्य पंगु और निर्जीव हो रहा है। उधर से लौटकर श्रीमती वर्मा ने अपने वक्तव्य में कहा, "जो सरकार समुद्र-पार शिष्ट-मंडल भेजती है, उसे हिमालय से समुद्र तक फैले हुए अपने देश के भिन्न भिन्न प्रदेशों में बसे व्यक्तियों को एक दूसरे से परिचित कराने का प्रयत्न भी करना चाहिए। यदि ऐसा न होगा तो आज नहीं तो कल यह अपरिचय ही विरोध का सूत्रपात करेगा।"

किन्तु हमें सरकार के भरोसे ही हाथ पर हाथ रखकर बैठे न रहना चाहिए। जिस कार्य को राजनीति नहीं कर सकती वह साहित्य और कला के समन्वय से सरलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। महादेवीजी ने भी स्वयं स्वीकार किया है, "हमारे देश में सांस्कृतिक एकता का कार्य चिंतक, कवि और साधक ही करते रहे हैं! उत्तर के चिंतन और जीवन–दर्शन के विकास में शंकराचार्य, माध्वाचार्य, रामानुज, बल्लभाचार्य आदि ने जो योगदान दिया है उससे प्रत्येक विद्वान् परिचित है। आज यदि दक्षिण के किसी किसी कोने में आर्य और द्रविड संस्कृतियों का प्रश्न उठ रहा है तो उसके मूल में उत्तर–दक्षिण का अपरिचय ही है, जिसे दोनों खंडों के चिंतक और साहित्यकार दूर कर सकते है"।

अच्छा हो, अपने यहाँ के समर्थ लेखक, साहित्यकार और कला-प्रेमी समय और अवकाश निकालकर भारत के विभिन्न प्रान्तों में ऐसी ही साहित्यिक तीर्थ-यात्रा करें और वहाँ की भाषा, साहित्य और कला से परिचय प्राप्त करने का प्रयास करें। केवल घूम फिरकर, शिक्षालयों का निरीक्षण करके और साहित्य की स्थूल जानकारी प्राप्त करने से ही कुछ लाभ न होगा। साहित्य में पैठकर, साहित्य को आत्मसात करके ही ऐसे उदात्त तत्त्वों का अनुसंधान हो सकेगा जो साहित्य, कला, संस्कृति का परस्पर गठबंधन कर सके। इसके लिए साहित्य-साधना और गंभीर अध्ययन अपेक्षित है।

ज्ञान-अर्जन के मूल में नए सिद्धान्तों के जरिए अपने को सबल बनाकर एक नवीन व्यष्टिवादी रुख अपनाने की आवश्यकता है जो सच्ची समन्वय भावना उत्पन्न कर दे। इसके लिए सरकारी सहायता तो अनिवार्य है ही, हमें खुद भी अपने पैरो पर खडा होना चाहिए।

स्वर्गीय अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

कला-साधक श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर कला की सर्वांगिण उन्नति के लिए एक महाशक्ति के रूप में अवतीर्ण हुए थे। पिता गुनेन्द्रनाथ, भाई गगनेन्द्रनाथ और इनके चचेरे भाई रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वयं प्रसिद्ध कलाकार थे तो इनका समस्त परिवार कलकत्ता महा नगरी से पन्द्रह मील दुर उन्मुक्त वातावरण में जा बसा था और वहीं की हरियाली, मैदानों और खेतों खलिहानों में इनकी प्रतिभा पली थी। परंपरागत संचित संस्कारों को इन्होंने कला में ढाला और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जब राजपूत, मुगल और पहाडी कलाओं का ह्रास होरहा था तथा अंग्रेजो की शासन-शिक्षा ने भारतीय चित्रकला के गौरवमय अतीत को निगल लिया था उस समय इन्होंने ही मौलिक प्रेरणा के वशीभूत होकर अपने कुछ साथियों के साथ उसे पुनर्जीवन दिया था।

कलकत्ता के स्कूल ऑफ आर्ट के प्रिन्सिपल गुलहार्डी के तत्वावधान में इन्होंने पाश्चात्य कला का अध्ययन किया, किन्तु इन्हें उसी से संतोष न हुआ। उन्हें अपनी पारिवारिक लाइब्रेरी में कुछ मुगल कालीन चित्र कृतियाँ प्राप्त हुईं, जिससे इन्हे प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला और इन्होंने राधा-कृष्ण के अनेक कलात्मक चित्र बनाए। शनैः शनैः चीनी, जापानी और पाश्चात्य टेकनीक को भारतीय जामा पहिनाकर इन्होंने नवीन रूप दिया और हल्के रंगों, क्षीण रेखाओं और विभिन्न मुद्राओं की भंगिमा के योग से एक नवीन कला शैली का प्रवर्त्तन किया। किन्तु विदेशी शिक्षा से प्रभावित कुछ व्यक्तियों ने अवनीन्द्र बाबू की इस कला-शैली का बहुत दिनों तक विरोध किया और उन्हें जीवन में काफी उपेक्षा सहनी पडी। डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने इनसे हुई अपनी एक इण्टरव्यू का उल्लेख करते हुए बडे ही क्षोभपूर्ण शब्दों में लिखा था, "अवनीन्द्रनाथ के चित्र रद्दी के पर्चों की तरह संग्रहों में बिखरे हुए हैं। न उनका लेखा-जोखा है, न प्रकाशन और न राष्ट्रीय चित्रशाला के लिए उनकी प्राप्ति का कोई उपाय। हमारी उपेक्षा-वृत्ति उनकी चित्र-सम्पत्ति को ग्रस चुकी है। सुन्दर से सुन्दर चित्र अँधेरे में मुंह छिपाए पडे हैं। अवनीन्द्रनाथ के सर्जन की प्रखर किरणों ने हमारे अतीत और वर्त्तमान जीवन के कितने

अधिक भाग को आलोकित किया है; इसकी हर्षपूर्ण अनुभूति भारतीय हृदयों को जिस दिन होगी, उसी दिन अवनीबाबू का जीवन-स्वप्न सच्चा होगा। सारा देश कबतक इस प्रमाद निद्रा में सोता रहेगा।"

वस्तुत: इस कलाकार ने अपनी कला के विरासत के रूप में जो हमें दिया है उसका उपयोग हम उचित रीति से नहीं कर सके हैं और न उनके ऋण से उऋण होने का कोई उपाय सोच सके हैं। पटना के एक लेख का उल्लेख है जिसका शोर्षक है 'ए टैगोर एण्ड ए डोग' शीर्षक की व्याख्या करते हुए संपादक ने लिखा है, "पहले 'ए' का मतलब है अवनीन्द्र से। लेखक ने बताना है कि किस प्रकार पाँच दिसम्बर के नेशनल हेरल्ड' में दो समाचार प्रकाशित हुए—एक में बताया गया था कि बंगाल का वह सुप्रसिद्ध कलाकार चल बसा और दूसरे में कहा गया था कि कस्तूरबा आश्रम का एक कुत्ता मर गया। किंतु जहाँ अवनी बाबू की मृत्यु पर १३ पंक्तियाँ छपी थीं वहां उस कुत्ते की मृत्यु पर २० पंक्तियां। इसमें 'नेशनल हेरल्ड' का दोष नहीं था, बल्कि 'नेशनल हेरल्ड' ने उसे प्रथम पृष्ठ पर छापकर अपनी उस परम्परा को ही निभाया था जिसके अनुसार उस अखबार में फैयाजखां की मृत्यु को बहुत बडा महत्व दिया था। इसमें दोष था 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' का जिसने उस कुत्ते की मृत्यु को इतना महत्व दिया था। और इस कलाकार के सम्बन्ध में ऐसी उदासीनता दिखलाई थी। पी. टी. आय. की यह मनोवृत्ति क्या हमारी आपकी मनोवृत्ति का ही आईना नहीं है? क्या हम अपने कलाकारों के जीवन से उतनी भी दिलचस्पी रखते है, जितनी कि किसी आश्रम के रहनेवाले कुत्ते के जीवन से हमारी दिलचस्पी होती है। यदि ऐसी बात नहीं होती तो ऐसा न हो कि इतना बडा कलाकार हमारे बीच से उठ जाय और और उसके निधन पर हम सार्वजनिक शोक-सभायें तक नहीं कर पायें, फिर उनकी स्मृति रक्षा की क्या बात? किन्तु सोभाग्य की बात यही है कि अवनी बाबू ऐसे लोग हमारी शोक सभाओं और स्मारक आयोजनों की अपेक्षा नहीं करते, वे अपने पीछे ऐसी पीढी छोड जाते हैं जो उनके पथपर आगे बढ़ती और उनकी कीर्ति को बढावी जाती है। अवनी बाबू ने तो अपने सामने ही तीन पुश्त को अपने पथ का अनुगमन करते देख लिया था और कितनी ही शताब्दियों तक उनका यह पथ प्रशस्त रहेगा, इसमें तो संदेह ही नहीं।'

श्री मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौर
की
मासिक मुख-पत्रिका

वार्षिक मूल्य ४) **वीणा** एक संख्या ।=)॥ आने

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मध्य-भारत, मध्यप्रदेश और बरार, संयुक्त राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश और बडोदा की शिक्षा संस्थाओं के लिए स्वीकृत।

जो पिछले २५ वर्षों से नियमित रूप से प्रकाशित होकर हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा कर रही है। भारत के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में इसका उच्च स्थान है।

साहित्य के विभिन्न अंगों पर तथ्यपूर्ण एवम् गंभीर प्रकाश डालनेवाले लेख तथा परीक्षोपयोगी विषयों पर आलोचनात्मक समीक्षाएँ प्रकाशित करना इसकी प्रमुख विशेषता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा एवम् उत्तमा (रत्न) बी. ए. और एम. ए. के छात्रों के लिए इसके निबन्ध अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

"वीणा" का भारत में सर्वत्र प्रचार है।

'प्रवाह'

का

महिला साहित्यकाराङ्क

आगामी अप्रैल, ५२ को 'प्रवाह' पाँचवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इस अवसर पर हम 'महिला साहित्यकाराङ्क' निकाल रहे हैं जिसमें भारतीय साहित्य, कला, संस्कृति के सृजन में सहयोग देनेवाली भारतीय कवि, कलाकार महिलाओं के व्यक्तित्व और कृतित्व की सचित्र झांकी प्रस्तुत की जाएगी। इसमें हिंदी, मराठी, गुजराती, बंगाली. उडिया, काश्मीरी, मैथिली, कन्नड, मलयालम. तामिल, तेलुगु, पंजाबी, उर्दू आदि भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि साहित्यकार माहिलाओं के कृतित्व की विशद विवेचना रहेगी। देशी--विदेशी प्रमुख विद्वानों को लेख के लिए आमंत्रित किया जारहा है।

अपनी योजना की सफलता के लिए हम विद्वानों के सहयोग की आशा करते हैं। लेख १५ फरवरी के पूर्व तक सम्पादकीय कार्यालय, ७२३, दरियागंज, दिल्ली के पते पर पहुंच जाने चाहिए।

इस अंक का मूल्य १) होगा। किन्तु ग्राहकों को उसी मूल्य पर दिया जायगा। अपनी प्रति सुरक्षित करालें।

शचीरानी गुर्टू

७२३, दरियागंज दिल्ली

वनसुदा प्रत्येक भोजन का अवसर एक उत्सव बनाता है

चाहे पारिवारिक भोजन हो, चाहे मित्रोंका सहभोज, चाहे उत्सव सम्बन्धी भोज, वनसूदा स्वादिष्ट भोजन बनानेका अति उत्तम माध्यम है। वनसूदासे बने भोजनका रसमाधुर्य और सुपाच्य गुण प्रत्येक भोजनको उत्सवका अवसर बना देता है। आज ही एक टीन खरीदयेगा।

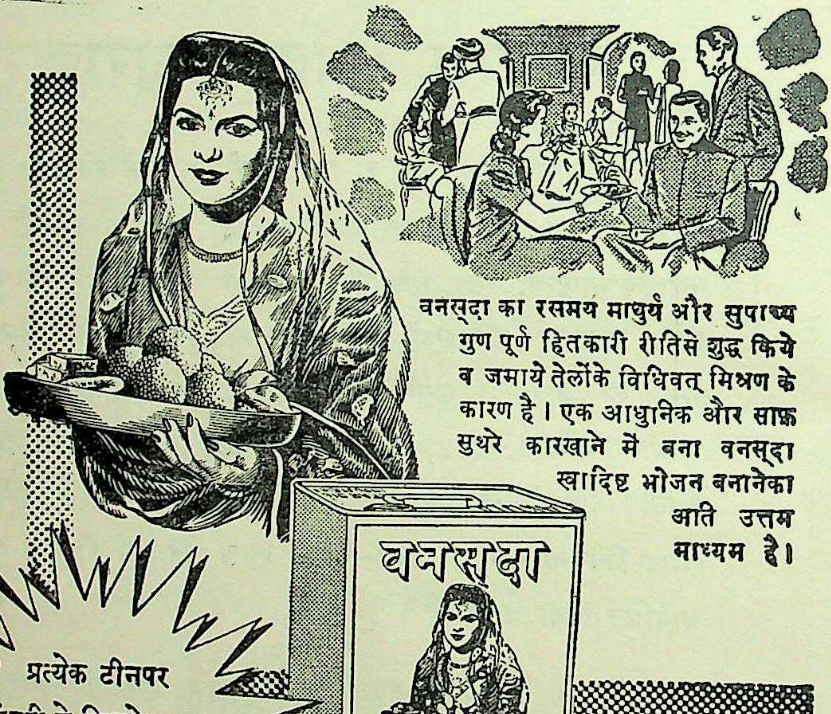
वनसुदा
HYDROGENATED GROUNDNUT & TIL OIL
मूंगफली व तिल का जमाया तेल

वनसूदा का रसमय माधुर्य और सुपाच्य गुण पूर्ण हितकारी रीतिसे शुद्ध किये व जमाये तेलोंके विधिवत् मिश्रण के कारण है। एक आधुनिक और साफ़ सुथरे कारखाने में बना वनसूदा स्वादिष्ट भोजन बनानेका अति उत्तम माध्यम है।

प्रत्येक टीनपर सुंदरी के चित्रसे आप वनसूदा को पहिचान सकेंगे

V/9A

३६, १० और ५ पौण्डके डब्बोंमें हर जगह मिलता है।

वनसुदा
प्रत्येक पाकशाला की रानी!

बेरार ऑयल इण्डस्ट्रीज अकोला [मध्यप्रदेश]

कमला मिल्स लि०, बम्बई

द्वारा निर्मित

कपड़े व्यवहार करें

आर्टिफिशियल और विशुद्ध रेशम की साड़ियाँ, जार्जेट, जेकार्ड और क्रेप आदिके लिये यह मिल अपनी विशेषता रखती है।

हेड ऑफिस

गोयनका हाउस

१४५, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट

कलकत्ता

हर प्रकारकी धोती, साड़ी, ब्लीचड लॉग क्लॉथ, कोटिंग, शर्टिंग आदि स्वदेशी माल विदेशी से टक्कर लेता है।

बम्बई ऑफिस—(टे. नं. २२०४८-४९)

किलाचंद देवचंद बिल्डिंग, ४५-४७ एपोलो स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई नं. १

विक्री विभागः—
मूलजी जेठा मार्केट, बम्बई, टे. नं. २६९४५
सूतापट्टी, कलकत्ता.

मिल्सः—
तुलसी पाइप रोड, लोअर परेल,
बम्बई नं. १३, टेलीफोन नं. ६१५१०

खाद्य समस्या

जब कि उसके पास अपने परिवारकी जरूरत पूरी करने के लिये यथेष्ठ खाद्य सामग्री नहीं उसी समय अचानक उसके यहां अतिथि आ गये । अतिथि भी ऐसे जिन्हें वह टाल नहीं सकती उसने तुरंत ही निश्चय कर लिया कि सबको कुछ कुछ कम खाना दिया जाय ।

ऐसी या और कोई भी कठिनाई के समय हरेक को अपना दिमाग ठंडा रखना चाहिये । इसमें उसे कुछ भी दिक्कत नहीं हुई क्यों कि वह हमेशा सुगंधित और औषधियुक्त बाइला आमला केश तैल व्यवहार करती है । यह तैल सदैव मस्तिष्क को ठंडा, दिमागको ताजा रखता है तथा बालों को बढ़ाता है । इतने गुणों के बावजूद भी इसका दाम दूसरे तैलों की अपेक्षा कम है ।

बाइ-ला
आमला
सुगन्धित केश तैल

आज ही एक बड़ी बोतल खरीदें

बिड़ला लेबोरेटरीज़ · कलकत्ता

राष्ट्र-भारती

सम्पादक-मंडल

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ★ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
भदन्त आनन्द कौसल्यायन

भारतीय साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका "राष्ट्रभारती" प्रतिमास आपको विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओं की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधि का परिचय देती है। इसमें देश-विदेश के गण्यमान्य विद्वानों और कलाकारों की श्रेष्ठ रचनाएं और अधिकाधिक अनुवाद भी रहते हैं। "राष्ट्रभारती" की पुस्तक-समालोचना और सम्पादकीय-टिप्पणियाँ देश के साहित्यिक-सांस्कृतिक जीवन के स्वस्थ विकास का नेतृत्व करती हैं ।

—'राष्ट्रभारती' हर महीने की पहली तारीख को आपके पास पहुंचती है —

❋ आज ही ग्राहक बन जाइये ❋
(वी० पी० का नियम नहीं है)

वार्षिक मूल्य ६)

एक प्रति ।।=)

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पो० हिन्दीनगर, वर्धा (म० प्र०)

जनवरी १९५२ से

"कल्पना" का मासिक प्रकाशन

दिसम्बर १९५१ के अंक के साथ "कल्पना" अपने प्रकाशन के दो वर्ष समाप्त कर रही है। अब तक यह द्वैमासिक रूप में निकलती रही किन्तु पाठकों के आग्रह के कारण जनवरी १९५२ से, हम उसका मासिक प्रकाशन प्रारम्भ कर रहे हैं। मासिक के रूप में कल्पना अपनी वर्तमान् विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ नवीन स्तम्भों का भी समावेश करेगी।

हमारे लेखकों में सर्व श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल, राहुल सांकृत्यायन, गंगाप्रसाद पांडेय, देवेन्द्र सत्यार्थी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, भगवतशरण उपाध्याय, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रभाकर माचवे, श्यामाचरण दुबे, विनयमोहन शर्मा, राय आनन्दकृष्ण, चन्द्रबली पांडे, बाबूराम सक्सेना, बलदेव उपाध्याय, लोकेशचन्द्र आदि; कवियों में महादेवी, पंत, निराला, बच्चन, अंचल, दिनकर, भवानीप्रसाद मिश्र भवानीप्रसाद तिवारी, प्रभुदयाल अग्निहोत्री आदि; कथाकारों में यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, अज्ञेय, वृन्दावनलाल वर्मा, उषादेवी मित्रा, सत्येन्द्र शरत्, मोहनसिंह मेंगर, शम्भुनाथ सक्सेना, जहूरबख्श आदि, एकांकीकारों में उदयशंकर भट्ट, विष्णुप्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। विदेशी भाषाओं की श्रेष्ठतम् कहानियों तथा एकांकियों के अनुवाद भी प्रकाशित होते रहते हैं।

इन स्तम्भों के अतिरिक्त "कल्पना" में नियमित रूप से चित्रकला और भारत के प्रसिद्ध चित्रकारों की कला के सम्बन्ध में उनकी कृतियों के साथ एक लेख रहता है साथ ही साथ कुछ अन्य उच्च कोटि के चित्र भी दिये जाते हैं। दक्षिण की भाषाओं के साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाले लेख नियमित रूप से प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के नवीनतम् प्रकाशनों पर कल्पना की निस्पक्ष सम्मति हर अंक में मिलेगी।

व्यवस्थापक,– **कल्पना**

वार्षिक शुल्क १२)
एक प्रति का १)

८३१, बेगमबाजार, हैद्राबाद द०
शाखा-कार्यालय– २० हमाम स्ट्रीट, बम्बई

जे. के.
फैब्रिक्स

अप्रतिम- सुन्दर बुनावट- मजबूत और
टिकाऊ- साडियां- धोतियां- लट्ठा- छीट और
वायल- शटिंग- हरतरह के परदे के कपड़े आदि

जे॰ के॰ काटन स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स कम्पनी लि॰
कानपुर

पेटभर भोजन करिये

गेसहर (गोलियाँ) गेस का चढ़ना, पैदा होना, मंदाग्नि बादी, वायु, पेट में पवन का घुंचवाना, भूख की कमी, दिमाग मे अशांति हो जाना, घबराहट, थकावट, हृदय की कमजोरी, पल्पीटेशन ब्लडप्रेसर, दस्त की रुकावट, नींद की कमी वगैरह को दूर कर **दस्त हमेशा साफ और खुलासा लाती हैं।** अन्न पाचन करके कडाके की भूख लगती है, शरीर में रुधिर बढ़ाकर शक्ति प्रदान करती है, लिवर आंत, प्लीहा और पेट की हर एक शिकायत के लिए, अद्वितीय दवा है। छोटी शीशी ५० गोली की. रु० १।।) बडी शीशी १५० गोली ४) रु०

पुरुषत्व-प्राप्ति के लिए

कौस्तुभप्रभा याकुति

(सुनहरी गोलियाँ)

पुरुषत्वहीन पुरुषों के लिए यह दवा उत्तमोत्तम उपाय है। किसी भी कारण से आई हुई निर्बलता को दूर कर पुरुषत्व प्रदान करती है। रक्त वीर्य की वृद्धि कर पूर्ण यौवन प्राप्त होता है। यह महान बाजीकरण, धातु-पौष्टिक दवा है, की० फी शीशी रु. ७।।)

गुप्त भाग के लियेः—

कौ. प्र. तेल (तिल्ल) पुरुष के गुप्त भाग में आई हुई शिथिलता, वक्रता, छोटापन, नपुंसकता, कमजोरी नशों का ढीलापन आदि को दूर कर गुप्त भाग में विद्युतशक्ति पैदा कर संसारसुख में अपूर्व आनंद देता है। की. ७।।) रू.

कामविलास (गोलियां) वीर्य ज्यादा अरसा तक रोककर युवकों और वृद्धों को संसारसुख में सच्चा आनंद देती हैं की० रु० १।।) तीन शीशी की ४।)पोस्टेज अलग

मासिक रुकावट !

रजोलीना (पिल्स) किसी भी कारण से बंद पडे हुए मासिक धर्म को बिना तकलीफ फिर जारी कर नियमित करती है। ऋतु दोषों को दूर करती है, मासिक लानेवाली वस्तुओं की बनावट है, कीमत शीशी ४), रु०। तुरन्त फायदे के लिए तेज बनावट ६) रु० बी. पी. खर्च अलग.

गर्भांकुश (पिल्स) दवा के सेवन से हमेशा के लिए गर्भ नहीं रहता, मासिक धर्म नियमित जारी रहता है, गर्भ निरोध होता है, हानिरहित है, संतति नियमन के लिए उत्तमोत्तम उपाय है। की० प्रति शीशी ४) रु० बी. पी खर्च अलग.

दिव्यांगना गोलियाँ, स्त्रियों के लिये खास शक्तिवर्धक दवा है, प्रदर, रक्त-प्रदर, गर्भ न रहना, गर्भपात होजाना इत्यादि दूर होकर शरीर तन्दुरुस्त बनता है। की० रु० १।) तीन शीशी ३।।)

आँखों की तमाम शिकायतों के लिये शर्तिया

न० प्र० सुरमा सच्चे मोतियों के इस सुरमे से मोतियाबिंद, फूला, खील, जाला, शार्ट साईट short sight, सुर्खी, रतौंधी, पानी निकलना वगैरह दूर होकर रोशनी बढती है। फी शीशी का रु० १।) तथा रु० २।।)

बहिरापन

कान में से पीप-मवाद निकलना, चश्काशूल होना पर्दे में तकलीफ, सीं-सीं आवाज होना, बधिरता बहिरापन इत्यादि कान के भयंकर रोगों के लिए

'रसिक' कर्ण बिन्दु (इयर ड्रॉप्स)

इस्तेमाल करें। कीमत शीशी रु. १।।) तीन शीशी रु. ४।) तीन शीशी के सेवन से स्पष्ट सुनाई देता है।

☞ **बी० पी० से मंगाने का पता— दुग्धानुपान फार्मेसी** प्र० ३ जामनगर (काठियावाड़)

स्टोकिस्टोः—नागपुर—मुकुन्दराय ब्रदर्स महाल रोड.
अकोला—एन. बी. वोरा एण्ड सन्स, ताजनापेठ (झण्डू एजेन्ट)
नागपुर—अनन्तराय ब्रदर्स किराना ओली इतवारी
जबलपुर—दिगंबर जनरल स्टोर्स जवाहिरगंज
खण्डवा—निमाड स्टोर्स ली०, बम्बई बाजार
सीवनी—गरीबदास धरमचन्द पोतदार
आमगांव—भाई कुंजीलाल ठाकुरदास

गुप्तधन

क्या है! एवं कैसे प्राप्त करें। हरजनोपयोगी पुस्तक मुफ्त मंगवाकर पढ़ें।
लिखें—**बी० शामकी कुं० २३ जामनगर**

T.B. टी.बी. "तपेदिक" चाहे फेफड़ों का हो या अतड़ियों का बड़ा भयङ्कर रोग है

(१) पहली स्टेज	(२) दूसरी स्टेज	(३) तीसरी स्टेज	(४) चौथी स्टज	अन्तिम स्टेज
मामूली ज्वर खांसी ज्वर	खांसी की अधिकता	शरीर सूखना, ज्वर, खांसी की भयंकरता	सभी बातों की भयंकरता शरीर पर वर्म, दस्त आदि का शुरू हो जाना	रोगी की मौत ओर भयंकर वर्मों का इधर उधर फैलना

जबरी——(JABRI)——जबरी——(JABRI)

इस दुष्ट रोग पर भारत के पूज्य ऋषियों की अनोखी खोज 'जबरी' हैं

क्या अभीतक आपने भारत विख्यात महौषधि "जबरी" का नाम नहीं सुना जो इस दुष्ट और भयंकर रोगसे जिन्दगी और मौत की कशमकशमे तडफ रहे हैं। देखिए भारत के कोने-कोने से लोग क्या कहते है।

डाक्टर भी आश्चर्य करने लगे--श्रीरामनाथ शर्मा असिस्टेंट सिगनल इन्सपेक्टर E. I. R मुरादाबाद से लिखते हैं कि हमारे साले 'श्री बजराजसिंह शर्मा सिगनल फिटर हापुड (मेरठ) को मेडिकल आफिसर मुरादाबाद ने टी. बी. बताया था। आपकी दवा 'जबरी' के सेवन से वह बिल्कुल अच्छा हो गया। डाक्टर लोग इसे देखकर दंग रह गये कि इतनी जल्दी कैसे अच्छा हो गया। मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। और भी देखिये-(२) ला० काशीप्रसाद वैश्य, दारानगर (इलाहाबाद) बाबू मुन्नालाल स्टोरकीपर सिम्भावली शुगर मिल पो. बक्सर (मेरठ) (४) बाबू रामसिंह घर नं ६१ रीठा मण्डी, देहरादून। (५) श्री तोसलहुसेन रईस मुकाम मुसेपुर पो. भरतकुण्ड जिला (फैजाबाद) (६) डा. ठाकुरसिंह नेपाली मुकाम कटैया पो. हरलखी जिला दरभंगा (७) रामखेलावनराम, भीखुराम पो. बाजार गुसांई (८) पं० चन्द्रमणी पाण्डे मुकाम कुरेहरा पोस्ट मेहनाजपुर जिला आजमगढ़। इसी प्रकार हजारों रोगियों का कहना है 'जबरी' दवा नहीं है बल्कि रोगी को काल के भयंकर गाल से बचानेवाली 'ईश्वरीय शक्ति' है। 'जबरी' भारत के पूज्य लगटोट बन्द ऋषियों की अद्भूत खोज और आयुर्वेदिक विद्या का एक अनोखा चमत्कार है। यदि आप सब तरह से नाउम्मेद हो चुके हों, एक्सरे (x-ray) आदि के बाद डाक्टरोंहकीमों ने भी जबाब दे दिया हो तो भी एकबार परमात्मा का नाम लेकर 'जबरी' की परीक्षा जरूर करें,परीक्षार्थ ही दस दिन का नमूना भी रखा गया है। जिसमे तसली हो सके।

T.B. टी.बी. 'तपेदिक' और पुराने ज्वर के हताश रोगियो ! अब भी समझो

अन्यथा फिर वही कहावत होगी कि–'अब पछताये क्या होत है जब चिड़िया चुग गयी खेत'। इस लिये तुरन्त आर्डर देकर रोगीकी जान बचावें। सैकडों डाक्टर, हकीम, वैद्य अपने रोगियों पर व्यवहार करके नाम पैदा कर रहे हैं और तार द्वारा आर्डर देते हैं। तार आदि के लिये हमारा पता केवल 'जबरी' जगाधरी लिख देना काफी है। तारसे यदि आर्डर दें तो अपना पूरा पता दें। मूल्य इस प्रकार है –

'जबरी' स्पेशल नं १ अमीरोंके लिये; जिसमें साथ-साथ ताकत बढ़ानेके लिये सोना, मोती, अभ्रक आदिकी मूल्यवान भस्में भी पडती हैं। मूल्य पूरा ४० दिनका कोर्स ७५) रु. नमूना १० दिन के लिए २०) रु. 'जबरी' नं० २ जिसमें मूल्यवान जडी--बूटियाँ हैं, पूरा कोर्स २०) रु०, नमूना १० दिन के लिये ६) रु० महसूल आदि अलग हैं। आर्डरमें पत्रका हवाला तथा 'जबरी' नम्बर १ या २ पता साफ साफ लिखें। पार्सल जल्द प्राप्त करने के लिये मूल्य मनीआर्डर से भेजें,यदि Air Mail से मंगाना हो तो २) रु० खर्च अधिक भेजें।

पता– रायसाहब के० एल० शर्मा एण्ड सन्स. रईस एण्ड बैंकर्स [७५] जगाधरी (E. P).

प्रवाह

इन रेलवे-स्टेशनों पर व्हीलर स्टाल से लीजिये

व्हिक्टोरिया ट. नं. १
व्हिक्टोरिया ट. नं. २
कल्याण
देवलाली
इगतपुरी
भुसावल
पूना नं. १
पूना नं. २
दौंड
सोलापुर
थाना
नासिक रोड
किंग्स-सर्कल
जलगांव
लोनावला
भायखला
माटुंगा
शाहबाद
मुरडवाडी
मनमाड
हैद्राबाद नं. १
हैद्राबाद नं. २
निजामाबाद
नांदेड
वाडी
कुरला
मसजिद
दादर
काजी पेठ

सिकंदराबाद
पूरना
जालना
परभणी
डोरनाकल
वरंगल
चर्चगेट
सूरत
बडोदा
मेंहसाना
औरंगाबाद
माहिम
करनूल टाऊन
बाम्बे सेंट्रल
गुलबर्गा
बान्दरा
भडोंच
अहमदाबाद
पेटलाड
रतलाम
बुलसार
नडियाद
ग्रँट रोड
अंधेरी
शांताक्रुज
लोअर परेल
दादर (जी. आय. पी.)
दादर (बी. बी. सी. आय)
नवसारी

आनंद
शामगढ
आबूरोड़
पालघर
कालोल
मारवाड जंक्शन
दोहद
बोरी वेली
बेसिन रोड़
हावडा
आसन सोल
क्यूल जंक्शन
जमालपुर
भागलपुर
पटना
आरा
धनबाद
गया
मुगलसराय
अलाहाबाद नं. १
अलादाबाद नं. २
कानपुर नं. १
कानपुर नं. २
अलीगढ
देहली नं. १
बनारस कँम्प
फैजाबाद
बाराबंकी
ल नऊ

बरेली
मुरादाबाद
लश्कर
कटनी
देहरादून
झांसी
मथुरा
इटारसी
जबलपुर
नागपुर नं. १
नागपुर नं. २
भरतपुर
जयपुर
अजमेर
उज्जैन
इन्दौर
महू
गोरखपुर
गोंदिया
सोनपुर
मुजफ्फरपुर
समस्तीपुर
कटिहार
दरभंगा
बिलासपुर
रायपुर
गोंडा जंक्शन
कटक
वाल्टेयर

रजिस्टर्ड नं. एन. १०९१
Licence No13
License to post without prepayment

देश के नव-निर्माण काल में

राष्ट्रीय उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिये

न्यू स्वदेशी मिल्स

- आफ -

अहमदाबाद

का

- स्वदेशी
- टिकाऊ
- मजबूत

कपड़ा व्यवहार में लाइये

मेनेजिंग एजेंट्स
कॉटन एजेन्ट्स लिमिटेड
बम्बई

मिल का पता
नरोदा रोड, अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशकः- श्री शिवलाल अग्रवाल राजस्थान प्रिंटिंग ॲण्ड लियो वर्क्स लिमिटेड अकोला (मध्यप्रदेश)

प्रवाह

६·५

संचालक :
जलाल बियाणी

संपादक :
चन्द्र नागर
यकुमार

: अंक ३
न १९५२
ा...(मध्यप्रदेश)

प्रति ॥)
र्षिक ६)

५२

पुस्तकालय-परीक्षा,
गुरुकुल कांगड़ी

30
30-2-2005

लयबद्ध गति है जीवन प्रवाह !

इस अंक में

१ वह गंध मेरे मन बसगई रे– विद्यावती 'कोकिल' १
२ विचार और चिंतन की रेखायें– श्री ब्रिजलाल बियाणी २
३ वेद की कतिपय कवित्रियां– डॉ० सूर्यकांत ४
४ (i) गुस्ताक घरतो (ii) प्यास– श्रीहरि ८
५ 'मरु-प्रदीप' और उपन्यासकार 'अंचल'– राजेन्द्र यादव ९
६ प्रतिशोध (कहानी) - डॉ० रमेशचन्द्र वर्मा १४
७ दो गीत– 'नवल' २१
८ महात्मा गांधी की शिक्षा योजना के कुछ तत्व– रामप्रसाद भटनागर २२
९ प्यार– गोपीकृष्ण गोपेश २६
१० उसका भाग्य (कहानी)– शांताराम जैन २७
११ (i) शांति का दूत (ii) प्यार का रोग– केशवचन्द्र वर्मा ३३
१२ मेरी साहित्यिक डायरी के कुछ पृष्ठ– शिवचन्द्र नागर ३७
१३ आधुनिक हिन्दी और मराठी साहित्य– व्योहार राजेन्द्रसिंह ४१
१४ गीत– योगेन्द्रनाथ शर्मा ४४
१५ परिवर्तन (कहानी)– वसंताग्रजा ४५
१६ प्रतिध्वनियाँ– ४९
१७ साहित्य परिचय– ५१
१८ सम्पादकीय— ५८

मुख पृष्ठ का चित्र :- सुश्री तारा चोधरी (उषा नृत्य की मुद्रा में।)

—कुर्यात् सदा मंगलम्—

"प्रवाह" के संस्थापक एवं संचालक मा० ब्रिजलालजी बियाणी के सुपुत्र चि० **कमलकिशोर बियाणी** एम. ए., एल. एल. बी. का शुभ विवाह कानपुर निवासी श्री शांतिनारायण चड्ढा की सुपुत्री भाग्यवती कु० **चारुशीलादेवी** एम. ए. के साथ १० मई १९५२ को कानपुर में सकुशल संपन्न हुआ। हम "प्रवाह" परिवार की ओर से वरवधु का सहर्ष अभिनंदन करते हैं और हार्दिक कामना करते हैं कि वर-वधु का वैवाहिक जीवन सुखी, समृद्धिशाली एवं दीर्घ हो। वे नित्य प्रगति के पथपर बढ़ते रहें और समाज एवं राष्ट्र के प्रांगण में नित नवीन आलोक रश्मियां बखेरते रहें।

कमला मिल्स लि०, बम्बई

द्वारा निर्मित

कपड़े व्यवहार करें

आर्टिफिशियल और विशुद्ध रेशम की साड़ियाँ, जार्जेट, जेकार्ड और क्रेप आदिके लिये यह मिल अपनी विशेषता रखती है।

हेड ऑफिस
गोयनका हाउस
१४५, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट
कलकत्ता

हर प्रकारकी धोती, साड़ी, ब्लीचड लाँग क्लॉथ, कोटिंग, शर्टिंग आदि स्वदेशी माल विदेशी से टक्कर लेता है।

बम्बई ऑफिस—(टे. नं. २२०४८-४९)

किलाचंद देवचंद बिल्डिंग, ४५-४७ एपोलो स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई नं. १

बिक्री विभागः—
मूलजी जेठा मार्केट, बम्बई, टे. नं. २६९४५
सूतापट्टी, कलकत्ता.

मिल्सः—
तुलसी पाइप रोड, लोअर परेल,
बम्बई नं. १३, टेलीफोन नं. ६१५१०

'प्रवाह' का

"महिला साहित्यकारांक"

इस अंक के विशेष आकर्षण हैं:—

१ महिलायें और साहित्य– डॉ. रामविलास शर्मा
२ जीवन कला और नारी– प्रो. शिवनाथ
३ हिंदी कहानी साहित्य और नारी– श्री विष्णु प्रभाकर
४ बंगाल की कवियित्रियाँ– श्रीमती माया गुप्त
५ गुजराती साहित्य और महिलायें– श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
६ काश्मीरी साहित्य में नारी की देन– प्रो. पृथ्वीनाथ 'पुष्प'
७ पंजाबी साहित्य की लेखिकाएँ– श्री हंसराज 'रहबर'
८ उत्कल की साहित्यिक महिलायें– श्री मन्मथनाथ गुप्त
९ तामिल साहित्य की अमरसाधिकाएँ– सुश्री लोकनायकी शिवरामन
१० महाराष्ट्र की संत कवियित्रियां– श्रीमती उषा कोलते
११ उर्दू की कहानीकार महिलायें– श्री मुसाफिर मुल्तानी

भारतीय साहित्य में महिलाओं ने अपनी बुद्धि और प्रतिभा के वैभव तथा अपने प्राणों के रस का योगदान किस प्रकार दिया है, यह जानने के लिये 'प्रवाह' का महिला साहित्यकारांक आज ही अवश्य मंगाकर पढ़िये। मूल्य १)

BVP
303
धोने का साबुन
आपके वस्त्रों को
सफ़ेद उज्वल करता है
FREE FROM ANIMAL FAT
303

यह भी चर्बीसे रहित ३०३ धोनेका साबुन आपके वस्त्रोंको अधिक साफ करनेके लिये पर्याप्त फेन देता है।

★

हर जगह मिलता है।

दि भारत वनस्पति प्रॉडक्ट्स लि०
पाचोरा (पूर्व खानदेश)

SERVICE - BOMBAY.

BVP 189

हर तरह के सुंदर और टिकाऊ
वस्त्रों के लिए
याद रखिये
दि पोदार मिल्स
लिमिटेड बम्बई

पोदार चेम्बर
पारसी बजार स्ट्रीट
फोर्ट, बम्बई

मैनेजिंग एजन्ट
मेसर्स पोदार सन्स लिमिटेड

श्री मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौर
की
मासिक मुख-पत्रिका

वार्षिक मूल्य ४)] **वीणा** [एक संख्या ।=)॥ आने

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मध्य-भारत, मध्यप्रदेश और बरार, संयुक्त राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश और बडोदा की शिक्षा सस्थाओं के लिए स्वीकृत।

जो पिछले २५ वर्षों से नियमित रूप से प्रकाशित होकर हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा कर रही है। भारत के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में इसका उच्च स्थान है।

साहित्य के विभिन्न अंगों पर तथ्यपूर्ण एवम् गंभीर प्रकाश डालनेवाले लेख तथा परीक्षोपयोगी विषयों पर आलोचनात्मक समीक्षाऐं प्रकाशित करना इसकी प्रमुख विशेषता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा एवम् उत्तमा (रत्न) बी. ए. और एम. ए. के छात्रों के लिए इसके निबन्ध अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

"वीणा" का भारत में सर्वत्र प्रचार है।

हैद्राबाद राज्यद्वारा स्कूलों एवं वाचनालयों के लिए स्वीकृत

मूल्य
वार्षिक ४) भा.
प्रति अंक ।=)

दक्षिण-भारती

५१) रु. डिपॉजिट कराने पर
अमूल्य। डिपाजिट
जब चाहे वापिस।

दक्षिण भारतका सर्वोपयोगी सचित्र हिन्दी मासिक

दी मारवाड़ी प्रेस लि० अफलगंज हैद्राबाद-दक्षिण

इसमें—

- दाक्षिणी भाषाओं का परिचय।
- दक्षिण के ऐतिहासिक स्थानों का वर्णन।
- दक्षिण के लेखकों के चरित्र।
- हैदराबाद के नये नये कानून।
- देश विदेश परिचय माला।
- स्वास्थ्य संबन्धी लेख माला।
- कृषि उपयोगी लेख माला।
- विज्ञान माला।
- महापुरुषों के जीवन।
- साहित्य जगत (कहानियां, कविताएं, लेख आदि
- उद्योग व्यवसाय सम्बधी लेख माला।
- मासिक भविष्य।
- संसार समाचार।
- पुरस्कृत पहेलियां।
- महिला मंड़ल, बाल जगत, साहित्य परिचय।
- पांच भाषाओं के एकत्रित शिक्षा पाठ आदि।

इसके अतिरिक्त इसमें
हिंदी, अंग्रेजी, मराठी तेलगु, कन्नड आदि की पत्रिकाओं में प्रकाशित उत्कृष्ट लेखों का संक्षिप्त सार पढ़कर समय बचाइए।

हमारी प्रकाशित 'हैद्राबाद हिंदी डायरेक्टरी' पढकर हैद्राबाद रियासत की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कीजिए मू. ३) भा

सलाहकार—
श्री यशपाल
श्री केदार शर्मा

श्रेष्ठतम मनोरंजन की पर्याय

रूपा

हिन्दी के मासिक साहित्य में
अनूठा अवदान

सहयोगी कथाकार——
महेन्द्रनाथ
राजेन्द्रसिंह बेदी
मन्मथनाथ गुप्त
वृन्दावनलाल वर्मा
अशोक
उपेन्द्रनाथ अश्क

विशेष सहयोग:——
यूनेस्को., पेरिस, संस्कृति सचिवालय, पेकिंग, फिल्म्स डिविजन भारत सरकार
केवल रूपा को प्राप्य राष्ट्रीय एवम् अन्तर्राष्ट्रीय कलाकारों तथा कथाकारों के श्रेष्ठतम रंगीन कलात्मक चित्र, कथायें, फोटोग्राफ।

६८ पृष्ट
आठ आना

प्रकाशक
हमराही

वार्षिक
६ रुपया

एकमात्र वितरक
साहित्य प्रतिष्ठान

अलमोडा

विज्ञापन एवं प्रचारक
द मरचेन्ट मैन

समुचित पारिश्रमिक पर श्रेष्ठ कथायें, कलाचित्र, कार्टून, फोटोग्राफ, फिल्म सामग्री आमंत्रित की जाती है।

समस्त भारत के सभी रेलवे बुकस्टालों तथा पत्र विक्रेताओं के यहां मिलती हैं।

प्रवाह

इन रेलवे-स्टेशनों पर व्हीलर स्टाल से लीजिये

व्हिक्टोरिया ट. नं. १
व्हिक्टोरिया ट. नं. २
कल्याण
देवलाली
इगतपुरी
भुसावल
पूना नं. १
पूना नं. २
दौंड
सोलापुर
थाना
नासिक रोड
किंग्स-सर्कल
जलगांव
लोनावला
भायखला
माटुंगा
शाहबाद
मुरडवाडी
मनमाड
हैद्राबाद नं. १
हैद्राबाद नं. २
निजामाबाद
नांदेड
वाडी
कुरला
मसजिद
दादर
काजी पेठ
सिकंदराबाद
पूरना
जालना
परभणी
डोरनाकल
वरंगल
चर्चगेट
सूरत
बडोदा
मेंहसाना
औरंगाबाद
माहिम
करनूल टाऊन
बाम्बे सेंट्रल
गुलबर्गा
बान्दरा
भडोंच
अहमदाबाद
पेटलाड
रतलाम
बुलसार
नडियाद
ग्रँट रोड
अंधरी
शांताक्रुज
लोअर परेल
दादर (जी.आय.पी.)
दादर (बी.बी.सी.आय)
नवसारी
आनंद
शामगढ
आबूरोड
पालघर
कालोल
मारवाड जंक्शन
दोहद
बोरी वेली
बेसिन रोड
हावडा
आसन सोल
क्यूल जंक्शन
जमालपुर
भागलपुर
पटना
आरा
धनबाद
गया
मुगलसराय
अलाहाबाद नं. १
अलादाबाद नं. २
कानपुर नं. १
कानपुर न. २
अलीगढ
देहली नं. १
बनारस कॅम्प
फैजाबाद
बाराबंकी
लखनऊ
बरेली
मुरादाबाद
लश्कर
कटनी
देहरादून
झांसी
मथुरा
इटारसी
जबलपुर
नागपुर नं. १
नागपुर नं. २
भरतपुर
जयपुर
अजमेर
उज्जैन
इन्दोर
महू
गोरखपुर
गोंदिया
सोनपुर
मुजफ्फरपुर
समस्तीपुर
कटिहार
दरभंगा
बिलासपुर
रायपुर
गोंडा जंक्शन
कटक
वाल्टेयर

जून १९५२

जो आज यशोमंदिर में अधिष्ठित हैं, उन्हें इस बात का पूरा ज्ञान है कि जीवन के बौद्धिक तथा भौतिक विकास में रूप का सुरूप होना कितना सहायक है।

रंगों के सुमेल की, आकर्षक निखरे नमूने की तथा कपडे की स्निग्धता पहिचानने की जिन्हें सूक्ष्म दृष्टि है ऐसे सुघर वस्त्र परिधान करनेवाले अपने कपड़ों का चुनाव बहुत सतर्कतापूर्वक करते हैं।

केशोराम कॉटन मिल्स में, उपर्युक्त सारी बातों का ध्यान रखकर ही कपडा तैयार किया जाता है।

केशोराम आपको आकर्षक साड़ियाँ, मुलायम धोतियाँ और टिकाऊ तथा सुंदर शर्टिंग देता है।

केशोराम

अनूप-वसन

केशोराम कॉटन मिल्स लिमिटेड

८ रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

खाद्य समस्या

जब कि उसके पास अपने परिवारकी जरूरत पूरी करने के लिये यथेष्ठ खाद्य सामग्री नहीं उसी समय अचानक उसके यहां अतिथि आ गये । अतिथि भी ऐसे जिन्हें वह टाल नहीं सकती उसने तुरंत ही निश्चय कर लिया कि सबको कुछ कुछ कम खाना दिया जाय ।

ऐसी या और कोई भी कठिनाई के समय हरेक को अपना दिमाग ठंडा रखना चाहिये । इसमें उसे कुछ भी दिक्कत नहीं हुई क्यों कि वह हमेशा सुगंधित और औषधियुक्त बाइला आमला केश तैल व्यवहार करती है । यह तैल सदैव मस्तिष्क को ठंडा, दिमागको ताजा रखता है तथा बालों को बढ़ाता है । इतने गुणों के बावजूद भी इसका दाम दूसरे तैलों की अपेक्षा कम है ।

बाइ-ला
आमला
सुगन्धित केश तैल

आज ही एक बड़ी बोतल खरीदें

बिड़ला लेबोरेटरीज़ · कलकत्ता

राष्ट्र-भारती

सम्पादक

मोहनलाल भट्ट ★ **हृषीकेश शर्मा**

भारतीय साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका "राष्ट्रभारती" प्रतिमास आपको विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओं की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधि का परिचय देती है। इसमें देश-विदेश के गण्यमान्य विद्वानों और कलाकारों की श्रेष्ठ रचनाएं और अधिकाधिक अनुवाद भी रहते हैं। "राष्ट्रभारती" की पुस्तक-समालोचना और सम्पादकीय-टिप्पणियाँ देश के साहित्यिक-सांस्कृतिक जीवन के स्वस्थ विकास का नेतृत्व करती हैं।

—'राष्ट्रभारती' हर महीने की पहली तारीख को आपके पास पहुंचती है —

* आज ही ग्राहक बन जाइये *

(वी० पी० का नियम नहीं है)

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति ।।=)

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पो० हिन्दीनगर, वर्धा (म० प्र०)

'प्रवाह' के नियम

[संपादकीय विभाग]

१ 'प्रवाह' मासिक पत्र है और अंग्रेजी माह की १ तारीख को प्रकाशित होता है।

२ 'प्रवाह' में प्रकाशनार्थ रचनाएँ, परिवर्तनार्थ पत्र-पत्रिकाएं और आलोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियां संपादक, प्रवाह, 'राजस्थान-भवन' अकोला के पतेपर ही आनी चाहिये।

३ रचना भेजते समय इस बात का ध्यान रखें कि वह अन्यत्र प्रकाशनार्थ नहीं भेजी गई है। 'प्रवाह' में प्रकाशनार्थ रचनाएँ १० तारीख तक आजानी चाहिए।

४ किसी भी रचना को छापने या न छापने तथा उसे घटाने-बढ़ाने का अधिकार संपादक को रहेगा। 'सिण्डीकेटेड' (कई पत्रों में वितरित) रचनाएं कोई व्यक्ति भेजने की कृपा न करें।

५ राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, साहित्य और संस्कृति पर उच्चकोटि के लेख भेजते समय 'प्रवाह' के प्रगतिशील दृष्टिकोण और स्टैण्डर्ड का ध्यान रखें।

६ हास्यरस की रचनाओं में इस बात का ध्यान रखा जाय कि वे घृणोत्पादक, कुरुचिपूर्ण और द्वेषमूलक न हों।

७ लेख साफ, सुथरे, अक्षरों में कागज़ के एक तरफ़ लिखे होने चाहिए।

संपादक-**'प्रवाह'**
राजस्थान-भवन, अकोला (मध्यप्रदेश)

[व्यवस्था विभाग]

१ 'प्रवाह' का वार्षिक चंदा ६) और ६ माह का ३।।) है। किसी भी माह से ग्राहक बना जा सकता है। ६ माह से कम का चंदा स्वीकार नहीं किया जायगा।

२ देश के जिन भागों में सम्प्रति 'प्रवाह' के एजेंट नहीं हैं वहाँ के लिये एजंट नियुक्त करना है। एजंसी के नियम:-

(क) कम से कम ५ प्रतियाँ मंगाने वाले को एजंट नियुक्त किया जायगा।

(ख) ।।) प्रति कापी के हिसाबसे डिपाजिट भेजना होगा। हर माह में हिसाब साफ कर लिया जाय। बची हुई प्रतियाँ वापिस नहीं ली जायंगी।

(ग) प्रवाह के चार ग्राहक एक साथ बनानेवाले को एक वर्ष के लिये 'प्रवाह' मुफ्त भेजा जायगा।

(घ) शिक्षण संस्थाओं को 'प्रवाह' ५ रु० में वर्ष भर दिया जायगा।

(ङ) नमूना अंक मुफ्त भेजने की प्रथा नहीं है। अंक के लिये दस आने के टिकट या मनीआर्डर आना आवश्यक है।

३ 'प्रवाह' में निम्नदर पर विज्ञापन स्वीकार किये जाते हैं:-

विज्ञापन की दर

चौथा	आवरण	पृष्ठ	६०	प्रतिमाह
तीसरा	,,	,,	५०	,,
दूसरा	,,	,,	५०	,,
साधारण	पूरा	पृष्ठ	४०	,,

४ चेक, मनीआर्डर, रजिस्टर्ड पत्र और बीमा आदि नीचे दिये पते पर आने चाहिये।

५ पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी-संख्या का उल्लेख अवश्य करें जिससे कि प्रत्युत्तर में विलंब न हो

व्यवस्थापक **'प्रवाह'**
राजस्थान-भवन, अकोला (मध्यप्रदेश)

प्रवाह

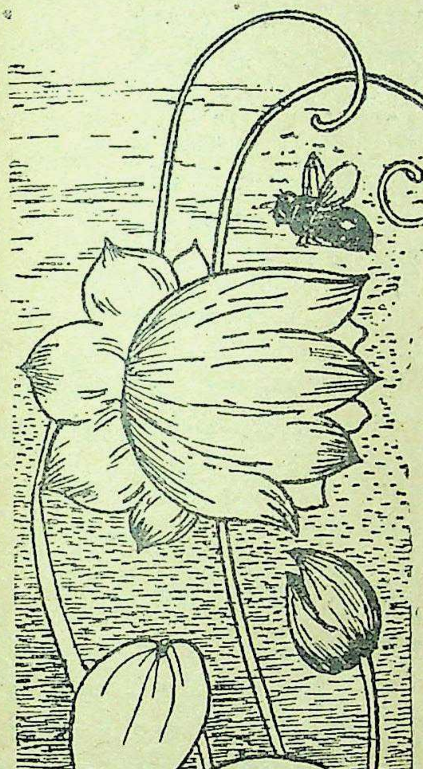

वह गंध मेरे मन बस गई रे !

वह गन्ध मेरे मन बस गई रे !

इक बन जूही, इक बन बेला
अगणित गन्धों का यह मेला
पाकर मुझको निपट अकेला
इन प्राणों को कस गई रे
वह गन्ध मेरे मन बस गई रे !

इक छिन पच्छिम, इक छिन पूरब
भटक रहे हैं गन्ध पंख सब
रोम रोम के द्वार खोलकर
वह अंतर में धँस गई रे
वह गन्ध मेरे मन बस गई रे !

नभ में जिसकी डालें अटकीं
थल पर जिसकी कलियाँ चटकीं
मेरे जीवन के कर्दम में
वह अनजाने फँस गई रे
वह गन्ध मेरे मन बस गई रे !

विद्यावती 'कोकिल'

विचार और चिंतन की रेखायें

मा० श्री ब्रिजलाल बियाणी

राजनीति सदैव किसी विशेष देश एवं काल से संबद्ध रहती है। राजनैतिक सत्य भी वर्षा के रंगीन बादलों की भांति, देश एवं काल की परिस्थितियों के साथ बदलते रहते हैं। अतः राजनीतिज्ञ प्रायः जीवन के ऊपरी स्तर को ही छू पाता है, गहराई में प्रवेश नहीं कर पाता, किंतु माननीय बियाणीजी जीवन में सदा से वस्तुओं को गहराई से देखने के अभ्यस्त रहे हैं। यही कारण है कि उनके राजनैतिक भाषणों में भी प्रायः उनके भीतर का विचारक एवं चिंतक अपने को व्यक्त कर देता है। यहाँ हम मा० बियाणीजी के विचार एवं चिंतन की ऐसी ही रेखायें प्रस्तुत कर रहे हैं—

पुजारी बदलने की आवश्यकता

कांग्रेस में आज जो लडाई चल रही है वह सत्ता के लिये चल रही है। सब आपस में एक दूसरे को भला बुरा कहते हैं। कुछ लोग कांग्रेस को हां खराब कहने लगे हैं। परन्तु कांग्रेस तो मन्दिर के समान पवित्र संस्था है। मन्दिर खराब नहीं होता किंतु पुजारी खराब हो जाया करते हैं। इसलिये हमें पुजारी बदलने की आवश्यकता है न कि मंदिर की पवित्रता में संदेह करने की। आज तो देश के लोगों को अच्छे पुजारियों की परख करनी है न कि नवीन मन्दिर और नये देवता की स्थापना।

• ० •

जनता और सत्ता में सहयोग

आज सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता जनता और सत्ता में सहयोग का वातावरण निर्माण करने की है, इस सहयोग का स्वरूप जितना तादृश और स्वस्थ होगा साथ में उतनाही स्वेच्छापूर्ण एव सम्मानप्रद भी होना चाहिये

० ० ०

सत्ता और जनतन्त्र

जो राजसत्ता डराकर लोगों को अपने साथ रखना चाहती है वह मिट जाती है। इसी प्रकार जब जनता भय से राज्य सत्ता के साथ रहती है तो इसका अर्थ होता है नोकरशाही की स्थापना। दोनों परिस्थितियां ही खतरनाक हैं और जनतन्त्र के लिये अनिष्टकारी है। जनतन्त्र में तो जनता और सत्ता का सहानुभूतिपूर्ण एवं सम्मानास्पद सहयोग होना चाहिये।

० ० ०

कांग्रेस अग्निपरीक्षा में

भारत की जन्मपत्री में कोई ऐसा गृह है जोकि विकास के पथ में संकटों के शूल आते रहते हैं। सीता जी रावण के अत्याचारों की परीक्षा में से उत्तीर्ण हुई थी। भारत अंग्रेजों की परीक्षा में से उत्तीर्ण हुआ। सीता को रावणी परीक्षा के उपरांत भी राम को संतोष दिलाने के लिये अग्नि–परीक्षा और देनी पडी थी। इसी प्रकार कांग्रेस रावणी राज्य की परीक्षा में से तो उत्तीर्ण हो गई किन्तु उसे अभी आपकी, घरवालों की अग्निपरीक्षा में अभी और उत्तीर्ण होना है।

कांग्रेस और समाजवाद

समाजवाद के पास अपना कुछ नहीं। उसने तो कांग्रेस की दुकान से शेयर निकालकर अपनी नई दुकान खोल दी है; किंतु उनकी पूंजी इतनी जरा सी है कि उसपर देश भरोसा नहीं कर सकता। कांग्रेस की ७० वर्ष की फर्म है। अंग्रेजों से टकराकर भी उसका दिवाला नहीं निकला।

• •

साम्यवाद और समाज

साम्यवाद के ध्येय सर्वमान्य हो सकते हैं परन्तु उसकी नीति लोकतंत्र के सर्वथा प्रतिकूल है। लोकतंत्र में जनजाग्रति का ध्येय रहता है और बहुसंख्यकों की शक्ति में जनतंत्र का विकास निहित रहता है किंतु साम्यवाद में इसका बिलकुल उल्टा है। वहां हिंसा के मार्ग से कुछ व्यक्ति काम करते हैं और आम जनता राजकीय प्रगति से विमुख हो जाती है। समाज-व्यवस्था स्थाई और सुरक्षित रखना कठिन और असंभव सा हो जाता है। स्थायित्व के साथ प्रगति व आम जनता का विकास अहिंसा के शांतिमय मार्ग से ही अधिक हो सकता है। साम्यवादी आज चाहे हिंसा से किसी वस्तु को प्राप्त करने में सफल हो जायें किंतु यदि सारे जगत में साम्यवाद की स्थापना हो जाये तो महान अन्तस्थ विप्लव उपस्थित हो जायगा।

उत्पादन और देश की प्रगति

आर्थिक सुव्यवस्था ही राज्य की प्रगति की आत्मा है। इसलिये देश में खूब उत्पादन बढाने की आवश्यकता है। उत्पन्न धन का वितरण करने में कुछ असमानता भी रह जाये तब भी उत्पादन कार्य तो बढना ही चाहिये। सभी दृष्टियों से व्यक्तियों तथा वर्गों की अपेक्षा देश को आर्थिक स्थिति प्रथम विचारणीय प्रश्न है।

मजदूर और मालक

अधिकार तथा शक्ति का वैषम्य आज की प्रधान समस्या है और इस विषमता को दूर कर देना है। भारत की जनता के आर्थिक एवं सामाजिक निर्माण का युद्ध अभी जारी है। न्याययुक्त समाज में हरएक को उसकी योग्यता के अनुसार प्राप्त होने की व्यवस्था होना बहुत आवश्यक है। जागीरदारों और मालिकों के पास जो बाहुल्य है उसमें से उन्हें स्वेच्छापूर्वक दे देना चाहिये क्योंकि किसान मजदूरों की भूखी आंखे और फैले हुए हाथ याचना कर रहे हैं। स्वेच्छा से देने में ही गौरव है और उसमें ही शोभा भी है।

रक्तहीन क्रांति

रक्तहीन सामाजिक क्रांति की इति तभी होगी और हमारा वास्तविक महानता तभी प्रमाणित होगी जब हम सबके लिये पवित्र से पवित्र साधनों द्वारा समृद्धि प्राप्त कर सकेंगे।

वेद की कतिपय कवियित्रियाँ

डा० सूर्यकांत

> "फूल तो अपनी डालपर मुसकाता रहता है जब कि भौंरे उसकी लुनाई पर लट्टू हो उसके चहुँओर गाने और नाचने लगते हैं फलतः वैदिक कविता में भी नारी की अपेक्षा नर का ही अधिक हाथ है पर जब भी कभी नारी के कलकंठ से कोई कूक निकली है, तभी उसने नर-जगती में एक मोहनी सी बरसा दी है। जो खोज, जो चातुरी और व्यंजना नारी की रचना में दीख पडती है वह नर की रचना में कदाचित ही मिलेगी।"
> ऐसी ही थीं वैदिक काल की कुछ कवियित्रियाँ-घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, लोपामुद्रा, शाश्वती, रोमशा। इन कवियित्रियों के जीवन एवं साहित्य सृजन से परिचित होने के लिये डा० सूर्यकांत का यह लेख पढिये।

जीवन के रागात्मक व्याख्यान को साहित्य कहते हैं। जब साहित्य लय और तान में विलीन हो जाय तब वही कविता बन जाती है। कविता का जो चारु-समृद्ध रूप हमें वेद में मिलता है वह अन्यत्र कहीं नहीं। वैदिक जीवन आजादी का जीवन था; उसपर मानवकृत बंधन अभी नहीं लदे थे। क्या भाव, क्या भाषा और क्या कर्म सभी क्षेत्रों में उन दिनों एक अजीब बालातप फैला हुआ था; प्रतिभा और त्वरा के उस बालातप में जो भी वाक्सरित प्रवाहित हुई, वही अमर जान्हवी के रूप में परिणत होगई! वैदिक युग का मानव अपनी भावी असीम यात्रा पर दृष्टिपात करता हुआ अभी अपने उद्गम क्षेत्र के छोरपर ही खड़ा था। यात्रा से पहले उसके उर में एक अजीब कंपन था, उसके सुर में एक अजीव मुरली थी और उसकी रचना में एक अनोखा मोहनमंत्र था। आजादी के उस वातावरण में पूरी त्वरा और ताल के साथ जब मानव की प्रतिभा फूटी तब धरती पर इस अमर कविता का अवतार हुआ-वेद इसी प्रकार की कविताओं का आदिम आर्य-संग्रह है।

कविता के क्षेत्र में नारी की अपेक्षा नर का हाथ अधिक रहता आया है- क्योंकि हम देखते हैं कि फूल तो अपनी डाल पर मुसकाता रहता है, जब कि भौंरे उसकी लुनाई पर लट्टू हो उसके चहुंओर गाने और नाचने लगते हैं। फलतः वैदिक कविता में भी नारीकी अपेक्षा नर का ही अधिक हाथ है। पर जब भी कभी नारी के कलकंठ से कोई कूक निकली है तभी उसने नर जगती में एक मोहिनी सी बरसा दी है। जो चीज, जो चातुरी और व्यंजना नारी की रचना में दीख पडती है वह नर की रचना में कदाचित् ही मिलेगी।

शौनक की या बृहद्देवता तथा अन्य अनुक्रमणियों में वेदों के दृष्टाओं या रचयिताओं के बारे में मनोरंजक आख्यानक आते हैं। यद्यपि सर्वात्मनाश के प्रामाणिक होने में संदेह है तथापि इनकी आधारशिला सत्य प्रतीत होती है। इन अनुक्रमणियों में नारी कवियोंपर भी कुछ आख्यानक मिलते हैं। उन्हींके आधार पर आज हम वेद की कतिपय कवियित्रियों के बारे में कुछ लिखते हैं।

घोषा

अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के दशम मण्डल के ३९ और ४० सूक्त घोषा के बनाये हुए हैं। घोषा एक संभावित ऋषि परिवार की ब्रह्मवादिनी कन्या थी। इसके बाबा का नाम दीर्घतमस था, जो स्वयं सूक्ष्मदर्शी कवि थे और जिन्हें स्वयं वेद ने (ऋ. के १०,१५८६) यतियों का ब्रह्मा और सारथि बताया है। वृहद्देवता में आता है कि एक बार दीर्घतमस् के सहचारियों ने इन्हें एक नदी में डाल दिया और ये बहते बहते अंग देश में जा पहुंचे। वहां इनका उस देश के राजा की दासी [illegible] हो गया जिससे इन्हें कक्षीवान नामक

पुत्र का लाभ हुआ । घोषा इन्हीं कक्षीवान की पुत्री थी।

ऐसे सुपूत वंश में उत्पन्न होनेपर भी न जाने घोषा को कुष्ठ रोग कैसे हो गया जिसने उसकी सभी आशाओं पर राख डाल दीं । कुष्ठी घोषा को कौन कैसे वरता ? निदान वह अपने पिता की देखरेख में दिन बिताती रही– पर हर चीज की घडी होती है । उसकी कठोर तपस्या से अश्विनीकुमार प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसका उपचार कर उसे नवलांग लजीली अंगना बना दिया । तब घोषा ने उन देव भिषकों के गीत गाये और प्रसन्नता के ज्वार में उसकी हृद्वीणा के तार कुछ इस तरह झनझना उठे कि उनसे एक ऐसी रसीली नारी सहज पुकार निकली जो सदा के लिये अमर बन गई । ऋग्वेद के दशम मंडल के ३१ और ४० सूक्तों में घोषा अश्विनीकुमारों के रथ को और स्वयं उन्हें इस प्रकार पुकारती है जैसे एक उपकृत पुत्र अपने पिता को पुकारता है । इसी प्रसंग में वह इन दोनों के एक एक उपकार को आनन्दमग्न होकर गाती है और क्रमश: उन सभी प्रसंगों को दुहरा जाती है जब कि इन दोनों ने उसकी आर्त पुकारपर उसे मुक्त किया और तब उसकी वाणी में उन सभी त्रस्त-ग्रस्त व्यक्तियों की वेदना कंठ पा जाती है । छठे मंत्र में वह अपने आप को बन्धुविहीन, सजातिरहित और जडमति कहकर उनके सामने पल्ला पसारती है और पुत्री बनकर उनके पैरों पडती है और कहती है–"मेरी पुकार पर कान दो, मुझे मुसीबत से उबारो" । इसके बाद फिर ऋषियों की एक लंबी नामावलि आ जाती है जिनपर कि इन दोनों ने भांति भांति के उपकार किये थे और फिर उसके मुंह से नारीसुलभ एक ऐसी पुकार निकल जाती है जो वैदिक साहित्य में अपने जैसी आप है। वह कहती है–

हे कुमारो ! उस सुहागन को पाप कहां, भय कहां; और पीडा कहां जिसके साथ अपने रथ में उसका प्रियतम है और जिसके भिषक कि स्वयं तुम हो ।

और फिर दशम मंडल के एक सूक्त में विलंब से आने पर कुमारों को कुछ उलाहने दिये गये हैं जो चोज, चुटकी और चाटुकारिता से भरे हुए सरस--स्वाभाविक है । दूसरे मंत्र में ही वह उनपर बरस पडती है कि तुम कहां रहे, क्या करते रहे, दिन में किधर थे, रात को कहां थे, किसके न्योते पर तुम रीझ गये थे जैसे कि विधवाके निहोरे पर देवर और कनीज की कनखियों पर उसका मोहन । अजीब नजाकत है; चोज क्या हुआ मानों कामदेव की चुनौती है । हर पंक्ति में एक अजीब उद्रेक, एकगहरी व्यंजना, एक नारीसुलभ उलाहना । मजाक के साथ साथ नवीनता पर भी घोषा का ध्यान बना रहता है । १०,१९५८४,३ में आप फरमाती है कि प्रात:-काल तुम रोज इसप्रकार जगाये जाते हो जैसे भाटों द्वारा बूढे राजा ।

घोषा के बाबा दीर्घतमस ने कुमारों से खोई हुई नेत्रज्योति हासिल की थी और साथ ही १०० बरस का जीवन पाया था । घोषा के पिता कक्षीवान पर भी कुमारों के अनेक उपकार थें–और इन उपकारों के गुणगान में कक्षीवान ने सरस गीत गाये हैं । इनका नमूना ऋग्वेद के प्रथम मंडल में ११६ से १२६ तक के सूत्रों से मिलता है । ऋग्वेद के दशम मंडल का ४१ वां सूक्त घोषा के पुत्र सुहस्त्य की रचना है और उसने भी इन्हीं देववैद्यों की महिमा गाई गई है ।

गोधा

अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के दशम मंडल के १३४ वें सूक्त की ७ वीं ऋचा गोधा की बनाई हुई है और शेष सारे सूत्र के रचयिता मांधाता ऋषि हैं। दोनों में किसी प्रकार का संबंध था या नहीं इसका निर्णय आज असंभव सा है । मंत्रों के देवता क्रमश: इन्द्र और विश्वदेव हैं ।

विश्ववारा

ब्रह्मवादिनी विश्ववारा का जन्म अत्रिवंश में हुआ था जिसके मेंबरों ने ऋग्वेद के पंचम मंडल की रचना की है । यह एक विशाल परिवार था और इसके अभिजन रावी और जमना के बीच फैले हुए थे। पंचम मंडल का २८ वां सूक्त विश्ववारा की रचना है और इसके उष:कालीन प्रबुध्यमान अग्नि की स्तुति की गई है । इस वर्णन में कुछ ऐसे मनचुभे मुहाविरों का प्रयोग किया गया है जो उदीयमान अग्नि की सारी ही श्री और महिमा को श्रोता के सामने ला उपस्थित करते हैं । अपनी प्रार्थना में विश्ववारा परिणीत दंपत्ति के मध्य सामंजस्यकी स्थापना चाहती है और धनप्राप्ति के साथ साथ शत्रुओं का पराभव मांगती है और इस प्रकार अपने एक ही मंत्र द्वारा

हमारे संयुक्त वैदिक नर-नारी का सतेज आदर्श उपस्थित कर देती हैं। वैदिक युग में नारी का क्या स्थान था, वैदिक कर्मकांड में उसका क्या भाग था, इन सभी बातोंपर इस एक मंत्र से पर्याप्त प्रकाश पड जाता है।

अपाला

अपाला भी विश्ववारा के वंश में ही उत्पन्न हुई थी। उसने इन्द्र की स्तुति में अष्टम मंडल का ९१ वां सूक्त गाया है। अपाला के विषय में सायणने निम्न कथा लिखी है –

एक कन्या जल लाने के लिए हाथ में बरतन लिए जा रही थी। मार्ग में उसे सोम-के पौधे का टुकडा मिल गया। जलावरण से लौटते हुए उसने उस पौधे के टुकडे से कहा:– सोम ! मैं तुझे पीस छानकर इन्द्र को भेंट दूंगी। यह कहकर उसने उस टुकडे को उठा कर मुंह में रख लिया और वह उसे अपने दांतों से चबाने लगी। लकडी पिसकर चडचडाई और उससे इस प्रकार की ध्वनि पैदा हुई जैसी कि पत्थरों में पिसते हुए सोम की हुआ करती है। इन्द्र ने समझा कि कोई मेरे लिये सोम पीस रहा है। वह तुरंत भागा आया। पर जब उसे पत्थरों के बजाय सोम अपाला के मुंह में पिसता हुआ दीख पडा तब वह वहां से नौ दो ग्यारह होने लगा। तब अपाला बोली – ओ घर घर के अतिथि ! जाते क्यों हो ? तुम्हारे ही लिये तो मैं सोम पीस रही हूं। इसे पी और निहाल हो। इसमें जौ और धान मिले हुए हैं–लो इसे पी और मत्सर बन। इंद्र से यह कह कर वह अपने मुंह में पिसते हुए सोम से बोली–ओ सोम ! बह, तू इन्द्र के लिये बह, धीमे धीमे बह, छोटी छोटी बूंदें बनकर बह। उसके न्योते पर इन्द्र ने उसके ओठों से सोम रस का पान किया–और बताइये, ऐसा कौन बेदिल और बेदाग होता जो रमणी के न्योते पर उसके मुंह का सोम तो पी जाता और उसके अधर मधु को अछूता रहने देता। फिर इन्द्र तो थे ही मनमौजी और महामायावी। और तब अपाला आपेसे बाहर होकर बोली– "भला हो इन्द्र का। वह हमें धन धान्य दे, शक्ति-संपन्न करे, चीज बस्त दे, वह हमपर प्रसन्न होवे– इस जीवन में अनेकों बार मुझपर पतिदेव का क्रोध बरसा है और मैं बार-कुबार में मारी मारी फिरी हूं"। आओ, आज इंद्र से मिल अपने दुख दूर कर लूं। तब इंद्र बोले 'अपाला ! बताओ क्या चाहती हो ? अपाला बोली–ओ इन्द्र ! भरपूर कर इन तीन चीजों को, मेरे पिता का गंजा सिर, उसके ऊसर खेत और मेरा यह पूति विगलित देह ! ओ इंद्र ! ये रहे मेरे पिता के खाली-सूने खेत। यह रहा मेरा चमडी-रोग से छना हुआ शरीर और यह रहा मेरे पिता का केशविहीन सिर। इसपर बाल उगा दे, खेत में धान लहलहादे, मेरे बदन पर अमृत का हाथ फेर दे। तब इंद्र गद्‌गद हो उठे और उन्होंने तीन बार अपाला को अपने रथ की ओर खींचा और इन्द्र का ऐसा करना था कि अपाला का रोग जाता रहा और उसकी पोरी पोरी में लुनाई भर गई।

अगस्त्यकी बहिन

ऋग्वेद के दशम मंडल ६० वें सूक्त की छटी ऋचा अगस्त्य भगिनी की रचना कही जाती है। इस ऋचा में वह इक्ष्वाकुवंशके महान राजा असमाति की स्तुति करती है और उसे अपने पुत्र सुबंधु की सहायता के लिये पुकारती है। सुबंधु उसके सामने पडा दम तोड रहा है; उसके भाई उसकी सहायता के लिये क्या क्या नहीं कर रहे। इसी प्रसंग में वह इन्द्र को टेरती है। बाकी सूक्त में उसके अन्य पुत्रों की इन्द्र के प्रति करुणपुकार है।

बृहद्देवता के अनुसार अगस्त की बहिन के चार पुत्र इक्ष्वाकुवंशीय राजा असमाति के कुल पुरोहित थे। किसी कारण राजाने उन्हें हटाकर उनके स्थानपर दो अन्य पुरोहित लगा लिये जो बडे चरकटे थे। इन दोनों ने मिलकर सुबंधु पर जादू टोना कर दिया और उसे धरती पर गिरा दिया। जब सुबंधु के भाई उधर से निकले तब वे दुखी हो रोने चिल्लाने लगे। तभी उनकी माता उधर से आ निकली। सबके कहने–सुनने पर असमाति ने सुबंधु को पुनर्जीवित कर दिया और चारों भाइयों को प्यार से उनके अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

लोपामुद्रा

लोपामुद्रा अगस्त्य ऋषि की पत्नी थी। प्रेम की अधिष्ठात्री देवी रति की स्तुति में उसने प्रथम मंडल के १७९ वें सूक्त के पहले दो मंत्र गाये हैं। लोपामुद्रा पतिपरायण साध्वी नारी थी किंतु अगस्त्य ऋषि सब

कार की ईषणाओं से परे रहते हुए अपनी पत्नी से अलग रहते थे। प्रलंब विरह वेदना से विधुरित हो लोपामुद्रा उनसे एक दिन यों बोली– हे पतिदेव! अनेकों सरदियां मेरे इस शरीर पर कंपकंपाती बीत गई, मेरी कितनी ही रातें करवटे बदलते बदलते पौ में बदल गईं, अब मेरे देहपर जरा की झंडी लहराने लगी है–देखो, दसवीं लुनाई छिनी जा रही है, नारी नर के भोग के लिये बनी है–क्या फिर मैं ही मुंह ताकती रह जाऊगी? और देख, वे महाभाग ऋषिगण, जो साक्षात दवताओं के साथ ऋत चर्चा किया करते थे, वे भी सहज भोग से अछूते न रहे। उन्हें भी नारी महिमा का अत न मिल सका–पत्नी तो बनी ही वीरों के भोग के लिये है!

और तब अगस्त्य ऋषिके शरीर में बिजली सी चमक गई और वे लोपामुद्रा को धीर धराते हुए बोले–"आर्ये! हमारी तपस्या विफल नहीं गई; देवता हमारे साथ हो, हम सभी शत्रुओं पर विजय पा जायेंगे, हर ध्येय हमारा अपना होगा, यदि हम एकमत हो इस जीवन म साथ चलेंगे।' इतना कह अगस्त्य ने तपस्याके साथसाथ भोगशान्ति का भी आस्वादन किया और तब उनके शुष्क नीरस जीवन में एक मनोरम रस का संचार हो गया।

शश्वती

ऋग्वेद के अष्टम मंडल के प्रथम सूक्त के ३४ वें मंत्र मे शाश्वती को नारी कहकर पुकारा गया है-क्योंकि नारी है सचमुच वही जो अपने नर के सुख में सुखी और उसके दुख में दुखी रहती हो। गांधारी की पूजा हम लोग इसीलिये करते हैं। शाश्वती के पतिदेव यादव असंग किसी कारण अपना पुंस्त्व खो बैठे थे। शाश्वती ने घोर तपस्या करके उन्हें नीरोग किया और अपने ही तप के प्रभाव से अंत में नारी सुलभ सुख का आस्वादन किया।

रोमशा

रोमशा बृहस्पति की पुत्री थी। उसके पति भावयव्य ने एक बार उससे नर्मपरिहास किया। उसी के उत्तर में रोमशा ने प्रथम मंडल के १२६ वें सूक्त की ७ वीं ऋचा गाई है और उसमें उनके परिहास का ऐसा व्यंजक उत्तर दिया है कि पाठक दांतों तले अंगुली दबा लेता है।

इसमें संशय नहीं कि उक्त कवियित्रियों की रचनाओं में यत्रतत्र श्रृंगार की गहराई उभर आती है और उनके सरल मुख से कुछ ऐसे व्यंजनापूर्ण परिहास निकल जाते हैं जो आज हमारी दृष्टि में अनुचित कहे जा सकते हैं। किन्तु वह युग आदिम युग था। तब आदम को ईव से संश्लिष्ट करने की ओर ही प्रकृति और पुरुष दोनों के प्रयत्न संतुलित थे। वेदों की इन ऋचाओं में उसी भावना भरित क्रियाचक्र की आभा है।

यह हुआ वेद का अत्यन्त संक्षिप्त कवियित्री-जगत। इनकी रचनाओं में हमें प्रेम का वही आगार छलछलाता दीख पडता है जो कि आदिम नारी के उर में फूला न समाता था। इसकी लुनाई नवनीत से कहीं बढकर है, मधुरिमा पोरी पोरी में नवीन है, इसके चोज, इसके प्रहसन, इसकी अन्योक्तियां और इसकी अनोखी भाग-भंगिमा और कहां मिलेगी?

गुस्ताख़ धरती

आकाश ने धरतीपर विजय प्राप्त कर ली थी पर अब धरती ने आकाश को चुनौती दी है। यही है श्रीहरि की 'गुस्ताख धरती'

धरती दिन-दिन गुस्ताख हुई सी जाती है,
अब अम्बर का शासन इसको स्वीकार नहीं।
वे चूस-चूस लेनेवाली रवि की किरणें
हैं देख रही-धरती के तेवर बदल रहे,
दिल खोल रहा, माथा तपता, तनती छाती,
ये सारे सागर-सर-नद-निर्झर उबल रहे,
वह नभ निचोड लेने उठती, अब पावसके
उन बातों का बन्धन इसको स्वीकार नहीं।
यह कडी पड रही है कि क्षितिज के रक्त सने
वे कडे दांत थककर ढीले पडते जाते,
धरती का लोहू भी विष बनता जाता है,
तन सभी दिशाओं के नीले पडते जाते,
यह नभ की छाती से टकराने वाली है,
उन दांतो का दंशन इसको स्वीकार नहीं।
प्राची से आनेवाली तीखी किरणों के
शर आज कलेजे में तम के गडते जाते,
निशि बीत रही या तम मिटता जाता है या
शशि नक्षत्रों के मुख पीले पडते जाते,
अब नया सूर्य इसका बन्धन खोले, तम की
कारा का जीवन अब इसको स्वीकार नहीं।
वह रो-रोकर थक गई कि आँसू सूख गये
अब वह निज चरणों में आकाश झुकायेगी,
वह खप्पर भरकर शंकर के वक्षस्थल पर
फिर झूमेगी, तब नूतन विश्व बनायेगी,
वह आज मुक्ति के गायेगी फिर गीत नये
परवशता का क्रन्दन इसको स्वीकार नहीं।
धरती दिन-दिन गुस्ताख हुई सी जाती है,
अब अम्बर का शासन इसको स्वीकार नहीं।

प्यास

जो कभी बुझना नहीं जाने, वही तो प्यास है।
तृप्ति को भी सोखकर जो लोभ-सी बढती चले;
सिन्धु के भी बीच जो बाडव बनी सब दिन जले;
चोट खा-खाकर निखरती ही चले जो प्यार-सी;
अश्रु पी-पीकर धधकती जाय जो अंगार-सी;
मात्र कवि का ही न, मरु का भी यही विश्वास है-
जो कभी बुझना नहीं जाने वही तो प्यास है।
शूल-सा संसार अपने बीच, हम-तुम फूल दो,
धार बह निकली नियति की, बन गये हम कूल दो,
मिल नहीं सकते कभी असफल हमारे श्वास हैं,
किन्तु, इतनी दूर होकर भी सदा हम पास हैं,
टूटकर भी जो नहीं टूटे वही तो आस है।
जो कभी बुझना नहीं जाने, वही तो प्यास है।
मृत्यु की शीतल सुधा के पात्र चलते ही रहे,
किन्तु, जीवन के निरन्तर होंठ जलते ही रहे,
मिल सका विश्राम कब, चलता सदा जीवन रहा,
प्यास का मारा सदा यह तन रहा, यह मन रहा,
प्यास ही अस्तित्व है, यह प्राण का इतिहास है।
जो कभी बुझना नहीं जाने, वही तो प्यास है।

श्रीहरि

'मरुप्रदीप' और उपन्यासकार 'अंचल'

श्री राजेंद्र यादव

उपन्यास कला क्या है ? उपन्यासकार बनने के लिये किन तत्वों की आवश्यकता होती है ? एक सफल उपन्यास की कसौटी क्या है ? क्या श्री अंचल का "मरुप्रदीप" उस कसौटी पर खरा उतरता है ? इन प्रश्नों का उत्तर श्री राजेंद्र यादव के इस आलोचनात्मक लेख में देखिये ।

बचपन में एक खेल खेला करते थे । एक डिब्बे में कुछ काठ के टेढें मेढे रँगे रँगाए टुकडे होते थे और उन्हें ही जोड-तोडकर विभिन्न मकानों के नक्शे बनाए जाते थे । जो जितने अधिक नक्शे बना लेता था उसे उतना ही अधिक बुद्धिमान स्वीकार किया जाता था । लेकिन उन छोटे बडे गुटकों की संख्या कोई पच्चीस तीस के लगभग होती थी और हमारे उपन्यासकार श्री अंचलजी के पास केवल दो तीन गुटके हैं । स्वाभाविक ही है कि पहिला नक्शा ठीक बने और बाकी में कोई नवीनता नहीं रह जाए ।

'अंचल' ने अभीतक चार उपन्यास लिखे हैं, 'चढती धूप', 'उल्का', 'नई इमारत' और यह 'मरु प्रदीप'। इन चारों में उनके पास केवल एक कथानक है । एक पुरुष है जिसके सामने देवता भी हेय है । एक नारी है—पुजारिन । ईश्वर ने सारा काम छोडकर उसे ही अपने हाथों से बनाया है । दोनों में इतना पवित्र सम्बन्ध है कि एक-सवा हजार पृष्ठ के चार उपन्यासों में भी 'अंचल' उसकी पवित्रता बखान नहीं कर पाए हैं। पता नहीं अभी कितने और पृष्ठ लेने की उनकी इच्छा है । चूंकि इन दोनों के बीच में ऐसी पवित्रता हैं इसलिये उनका परस्पर का सम्बन्ध प्रायः भाई बहिन का है । बाकी के पात्र केवल इन दो पात्रों के लिये ही लाए गए हैं, इसलिये इन्हें बीच में छोडकर स्वयं 'आउट ऑफ फोकस' हैं ।

'अंचल' के उपन्यासों को देखकर कहा जा सकता है कि उपन्यासकार बनने के लिए अलग ही तत्वों की आवश्यकता होती है जो यशपाल में है । उनका प्रत्येक उपन्यास एक दूसरे से भिन्न जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की ऊंची-नीची भूमि का चित्रण करता है। वे चित्र कितने विविध और सजीव हैं—उपन्यासकार की सूक्ष्म पर्यवेक्षणशक्ति और गहरी संवेदना जैसे उनमें पुकार पुकार कर घोषणा करती है । यह शक्ति प्रेमचन्द और वृन्दावनलाल वर्मा में थी । 'चढती धूप' को देखकर लगा था कि वह शक्ति अंचल में भी है । पर अब जब एक के बाद एक उसीकी 'कार्बन' कापियाँ लाई जाने लगी हैं तो मन बुरी तरह क्षुब्ध हो उठा है । 'चढती धूप' के ममता और मोहन ज्यों के त्यों उल्का में मंजु और चांद बन गए हैं । जरा वातावरण बदलकर नई इमारत में ये दोनों ही आरती और महमूद आ बने हैं, हालाँ कि यहाँ इनके आसपास काफी जमघट लगाने की कोशिश की गई है । वे ही दोनों पात्र 'मरु प्रदीप' में विमल और शान्ति के नाम से मिल जाएंगे । उनसे प्रार्थना है कि वे या तो जिन्दगी का कोई और हिस्सा लें या फिर कुछ और लिखें । आखिर कवि ही वे क्या बुरे हैं । हाँ, दो तीन कथानकों को लेकर ही संसार का महान उपन्यासकार बना जा सकता है, इसके लिये शरत् की प्रतिभा चाहिये । केवल भाषा का (शैलीका नहीं) चमत्कार और गद्यकाव्य के टुकडे ही उपन्यासकार नहीं बनाते । 'चढती धूप' में अंचल की शैली अपने पूरे यौवन पर है । बाद में तो जैसे बूढ़ी होती जाती है, ढीली-ढाली और बेजान । कथानक को आगे बढाने की उसमें शक्ति कम है। अपनी भाषा की इस कमजोरी को अंचलजी तब समझेंगे जब इस उपन्यास के किसी अन्य भाषा में अनुवाद की वे कल्पना करें ।

यदि उन्हें जिद है कि वे अपने सभी उपन्यासों में यही कुछ पात्र और कुछ ऐसा ही कथानक रखेंगे तो मेरा अनुरोध है कि 'रोबिन हुड' की लोक कथापर तैयार कुछ देशी-विदेशी फिल्मों को वे देखकर उस कला की कुछ बारीकियां समझें ।

इस उपन्यास के कथानक में एक विमल है, एक शान्ति । शान्ति विधवा है और विमल से अत्यधिक प्रेम करती है । वे दोनों जुडवाँ भाई बहिन से भी अधिक घुले मिले हैं हालांकि हैं पडोसी । और पडोसी भी बडे विचित्र । रात के दस दस बजेतक गंगातट पर या रात रातभर छतपर खडे बातें किया करते हैं । उन्हें कोई देखने रोकनेवाला नहीं है क्योंकि बाकी सब लोग भी देवता किस्म के ही हैं । ऐसे पात्रों का पता उन्हें 'नई इमारत' में ही चल गया था । खैर चार छः बार उपन्यास पढने पर भी यदि यही समझ लिया गया तो उपन्यासकार का सारा श्रम ही समाप्त हो गया । उस ढाई सो पृष्ठों के एक उपन्यास के लिए कथानक ईश्वर की कृपा से काफी है । शान्ति विधवा है और शायद इसी विचार से कमलाकान्त को लाया गया था, लेकिन चूंकि 'अंचल' को इस (धर्मवीर भारती के शब्दों में) "समस्या का स्वस्थ जनवादी विधान मालूम है" इसलिये वे इस फिसलनवाली जमीन पर बडे सावधान रहे हैं । यानी कि "न तो कवित्वमयी भावुकता में उलझकर उन्होंने शान्तिके चरित्र का उदात्तीकरण किया है और न विद्रोह का झण्डा खडा करने के बहाने मन की सारी अतृप्त यौन लालसाओं को पृष्ठों पर उतारा है।" बल्कि एक दिन जब कमलाकान्त उसे आलिंगन कर लेता है तो आत्मभर्त्सनासे वह रातभर छटपटाती है । फिर विमल इत्यादि को ठेल ठालकर अपने ससुर के यहां चली जाती है जहां पिछली बार बहुत दबावों पर भी नहीं गई थी और जिनके बारे में उसने कहा था– "चाची में तय कर चुकी हूं। उस घर में कभी नहीं जाऊँगी। आठ वर्ष होगए, उन्होंने कभी पूछा भी नहीं कि बहू जीती है या मर गई। उनका एक पैसा में नहीं जानती। आज जब घर में जरूरत है तो नौकरानी के बजाय विधवा बहू को विदा कराने आए हैं....।"अन्त में वहीं चली जाती है जहां कोई रोशनी नहीं, कोई आशा नहीं.....। यहीं उपन्यास का अन्त है और यहीं कहीं स्वस्थ जनवादी समाधान छिपा है।

एक किस्सा याद आता है । किसी ने अपने मुकदमे के लिये कई सौ रुपया रोज देकर शहर के सबसे बडे वकील को तय किया । कचहरी में उस वकील की धाक थी और मैजिस्ट्रेट उसके नाम से चौंकते थे लेकिन था वह बडा शराबी । कचहरी में शराब पिये हुए खडे होकर उसने अपने मुवक्किल की ओर से कहना शुरू किया । नशें की लहर । बह गए । अचानक अपने वकील के विपक्ष में उनकी सरस्वती का हंस उड चला । और अपने ही मुकदमें के खिलाफ वे ऐसे तर्क खोजकर लाए कि सारा कोर्ट दंग । मशहूर वकील के अकाट्य तर्क से सब स्तब्ध । मुवक्किल का चेहरा पीला पड गया जैसे वर्षों से पीलिया का बीमार हो । बेजान बैठ गया । वकील का मुंशी स्वयं चक्कर में । आखिर मामला क्या है ? एक डेढ घण्टे उसने अपने ही मुकदमे की वह धज्जियां उडाई कि मुवक्किल का हार्ट फेल होते होते रह गया । आखिर जब नहीं रहा गया तो मुन्शीने मिसिल देने के बहाने वकील के कान में बताया– 'आप तो सारी बातें हमारे ही मुकदमे के खिलाफ बोल रहे हैं ।'

"अच्छा !" वकील चौंका, आश्चर्यसे उसने कहा, जज की ओर पलटा और कडककर बोला– "मायलार्ड, ये वे सब तर्क, दलील और सफाइयां हैं जो मेरा विपक्षी मुझसे कह सकता है। यह मेरे मुकदमे का दूसरा पहलू है, जिसे मैंने विस्तार से बताया अब आप मेरे तर्क सुनिये...." और उसने अपने मुकदमे के विषय में कहना शुरू किया ।

यह अपनी 'बहक' को चालाकी से सुधारना हो सकता है, लेकिन इसे सुबह के भूले का शामको घर आना भी कहा जा सकता है । मगर आफत तो यह है कि अंचलजी या उनके साथी इस 'बहक' में अपने आपको बिल्कुल भूले हुए ही नहीं हैं वरन इसी में कहीं 'स्वस्थ जनवादी समानाधान' भी उन्हें दीखता है– इतने सचेत वे हैं । और हो सकता है, एक दिन श्री भगवतीचरण वर्मा कह उठे–ये वे सब टेढे मेढे रास्ते हैं जिनसे हमारा देश आज बुरी तरह ग्रस्त है। बस उनसे ही जनता को आगाह करने या परिचित कराने के लिये मैंने यह उपन्यास लिखने की तकलीफ गवारा की । बडी ईमानदारी, सचाई और निष्पक्षता से टेढे मेढे रास्तों का चित्रण मैंने इसलिये किया कि कोई 'सीधासादा रास्ता' दिखा सकें लेकिन 'सीधा सादा रास्ता' की बात जब वे सुनते हैं तो कहते हैं (सुना है) 'अभी रांगेयराघव बच्चा है, लिखना सीख रहा है।' सीधा अर्थ इसका यह है कि वे सचेत हैं, भुलावेमें रखा जा सके–अपने आपको, पाठकों को।

यह हुई कथानक की बात । अब कथानक पर जो जामा चढाया गया है, उसके विषयमें । मेरे एक मित्र हैं इंग्लिश में एम० ए० और बिकट अध्येता । कहते हैं

उन्हें यूलिसीज पढने में भी आनन्द (रस) आता है। सारा उपन्यास-साहित्य चाट गये हैं। आल्डस हक्सले का एक नया उपन्यास आया। उसे पढने, प्राप्त करने को बडे विकल, प्रयत्नशील। खैर, ज्यों त्यों उपन्यास मिला। बडी धूम उस पुस्तक की थी। पढना शुरू किया उछलते कलेजे को थामकर-एक पेज, दो पेज, तीन पेज। बोले- सच कहता हूं, मैं अठारह बीस पृष्ठ पढ गया, और मेरी समझ में ही नहीं आया कि क्या पढ रहा हूं। दर्शन की ऐसी ऐसी कलाबाजियां और हवाई उडाने कि मेरा दिमाग चकरा गया कि पढ क्या रहा हूं। आखिर कोई सूत्र तो मिले। मैं कसम खाकर कहता हूँ कि लाख कोशिश करने पर भी उसके बीस तीस से अधिक पृष्ठ नहीं पढ सका। थककर पुस्तक रख देनी पडी। दूसरे दिन मैंने उस पुस्तक का वह पृष्ठ फाड डाला जहां लिखा था- "उपन्यास"। उसस्थान पर मैंने लिख दिया "दर्शनशास्त्र की एक पुस्तक' और बडे शौक से सभी पुस्तक पढ गया।

'अंचल' के इस उपन्यास में भी ऐसी ही उलझी अतीन्द्रिय कल्पना और दर्शनाभास से पाठक की पहिलेही पृष्ठों में मुठभेड होने लगती है। मेरा तो दावा है कि जिसने कम से कम पन्द्रह बीस साल कविता न की हो ही इसे पढ सकताहै। पक्तियों पर पक्तियां चली जाएँगी, पृष्ठों पर पृष्ठ उलटते जाएँगे और आप समझ नहीं पाएंगे कि आखिर इतने सब शब्द मिलकर क्या कर रहे हैं। बहुत अधिक शब्दों का प्रयोग करना श्री इलाचन्द्र जोशी की शैली का भी एक विशेष गुण है। पर उसमें आप पायेंगे कि एक-एक शब्द स्वयं में चाहे कोई महत्व रखता हो या नहीं, लेकिन सम्पूर्णतः उसका जो प्रभाव बाद में रह जाता है वह बिल्कुल स्पष्ट, सजीव, मूर्त और अविस्मरणीय है। यह रूपके परे शब्दों-की आत्मा को पहिचानने की अद्भुत स्थिति है, जहाँ लगता है लेखक जान बूझकर बेकार के फेंकता जारहा है, फेंकता जारहा है और अन्त में आप देखते हैं कि रेत के ऊपर नदी के किनारे रात के एकान्त में पडे नन्दकिशोर की मानसिक उथलपुथल और बाहरी वातावरण का ऐसा चित्र आपके मन पर रह गया है जिसे आप जल्दी ही नहीं भुला सकते। पारसनाथ के घर की गन्दी गली को आप वर्षों याद रखेंगे। जहाँ देखेंगे पहिचान लेंगे। अल्फरेड पार्क में बात करते नीलिमा और महीप काफी समय तक आपकी स्मृति म झूलेंगे। नदी के किनारे स्मशानमे आधी रात के सन्नाटे में कापालिक के साथ रक्त पीते मनुष्यका चित्र काफी समय तक आँखों में नाचता है। शैली की यह विचित्र प्रभावात्मकता सचेष्ट साधना की देन है जो भावुकता के उफान से काफी दूर रहती है।

बहुत बातूनी आदमी की बातें पहिले-पहल काफी अच्छी लगती है क्योंकि वे बडी लच्छेदार होती हैं, रंगीन होती हैं; लेकिन जहां यह विश्वास हुआ कि यह आदमी बातूनी है वहाँ एक प्रकार की विरक्ति मन पर जमकर बैठ जाती है। अंचल के पात्रों के विषय में भी यही बात है। बात कहने को कम है, लच्छे अधिक हैं। एक लाइन में कही जा सकनेवाली बात कमसे कम चार पृष्ठों में है। लगता ऐसा है जैसे उनके सभी पात्रों और उनको स्वयं किसी तरकीब से उस दुकान का पता लग गया है जहां अप्रतिहत, निर्बाध भाषण दायिनी गोलियां मिलती हैं। अभी तक भारत के कांग्रेसी नेताओं को ही इस बात का गर्व था कि वे पुराने भाषणों को दुहरा दुहरा कर नित नया भाषण तैयार करके एशिया के सर्वश्रेष्ठ 'स्टेट्समेन' बन सकते हैं। हमें प्रसन्नता है कि एक साहित्यिक ने उनके इस गर्व को तोड दिया है।

आज जब सिनेमामें बैठते हैं, किस्सा अच्छी तरह चलता दिखाई देता है, मानसिक स्तर दूर फेंककर उन अस्वाभाविक घटनाओं में अपने आपको ज्यों त्यों लीनकर देते हैं। तब भी एक अज्ञात आशंका से हृदय हर समय धडका करता है। यह जो पात्र अभी अच्छा खासा हँस बोल रहा है– अभिनय कर रहा है, पता नहीं किस क्षण बेचारा ताल सुर युक्त गीत गा उठे। पता नहीं आपके साथ होता है या नहीं–मेरे साथ तो यही दिक्कत है। हमेशा चिन्ता लगी रहती है कि यह अच्छा भला पात्र बेचारा अभी गा उठेगा और कुछ न कर सकने के कारण हम विवश स्तब्ध रह जाएँगे। यही बात 'अंचल' के पात्रों के विषय में है। शान्ति बेचारी बिल्कुल भोली लडकी है। छोटाभाई उसे पीट देता है और कालेज में पढाई कैसे होती है उसे पता नहीं। संकोची इतनी कि घंटेभर पकौडी हाथ में लिए रहेगी पर खाएगी नहीं। पर कौन जानता है कि एकदम कब किस भाषा में बोल उठेगी जिसकी एक क्षण पहिले कल्पना भी नहीं की जा सकती। बातों का विषय वही है जो पिछले तीन उपन्यासों का रहा है–शान्ति अपनी तुच्छता व निरीहता बखानती है; विमल अपने

हृदय और हृदय में उसके स्थान की व्याख्या उसी दुरूह अलोकिक शैली में करता है। ऐसी लम्बी चौडी बातें करने का उनका कोई खास वक्त नहीं है—वे बातें रात के दो बजे मुण्डेर के सहारे खडे-खडे भी हो सकती हैं। आत्माभिव्यक्ति की विकट भूख 'अंचल' के सभी पात्रोंका महारोग है।

सब मिलाकर अंचल के इस उपन्यास के दोनों प्रमुख पात्र अस्वाभाविक और निर्जीव ही नहीं, अत्यधिक अशरीरी भावुक कवि और वाचाल हैं। अशरीरी और भावुक जैनेन्द्र के भी पात्र रहे हैं लेकिन उन्हें आप मनुष्य मानने को फिर भी तैयार हो जाएँगे। अस्वाभाविक और निर्जीव होने का आरोप उनपर नहीं लगाया जासकता। चाची है जो मिट्टी का खिलौना हैं। तरकारी बनाने काटने का काम उनके सुपुर्द है, चाहे जब बुला लीजिये, चाहे जब हटा दीजिये। कथा में कोई अन्तर नहीं पडता। और बेचारा हरि? दुनिया बदल गई है लेकिन शुरू की अपेक्षा अधिक बच्चा ही बनता जाता है जैसे उलटा बढ रहा हो (और यदि अशिष्टता न हो तो कहूं 'बैक' कर रहा हो) वह हमेशा ही एक-सा है। इसका कारण है कि कथानक में उसके लिये कोई स्थान नहीं है—सिवा इसके कि एक बच्चा चरित्रों की विविधता में शायद कुछ सहायक होसके।

तो भी एक तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि कहीं कहीं भावोद्वेलन को चित्रित करने में 'अंचल' ने कमाल कर दिया है। जैसे उषा के पुत्र होने पर शान्ति का मानसिक उतार चढाव, या वह आत्मभर्त्सना और हिस्टीरिया के दौरे का चित्रण, शान्ति की बिदा का अन्तर्द्वन्द्व, ये तीन चार स्थल जिनका मैंने संकेत किया है ध्यान देने योग्य हैं। इनकी सजीवता का क्या कारण है? – जहाँतक में पकड पाया हूँ यथार्थ की वह ठोस भूमि ही उनका आधार हैं जिनपर ये कुछ दृष्य आधारित हैं। यहींपर अपने आप इस तथ्य का उद्घाटन हो जाता है कि उपन्यास सजीव क्यों नहीं हो सका? क्योंकि उसका आधार यथार्थ नहीं है एक भावुकता है जिसपर छिछली दार्शनिकता और हवाई आध्यात्म का मुलम्मा चढाया गया है। कभी-कभी विमल शान्ति के भीतर की चिरंतन नारीत्व और अनिवार्य मातृत्व की आग को कुरेदने की चेष्टा करता है लेकिन वह सदैव ही आदर्श वैधव्य की राख उसके ऊपर डाला करती है, जो किन्हीं अंशोंतक उसकी विवशता है लेकिन उतनी बडी नहीं जितनी लेखक खींच-खींच कर दिखाता है। इसका फल वही हुआ जो ऐसी ऊँची आदर्शवादी आध्यात्मिकता का होता है घोर निराशा और अन्धकार में उसका पतन। यहाँ मैं श्री धर्मवीर भारती की केवल इस बात से सहमत हूँ कि "निम्न मध्यवर्ग जिसका चित्रण अंचलने किया है, वह वास्तव में मरुस्थल के और क्या है? उसका जर्रा जर्रा बिखर चुका है, रस और जलके नामपर जहाँ केवल मृगतृष्णा है, मरीचिका मात्र है। इस धरातल पर चलनेवाली निष्पाप आत्माएँ गहरे अंधेरे में भटक रही हैं।" बाकी यहाँ तो उन्होंने उनके पथप्रदर्शन के लिये इस मरुस्थल में बालूकी वेदी पर एक दीप स्थापित किया है—संयत पाठक को सहमत नहीं कर सकता। बालूकी वेदी ठीकहै, दीप भी ठीक है लेकिन पथ-प्रदर्शन इस स्थानपर बडा भ्रामक शब्द है।

शायद मैं बहुत अधिक कह चुका हूं। केवल एक बात सीधे 'अंचलजी' से। लिखते समय बीच बीच में लगाने के लिये जो बिन्दु (डॉटस्) लाते हैं उनपर कुछ राशन या कण्ट्रोल है या नहीं? और सिनेमा उपन्यासों को छोडकर उस स्थान का पता वे छपाकर के बताएँ जहां ऐसी भाषा बोलनेवाले लोग रहते हैं—"रह गया मैं......मैं तुम्हारा ही हूँ......बिल्कुल तुम्हारा......तुम्हारा ही......तुम्हारा ही। जीवित तुम्हारा......मरनेपर तुम्हारा......तुम्हारा। दूर रहूं या पास रहूं। जीवित तुम्हारा नहीं...... मेरा भी नहीं।" (१६३) इत्यादि।

आखिर जिन्दगी और स्वाभाविकता भी तो कुछ है जहांसे ये सारे उपन्यास व कहानियों के पात्र आते हैं

और बिल्कुल अन्त में चैखब की वह बात जो उसने आलोचकों के विषय में गोर्की से कही थी— "ये आलोचक घोडे की मक्खियों की तरह होते हैं—जो घोडे को खेत जोतने से रोकती हैं। घोडा काम में जुटा होता है और उसके पुट्ठे संगीत के सबसे नीचे सुरके लिये खिंचे तारों की तरह तने रहते हैं। तभी एक मक्खी उसके बाजूपर बैठकर गुदगुदाती है, भनभनाती है। उसे अपनी खाल झटकनी पडती है, पूंछ फटकारनी पडती है। और मक्खी भनभनाती किसलिये है? इसे शायद वह खुद भी मुश्किल से ही जानती होगी। सिर्फ इस लिये कि वह बेकस है और सारे संसार को जतादेना चाहती है— "देखो, मैं भी तो संसार में जिन्दा हूं। देखो मैं भनभना भी सकती हूं, किसी न किसी के बारे में हो, मैं भनभना सकती हूं।

T.B. टी.बी. "तपेदिक" चाहे फेफड़ों का हो या अतड़ियों का बड़ा भयङ्कर रोग है

(१) पहली स्टेज	(२) दूसरी स्टेज	(३) तीसरी स्टेज	(४) चौथी स्टज	अन्तिम स्टेज
मामूली ज्वर खांसी ज्वर	खांसी की अधिकता	शरीर सूखना, ज्वर, खांसी की भयंकरता	सभी बातों की भयंकरता शरीर पर वर्म, दस्त आदि का शुरू हो जाना	रोगी की मौत ओर भयंकर वर्मों का इधर उधर फैलना

जबरी——(JABRI)——जबरी——(JABRI)

इस दुष्ट रोग पर भारत के पूज्य ऋषियों की अनोखी खोज 'जबरी' हैं

क्या अभीतक आपने भारत विख्यात महौषधि "जबरी" का नाम नहीं सुना जो इस दुष्ट ओर भयंकर रोगसे जिन्दगी और मौत की कशमकशमें तडफ रहे हैं। देखिए भारत के कोने-कोने से लोग क्या कहते है।

डाक्टर भी आश्चर्य करने लगे--श्रीरामनाथ शर्मा असिस्टेंट सिगनल इन्सपेक्टर E. I. R मुरादाबाद से लिखते हैं कि हमारे साले 'श्री बजराजसिंह शर्मा सिगनल फिटर हापुड (मेरठ) को मेडिकल आफिसर मुरादाबाद ने टी. बी. बताया था। आपकी दवा 'जबरी' के सेवन से वह बिल्कुल अच्छा हो गया। डाक्टर लोग इसे देखकर दंग रह गये कि इतनी जल्दी कैसे अच्छा हो गया। मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। और भी देखिये-(२) ला० काशीप्रसाद वेश्य, दारानगर (इलाहाबाद) बाबू मुन्नालाल स्टोरकीपर सिम्भावली शुगर मिल पो. बस्सर (मेरठ) (४) बाबू रामसिंह घर नं ६१ रोठा मण्डी, देहरादून। (५) श्री तोसलहुसेन रईस मुकाम मुसेपुर पो. भरतकुण्ड जिला (फैजाबाद) (६) डा. ठाकुरसिंह नेपाली मुकाम कटैया पो. हरलखी जिला दरभंगा (७) रामखेलावनराम, भीखुराम पो. बाजार गुसांई (८) पं० चन्द्रमणी पाण्डे मुकाम कुरेहरा पोस्ट मेहनाजपुर जिला आजमगढ़। इसी प्रकार हजारों रोगियों का कहना है 'जबरी' दवा नहीं है बल्कि रोगी को काल के भयंकर गाल से बचानेवाली 'ईश्वरीय शक्ति' है। 'जबरी' भारत के पूज्य लगटोट बन्द ऋषियों की अद्भूत खोज और आयुर्वेदिक विद्या का एक अनोखा चमत्कार है। यदि आप सब तरह से नाउम्मेद हो चुके हों, एक्सरे (x-ray) आदि के बाद डाक्टरोंहकीमों ने भी जबाब दे दिया हो तो भी एकबार परमात्मा का नाम लेकर 'जबरी' की परीक्षा जरूर करें, परीक्षार्थ ही दस दिन का नमूना भी रखा गया है। जिसमें तसली हो सके।

T.B. टी.बी. 'तपेदिक' और पुराने ज्वर के हताश रोगियो ! अब भी समझो

अन्यथा फिर वही कहावत होगी कि-'अब पछताये क्या होत है जब चिड़िया चुग गयी खेत'। इस लिये तुरन्त आर्डर देकर रोगीकी जान बचावें। सैकडों डाक्टर, हकीम, वैद्य अपने रोगियों पर व्यवहार करके नाम पैदा कर रहे हैं और तार द्वारा आर्डर देते हैं। तार आदि के लिये हमारा पता केवल 'जबरी' जगाधरी लिख देना काफी है। तारसे यदि आर्डर दें तो अपना पूरा पता दें। मूल्य इस प्रकार है -

'जबरी' स्पेशल नं १ अमीरोंके लिये; जिसमें साथ-साथ ताकत बढ़ानेके लिये सोना, मोती, अभ्रक आदिकी मूल्यवान भस्में भी पडती हैं। मूल्य पूरा ४० दिनका कोर्स ७५) रु. नमूना १० दिन के लिए २०) रु. 'जबरी' नं० २ जिसमें मूल्यवान जडी--बूटियां हैं, पूरा कोर्स २०) रु०, नमूना १० दिन के लिये ६) रु० महसूल आदि अलग हैं। आर्डरमें पत्रका हवाला तथा 'जबरी' नम्बर १ या २ पता साफ साफ लिखें। पार्सल जल्द प्राप्त करने के लिये मूल्य मनीआर्डर से भेजें, यदि Air Mail से मंगाना हो तो २) रु० खर्च अधिक भेजें।

पता- **रायसाहब के० एल० शर्मा एण्ड सन्स. रईस एण्ड बैंकर्स [७५] जगाधरी (E. P).**

प्रतिशोध

डॉ. रमेशचन्द्र वर्मा

> "यह जापान और चीन की झूठी भावना है। झूठा है यह कथन कि मैं जापानी हूँ इसलिये प्रत्येक चीनी मेरा शत्रु है। मिथ्या है यह बात कि तुम चीनी हो इसलिये प्रत्येक जापानी से प्रतिशोध लेना तुम्हारा कर्तव्य है। आखिर क्या है यह चीन अथवा जापान-स्त्री पुरुषों का समूह ही तो। वैसे ही स्त्री-पुरुष चीन में भी हैं और जापान में भी फिर यह भिन्नता क्यों?" डा० वर्मा की यह कहानी इसी सत्य की ओर संकेत करती है कि मानव मूलतः मानव है, और मानवता को देश एवं काल की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता।)

देशद्रोही जनरल याको का नाश हो 'देशद्रोही जनरल याको का' 'देशद्रोही जनरल...... सहसा अगणित मुखों से निकली यह आवाज हवा में उठी और उठकर गूंज गयी......

कमरे में बैठी चाई का कलेजा काँप उठा। वर्ष भर पहिले, चाई जापान में नहीं, चीन मे रहती थी। उसी चीन के एक छोटे से नगर में उसका रेस्तराँ था। उसके पिता स्वयं उसके मालिक थे और मैनेजर भी। और पुत्री छोटे भाई वाई की सहायता से चीनी डिशेज तय्यार कर लेती थी। उसी का बीच, रेस्तराँ के रेडियो से अपने ग्राहकों का मनोरंजन कर चाई का पिता अपना तथा पुत्र पुत्री का खर्चा निकाल लेता था–

फिर सहसा एक दिन: घाँय, घाँय......सारे चीन पर तूफान सा आगया। जापान, सैनिक जापान साम्राज्यवाद के नशे में मदमत्त चीन के विरुद्ध बढ़ चला। मेकेनाइज्ड डिवीजन मशीनगन, तोप, मोटर, घुड़सवार और फिर पैदल–इसके अतिरिक्त हवाई जहाजों की गड़गड़ाहट और बमों का विस्फोट। चीन में हाहाकार मच गया। शहर के बाद शहर पर शत्रु का अधिकार होने लगा। और उसी के साथ लूट, भयंकर रक्तपात और अग्निकांड। नगरों पर धाक जमाने के लिये जापानी आग लगा देते। वृद्ध और युवा गोलियों के शिकार होते, युवतियों पर बलात्कार, बालकों की हत्या होती।

रोज चाई का पिता पुत्री को अखबार पढ़कर सुनाता।....को इसलिये मृत्युदंड मिला कि उसने चीनी सेना का भेद बतलाने से इन्कार कर दिया।....पर जापानी सिपाहियों ने बलात्कार किया और उसके नवजात शिशु का गला घोटकर मार डाला।....नामक ग्राम में आग लगा दी और जिन्होंने भागने का प्रयत्न किया वे गोली के शिकार हुये।

और कह उठता चाई का पिता– बेटी ये जापानी मानवता के शत्रु हैं। हमें इनसे बदला लेना ही होगा। इनके उपयुक्त तो केवल एक दंड है -मृत्यु

चाई अपने पिता से सहमति प्रगट करती। उसका हृदय जापान के विरुद्ध क्रोध से भर जाता। सम्पूर्ण जापान, जापान के प्रत्येक स्त्री पुरुष और बालक के खून की वह प्यासी हो जाती। उसकी आंखों में चमक उठती प्रतिहिंसा की झलक

तब एक दिन तहलका मच गया। चीनियों को पता भी न चला और जापानी सेना ने नगर में प्रवेश कर दिया। चाई घबडाई हुयी डरी डरी सी बाहर आई–

सहसा घाँय....

चाई का पिता धराशायी होगया था। वह पागल दौडी दौडी उनके निकट गयी। वे पृथ्वी पर तड़प रहे थे। गोली बगल में प्रवेश कर शरीर को छेदती बाहर निकल गयी थी। घाव से खून की धारा बह रही थी। उनके मुखपर पीलापन छा गया था। चाई ने पिता

को गोद में उठा लिया और फूट फूटकर रोने लगी।

इसी समय एक जापानी अफसर आगे आया। सिपाहियों ने उसके लिये रास्ता छोड दिया था। जनता ने अस्फुट, कुछ दबे दबे, कुछ डरे डरे, स्वर से कहा-जनरल याको।

जनरल ने गिरे हुए व्यक्ति को देखा और चौक उठे "हे भगवान, यह मैंने क्या किया! क्या किया मैंने! मैंने तो जनरल– को समझ गोली चलाई थी। यह बेगुनाह कैसे मरा" याको का कण कण मानो पश्चाताप कर रहा था

इसी समय चाई के पिता के ओंठ जैसे हिलने लगे ओर सुना लोगोंने पा--नी--

जनरल स्वयं पानी लेने चले गये।

मानो वृद्ध ने उनको देखा और पुत्री को इशारा किया। सिसकते हुये चाई ने उनके मुख के पास कान लगा कर सुना

मा-न-व-ता-के-श-त्रु-ब-द-ला

यह कहते कहते उनका सिर लुढक गया और उनके प्राण पखेरू उड गये–

जनरल ने पानी भरा गिलास चाई को दिया तो उसको उसने उन्हीं के मुंहपर दे मारा। फिर कुछ सिसककर बोली, "निर्दयी. पहले तो उन्हें गोली का शिकार बना दिया, अब पानी पिलाने आया है। पिता की हत्या तो कर ही दी, अब पुत्री को भी मार अपनी प्यास बुझा"

"कुमारीजी मुझे क्षमा कीजिये, क्षमा। अनजाने ही में मुझसे यह भूल होगयी..." जनरल याको व्याकुल स्वर में बोले–

दांत कटकटाते हुये चाई नें उत्तर दिया, "दुष्ट तुमको मैं क्षमा करूंगी! यदि मेरा वश चले तो तुम्हें कच्चा ही चबा जाऊँ"

जनरल चाई के सम्मुख घुटनों के बल बैठ गया और अपनी प्रार्थनापूर्ण आंखे उसके मुखपर उठा बोला "आपके पिता को मैं नहीं बचा सका, यह कलंक जन्म भर बना रहेगा। तब पुत्री ही की सेवाकर रंचमात्र प्रायश्चित करूंगा। आपसे मेरी यही बिनती है कि मुझे इसका अवसर दीजिये।"

तब चाई ने उन आंखों में, जनरल की उन दया की भीख मांगती हुयी आंखों में कुछ देखा जो वह न देख सकी। हाथों से मुख को ढांककर बोली, "नहीं, यह असंभव है, मेरे लिये यह असंभव है–"

और वहीं बैठ फूट फूट कर रोने लगी। इसी के एक सप्ताह बाद जनरल चाई और वाई को ले जापान चले गये।

शोर उत्तर तर बढता ही जा रहा था, देशद्रोही जनरल याको का नाश हो, देशद्रोही जनरल........। लगा कि जनता की भीड ये नारे लगा रही है, और भीड बढती ही आ रही है। देखा चाई ने कल्पना में, उनके हाथों में पिस्तौल और छुरियाँ है, मुखपर हिंस्र पागलपन है, दांतों में कटकटाहट है–आंखों में खून की झलक है–चाई घबराकर उठी, अब और देर नहीं, अब और देर नहीं......

चाई और वाई जनरल के साथ जापान आगये थे और उन्होंने छुट्टी लेली थी तथा मेहमानों के साथ नवीन बंगले में बसेरा कर रहे थे। वह बंगला भी क्या था, छोटे से बगीचे से घिरा हुआ लकडी का एक मकान, बांस के ऊपर कई कोठरियां। उन्हीं में से एक जो सबसे सुन्दर था, जो सबसे हवादार था, जो सबसे सुसज्जित था, वही चाई का अपना कमरा था।

उसी कमरे में चाई बैठी रहती, मुलायम शय्यापर खिडकी के निकट। तब पिता का वह पीला पीला मृत्यु की छाया गिरा हुआ मुख उसके आंखों के सामने से गुजर जाता। कान उसके वही शब्द सुनने लगते– मानवता के शत्रु से बदला......। जनरल के विरुद्ध वह क्रोध से भर जाती। आंखें उसकी जलने लगती। चिल्ला पडती वह-जनरल तुम्हीं हो, तुम्हीं हो वह मानवता के शत्रु– तुम्हें इसका फल भोगना पडेगा, भोगना पडेगा, भोगना पडेगा मेरे हाथों से–

परन्तु जनरल, वह जनरल तो उसके सामने कुछ खोया खोया सा आता है, कुछ भूलाभूला सा आता है और अपनी फीकी आंखों से कुछ कहना चाहकर भी नहीं कह पाता।

तब एक दिन वह बोला, "मै जानता हूं चाई तुम मेरी बात न मानोगी। कैसे स्वीकार कर सकती हो तुम जब तुम्हारे देशपर हम इतना जुल्म कर रहे हैं। पर तब भी मै कहे बिना न रहूंगा कि यह जापान और चीन की झूठी भावना है। झूठा है यह कथन कि मैं

जापानी हूं इसलिये प्रत्येक चीनी मेरा शत्रु है। मिथ्या है यह बात कि तुम चीनी हो इसलिये प्रत्येक जापानी से प्रतिशोध लेना तुम्हारा कर्तव्य है। आखिर क्या है यह चीन अथवा जापान ? स्त्री पुरुषों का समूह ही तो है। वैसे ही स्त्री पुरुष चीन में भी हैं और जापान में भी। फिर यह भिन्नता क्यों। मैं तो कहता हूं मैं जापानी हूं तो क्या हुआ, मेरी दृष्टि में तो तुम वैसी ही हो जैसी और जापानी लडकियां और सच तो यह है कि ......" जनरल कहने जा रहे थे कि तुम तो मेरी दृष्टि में संपूर्ण जापानीं लडकियों से बढ़कर हो परन्तु उनको जबान लटपटा गई और वे हतबुद्धि अवाक खडे रहे–

तब सहसा चाई के अन्दर ऐसे भाव का उदय हुआ जो उस क्रोध के विपरीत था जो उसने अबतक जनरल के लिये पाला था। इसी से उसकी खीझ बढ गयी।

भडक पडी वह, "नहीं जनरल, मैं आपकी बात नहीं मान सकती। आप हमारे शत्रु हैं जापानी हमारे शत्रु हैं आप मानवता के शत्रु हैं। आप से हमारा केवल सम्बन्ध होसकता है घृणा का, द्वेष का, प्रतिशोध का"

तब जनरल वहां खडा नहीं रह सका. द्रुतगति से कदम रखता चला गया और चाई का मन न जाने कैसा कैसा हो उठा उसी जनरल के लिए।

संध्या का समय था। मंद मंद बयार बह रह थी, पंछी चहचहा रहे थे। इसी समय चाई बगीचे में आई और ध्यानमग्न एक वृक्ष की जड़ पर बैठ गई।

जनरल भी उसी के पीछे पीछे आया था, परन्तु उसकी हिम्मत न पडी थी कि चाई के निकट जाय। फिर उसने हिम्मत की और चाई के साम एकाएक खडा हो गया। और चाई ने बिकल नयनों से देखा– जनरल के मुख पर पीडा की स्पष्ट छाप है। आंखों में वेदना घर करती जा रही है। जनरल, बोला–'चाई यदि तुम अपने हृदय में जापानियों के विरुद्ध क्रोध और प्रतिशोध की भावना को पालो तो मैं तुम्हें दोष न दूंगा, परन्तु क्या यह अच्छा न होगा कि हम भूल जायें कि हम चीनी या जापानी हैं। हमने जो यह चीन और जापान नामधारी दैत्यों का सृजन किया है वह मानवता को खाये जा रहा है। क्या यह उचित नही हैं कि हम इससे ऊपर उठ जांय, और हम मानव होजांय। मेरा मतलब यह है कि यदि तुम सहयोग दो तो हमारे लिये यह असंभव नहीं है'

चाई को लगा कि यदि उसने जनरल की तरफ देखा तो पिघल जायगी। तभी उसपर से मुख फेर अपनी आवाज को उग्र बना बोली– 'कितनी बार कहूँ आपसे कि मैं आपकी शत्रु हूँ, जापान की शत्रु हूँ। तुम हमारे देशपर अग्निवर्षा कर रहे हो, हमारी सजला सफला भूमि को मरुस्थल बना रहे हो, हमारी बहिनों का सतीत्व लूट रहे हो, हमारे बच्चों को कत्ल कर रहे हो, फिर भी तुम कहते हो क्षमा करने के लिये। यह असंभव है, असंभव है। मेरा वश चलता तो तुम्हारे जापान में आग लगा देती, आग'

जनरल ने फिर प्रार्थना की। अबकी उसका स्वर वेदना से ओत प्रोत था।

'तुम एक बार मेरे प्रस्ताव पर खूब विचार करो चाई। इस उद्देश्य से मैं एक संघ की स्थापना कर रहा हूँ। हमारे संघ के सदस्य जापानी नहीं होंगे, चीनी नही होंगे, वे मनुष्य होंगे। हम प्रयत्न करेंगे इस रक्तपात को बन्द करने का। हम प्रतिपादन करेंगे इस बिचार को कि मनुष्य चीनी अथवा जापानी नहीं हैं– मानव है– इसलिये भाई है- इसलिये उनका आपस का संबन्ध प्रेम का है, सहानुभूति का है, सेवा का है-'

जनरल के मुख से निकली वाणी की झंकार ने चाई के कलेजे को हिला दिया। उसे लगा......

'नहीं नहीं जनरल आप यहाँ से जाइये। मैं आपकी बात नहीं सुनना चाहती, नहीं सुनना चाहती, हर्गिज नहीं सुनना चाहती' और चाई ने अपने कानों में अँगुली डाल ली तथा आँखों को बन्द कर वहाँ से भगी परन्तु कमरे में पहुँची तो उसका मन विषण्ण होगया था और दिल भारी हो उठा था उसी जनरल के लिये –

और जनरल, रातें उनकी जागतें बीतती हैं। कमरें में चक्कर लगा लगाकर बार बार यही दोहराते है, आज कह दूंगा, आज कह दूंगा–

–परन्तु दिन के प्रकाश में हिम्मत जवाब देती है–

उस दिन जब जनरल चाई के कमरे में आया तो उसका मुख पीला पड गया था, आंखो में घनीभूत पीडा ने स्थान बना लिया था, देह में शिथिलता आगयी थी, देखा यह चाई ने और उसका हृदय चीत्कार कर उठा–

जनरल बोले "चाई, हमारा काम शुरू होगया है।

में देखता हूँ कि जापान में भी बहुत से लोग मेरे विचारों से सहमत हैं। प्रतीकस्वरूप मैंने युद्धविभाग से संबन्ध-विच्छेद करने का निश्चय कर लिया है। इस्तीफे की चिठ्ठी भी भेज दी है"

तब चाई ने उत्तर दिया, 'जनरल मुझसे मत कहो ये सब बातें। मै तुमसे बताय देती हूँ, तुम्हारे भुलावे में नहीं आ सकती। मैं तुम लोगों की शत्रु हूँ, शत्रु"

और जनरल ने कहा, उसकी आवाज आवेश से काँप रही थी, वह घुटनों के बल चाई के सामने बैठ गया था, उसके शब्दों में विनीत पीडा थी, "तुमसे यह सब बतलाने का एक खास कारण है चाई। जिस आदर्श को मैंने जीवन का ध्येय बनाया है, उसके लिये अपने रक्त का प्रत्येक बूंद लगा दूंगा। तन मन धन निछावर कर दूंगा। परन्तु आज मुझको अपने में एक रिक्त स्थान दिखता है, एक कमजोरी लगती है। मुझे एक प्रकाश चाहिये– जो मेरे पथ को प्रकाशित कर सके– जो जीवन में उत्साह भर दे, जो विजय में मेरी प्रसन्नता में हिस्सा बँटावे, वह तुम हो चाई, तुम हो, केवल तुम्हीं वह कर सकती हो।"

और चाई को लगा उसके पैर वहींपर जम गये हैं, उसकी आंखें खुलकर, भरकर अनिमेष जनरल को देख रहीं हैं। तथा जनरल ने देखा इन आंखों में प्रेम लबालब उछाल मार रहा है।

चाई जनरल के आलिंगन में सिसक सिसककर रो रही थी, तथा जनरल ने उससे विवाह की स्वीकृति ले ली थी–

शोर और निकट आता जा रहा था, जनता की भीड बढती ही जा रही थी। चीनी लडकी से विवाह कर यह दुष्ट देशद्रोही होगया है, देश के शत्रुओं से मिल गया है, हम इसका खून पियेंगे।

चाई उठी। अब अधिक समय नहीं है। उसने वाई को निकट बुलाया तथा उसे अपना जनाना वस्त्र देकर कहा जल्दी पहिन आओ–

उस दिन जब चाई जनरल की बाहुओंसे छुटष्कारा पाकर कमरे में गयी तो उसे लगा कि पिता का वही पीला पीला मुख उसे देख व्यंग की हंसी हंस रहा है। मानो कह रहा हो, वही हो तुम चाई, वही हो। मानवता के शत्रु से लेलिया बदला, लेलिया ? चाई रो पडी थी। क्यों वह अपने को अधिकार में नहीं रख सकी ? क्यों उसने अपने को जनरल के बाहुपाश में बंधने दिया ? क्यों उसने विवाह की स्वीकृति देदी ? इस पर विचार करना होगा। कोई उपाय सोच ही निकालना होगा। तब उसे याद आई जहर की उस पुडिया की जो बहुत दिनों से उसने जनरल के लिये छिपाकर रक्खी थी–

और जनरल वह तो जैसे आकाश के तारों के बीच में रहता है। काल्पनिक चाई को पार्श्व में बिठा वह कितने मधुर सपनों का निर्माण किया करता है और उनके माधुर्य से स्वयं विह्वल हो जाता है

तब एक दिन वस्त्रों का एक पुलिंदा लेकर चाई के निकट पहुंचा और उसके सौन्दर्य से जैसे मुग्ध हो बोला-तुम्हें देख अभिलाषा जगती है चाई कि बादशाह हो जाऊँ। तब साम्राज्य के सम्पूर्ण हीरे जवाहिरात से तुम्हारे इस देह को जगमगा देता। फिर कपडे उसके सामने खोल बोला "देखो इसमें से जो तुम्हें पसन्द हो ले लो'

अवहेलनापूर्ण दृष्टि उनपर डाल उत्तर दिया चाई ने, ''जनरल मुझे यह सब नहीं चाहिये। विवाह की स्वीकृति भी मेरी भूल थी। मुझे बेबस जान तुमने जबर्दस्ती मुझसे मंजूरी ले ली। यह न भूलना कि मै तुम्हारी शत्रु हूँ''

फीके उत्साह से जनरल वहां से चला गया था और चाई के मन में उसी जनरल के लिये रह रहकर रुलाई के उफान उठने लगे थे।

फिर एक दिन पहुंचा जनरल चाई के पास। आज भावी वधु से बातें करने के लिये वह व्याकुल था। विव्हल स्वर से अपने अंग अँग में फूली हुयी प्रसन्नता को दबाता हुआ वह बोला-" मैं जानता था चाई मेरा दृढविश्वास था कि मैं तुम्हारे हृदय को पिघला सकूंगा। तुम्हारा क्रोध काफूर होजायगा और तुम भी मुझे वैसे ही प्यार करोगी जैसे मैं तुम्हें करता हूँ।

चाई बोली,– "जनरल किसने तुम्हें कहा कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। यह झूठ है। मेरे हृदय में तो तुम्हारे लिये केवल घृणा है घृणा

व्याकुल जनरल वहाँ से चला गया था और चाई की आंखों से उसी जनरल के लिये आंसू टपक पडे थे।

फिर आगया विवाह का दिन। चाई ने रातभर जगकर निश्चय किया है, प्रतीज्ञा की है कि वह जनरल की जान लेकर रहेगी। जब प्रातःकाल वह सज धज कर आई तो वह चुप थी। उसका चेहरा पीला पड गया था। उस पीले चेहरे ने उन रंगीन वस्त्रों के अंदर उसका सौन्दर्य दुगनाकर दिया था। जनरल ने देखा तो मुग्ध हो गया

मेहमान आने शुरू हो गये थे। जनरल का कम्पाउंड गाडियों से भर गया था। बाजा रह रहकर बज उठता था। बिजली के प्रकाश ने दिन का उजाला ला दिया था–

चाई जनरल के लिये शर्बत बनाने लगी। उसका चेहरा सफेद पड गया था। कांपते हाथों से उसने जहर की पुडिया निकाली......और..... सहसा बाई ने एक पत्र लाकर दिया। चाई ने एक ही दृष्टि में उसे पढ़ डाला। फिर वह रो पडी और दौडी दौडी जनरल के गले से लिपट कर बोली, जनरल तुम इस्तीफा लौटा लो इस्तीफा; देखते नहीं हो इसमें तुम्हारे जीवन का खतरा है।"

जनरल ने चाई के हाथ से पत्र लेकर पढा। युद्ध विभाग के सेक्रेटरी ने लिखा था कि जनरल के इस्तीफे से वहां बडी सनसनी फैल गयी है। सरकार को जनरल की देशभक्ति पर सन्देह है। मामला खुफिया विभाग के सुपुर्द कर दिया गया है।

उसी रात को जनरल का विवाह चाई से होगया। जहर की पुडिया तो घबडाहट में न जाने कहाँ गिर गयी थी

और शोर प्रतिपल बढता ही जा रहा था। प्रत्येंक मनुष्य मानो प्रतिशोध की भावना से पागल हो रहा था। कोई कहता हम उस देशद्रोही को गोली का निशाना बनायेंगे। कोई कहता उसे कटारी से काट काट कुत्तों के सामने फेंक देंगे। और पागल जनता, मदमत्त जनता, हुंकार करती बढी चली आ रही थी।

बाई जनाना वस्त्र पहिनकर आया तो मानो जनाना ही बन गया। चाई ने उसे देखा तो मानो संतुष्ट होगयी। फिर मेजपर बैठ वह पति को पत्र लिखने लगी–

और चाई, जब वह विवाह के बाद पति के गोद में सिमट कर सोई थी तो उसे लगा था उसके पिता का वही मुख अट्टहास कर रहा है। वह मानवता के शत्रु के आलिंगन में! वह जैसे चौंक पडी थी। जनरल देखते ही रह गये, चकित और अवाक्-। वह रात ही पति के बिस्तर से उठकर चली गयी थी। कमरे में जा वह खूब रोई थी। नहीं नहीं वह तो जनरल की शत्रु है– वह जनरल जो मानवता का शत्रु है। उसे कुछ करना ही होगा, करना ही होगा, तथा उसे याद आगया था पिस्तौल का-।

और जनरल, पागल, विकल उन्मत्त जनरल। रह रहकर उसकी इच्छा होती है चाई को सीने से चिपका ले, उसके अधरों पर चुम्बनों की बौछार कर दे। इसी उद्देश्य से वह बार बार चाई के निकट जाता है।

परन्तु चाई बोली, "जनरल, भूल जाओ उसको। वह हमारा विवाह भी एक धोखा था। नहीं तो मैं भला तुम्हारी पत्नी हो सकती हूँ, मैं? मैं तो तुम्हारी शत्रु हूँ। मैं तो तुम्हारे खून की प्यासी हूँ!"

जनरल व्याकुल लौट गया था, और चाई किवाड बन्द कर जनरल के लियें रोने लगी और रोती रही।

तब फिर एक दिन जनरल चाई के पास आया। आज वह अपने साथ दो पासपोर्ट लाया था। चाई और बाई को चीन चले जाना चाहिये। सरकार को उनके संबंधका पता लग गया है। उनका जीवन खतरे में है।

पासपोर्ट पत्नी को दे जनरल, जिसका प्रेम चाई की अवहेलना से और उबल पडा है, बोला,-"चाई मेरी बडी इच्छा है कि एक दिन तुम जापानी वस्त्र पहिनो, और मैं चीनी। यह प्रतीक होगा चीन और जापान के मानवतावाले संबन्ध का। इतनी मेरी बात मानलो चाई, मेरी प्यारी चाई।"

चाई बोली, "मैंनें तुमसे कह दिया जनरल मैं तुम्हारी बातों में नहीं आसकती। हमारा वैवाहिक संबन्ध टूट गया है। तुम मानवता के शत्रु हो, मैं तुम्हारी शत्रु हूं। मेरा तो एक ही कर्तव्य है तुम्हारी हत्या कर देना।

जनरल चला गया और चाई उसके लिये फूटफूट कर रोई थी, तथा रो रोकर उसने अपना तकिया भिगो डाला था।

फिर चाई के चीन जाने का दिन आगया। रातभर चाई रोती रही है अपने उस निश्चय पर कि कल जनरल की पिस्तौल से हत्या करूँगी। सबेरे जब वह

बिस्तर से उठी तो उसका चेहरा पीला है। आंखे बीर बहूटी जैसी हो गई हैं, तथा गालों पर आंसुओं के धब्बे पड गये हैं।

चाई सोचती है आज तो जनरल का अन्तिम दिन है, फिर क्यों न उसकी इच्छा को पूरो करदूं। वह रह रहकर जनरल के गले से लिपट जाती है और उसके ओठों को चूम लेती है। जनरल देखता है, उसकी आंखो में बिह्वलता है, व्याकुलता है और प्रेम छलक रहा है

संध्या को जनरल वस्त्र पहिनकर तय्यार हुआ है। वह चाई से बोला-"मैं बन्दरगाह पर चल रहा हूं। जहाज पर तुम्हारे लिये सब प्रबन्ध कर दूंगा। तुम थोडी देर बाद वाई को ले चली आना।"

तब चाई प्रार्थना के स्वर में उससे बोली-"जनरल मेरी एक इच्छा है। आज तुम चीनी वस्त्र पहिनो और मैं जापानी। मैं तुम्हें चीनी वस्त्र में देखना चाहती हूँ'।

जब जनरल चीनी वस्त्र पहिन कर आया तो वाई नें देखा वह बिल्कुल चींनो लगता है, बिल्कुल चीनी। चाई उससे लिपट गयी और उसने जनरल के मुख पर चुम्बनों की भरमार लगा दी। और जनरल ने देखा वह अभी रोकर आई है, उसकी आंखे लाल हैं–

जनरल दरवाजें की तरफ चले। चाई नें पिस्तोल निकाला और जनरल पर निशाना साधा। उसकी आंखे ज्योतिहीन थी, उसका चेहरा सफेद होगया था–

थोडा.....

तभी शोर हुआ 'देशद्रोहो जनरल याको का नाश हो! देशद्रोही जनरल याको का नाश हो!! देशद्रोही जनरल याको का नाश हो!!!

चाई स्तब्ध हो गई उसका हाथ गिर गया। तब तक जनरल चले गये थे।

चाई बहुत देर तक वहीं खडी रही। फिर सहसा उसके मन में एक बिचार उठा। उसकी आँखें चमक उठी–

भीड उसके मकान के सामने आगयी थी। स्त्रियाँ भी थी और पुरुष भी और सभी जैसे हिंसक पशु के समान पागल हो गये थे। वे जनरल को चाहते थें, इसकी धज्जी धज्जी उडा देने के लिये-

चाई ने पत्र में लिखा

प्रिय,

तुमको मानवता का शत्रु अभी तक समझती आई। मेरा दुर्भाग्य है कि उसको प्यार किया जिसे गोली मार देना मेरा कर्त्तव्य था। परन्तु आज समझ सकी हूँ कि यह मेरी भूल थी। तुमतो मानवता के मित्र हो क्योंकि उसके लियें युद्ध कर रहे हो। शत्रु तो मेरे अन्दर वह प्रतिशोध की भावना है जो तुम्हारी हत्या करने को प्रेरित करती है। आज रात्रि को मैंने निश्चित किया कि मानवता के शत्रु का अन्त करूँगी। इस समय उस निश्चय को कार्यरूप में परिणत करूँगी। चीन जाकर तुम अपने कार्य को चलाना। मेरे लिये दुःख न करना, मरकर ही मैं तुम्हे पाऊँगी'

तुम्हारी

चाई ने स्त्री वेष में सुसज्जित भाई को पास पोटं दिया। यह भी सिखाया उसे कि जहाज छूटने के समय जनरल से जाकर मिले तथा उसका हाथ खींच जहाज में बैठ जाय। जनरल उसे चाई समझ साथ ले जायेंगे।

वाई को पीछे के रास्ते से बाहर निकाल चाई सामनें की खिडकी पर आई। बोली वह –'क्या चाहते हो'

नीचे से उत्तर आया 'हमें जनरल का खून चाहिये। जनरल देशद्रोही हैं। वह शत्रु से मिल गया है। हम उसकी हत्या करेगें'

'यह असंभव है, तुम उन्हें नहीं पासकते' चाई नें दृढ स्वर से उत्तर दिया

'यह तो उसकी रखेली चीनी है। हम इसका खून पीयेंगें' नीचें से चीत्कार हुयी और दर्वाजे पर चोट पडने लगी।

दर्वाजा नहीं खुल सका। फिर चाई का स्वर सुनाई पडा,

'आग लगादो, आग। दुष्ट अपनी चीनी रखेली के साथ जलकर मर जायगा' कई आदमियों की एक साथ ही आवाज उठी

फौरन ही मकान के नीचे पेट्रोल छिडक जनता ने आग लगा दी। लकडी का मकान घू घू जलनें लगा।

इसी समय बन्दरगाह से जहाज छूटने की सीटी सुनाई पडी

आग की लपटें घू घू जल रही थी और चाई की तरफ बढ़ती ही आ रही थी। तथा चाई आँखे बन्दकर देख रही थी–जहाज चला जा रहा है और उसी में बैठा है उसका प्यारा जनरल, चीन में अपने उद्देश्य को फैलाने के लिये दृढ़ निश्चय। पार्श्व में खड़े हैं उसके पिता और प्रसन्नता तथा सन्तोषपूर्ण दृष्टि चाई पर डाल रहे हैं–

पेटभर भोजन करिये

गेसहर (गोलियाँ) गेस का चढ़ना, पैदा होना, मंदाग्नि बादी, वायु, पेट में पवन का घंचवाना, भूख की कमी, दिमाग मे अशांति हो जाना, घबराहट, थकावट, हृदय की कमजोरी, पल्पीटेशन ब्लडप्रेसर, दस्त की रुकावट, नींद की कमी वगैरह को दूर कर **दस्त हमेशा साफ और खुलासा लाती हैं।** अन्न पाचन करके कडाके की भूख लगती है, शरीर में रुधिर बढ़ाकर शक्ति प्रदान करती है, लिवर आंत, प्लीहा और पेट की हर एक शिकायत के लिए, अद्वितीय दवा है। छोटी शीशी५० गोली की. रु० १।।) बडी शीशी १५० गोली ४) रु०

पुरुषत्व-प्राप्ति के लिए

कौस्तुभप्रभा याकुति

(सुनहरी गोलियाँ)

पुरुषत्वहीन पुरुषों के लिए यह दवा उत्तमोत्तम उपाय है। किसी भी कारण से आई हुई निर्बलता को दूर कर पुरुषत्व प्रदान करती है। रक्त वीर्य की वृद्धि कर पूर्ण यौवन प्राप्त होता है। यह महान बाजीकरण, धातु-पौष्टिक दवा है, की० फी शीशी रु. ७।।)

गुप्त भाग के लिये:—

कौ. प्र. तेल (तिल्ल) पुरुष के गुप्त भाग में आई हुई शिथिलता, वक्रता, छोटापन, नपुंसकता, कमजोरी नशों का ढीलापन आदि को दूर कर गुप्त भाग में विद्युतशक्ति पैदा कर संसारसुख में अपूर्व आनंद देता है। की. ७।।) रू.

कामविलास (गोलियां) वीर्य ज्यादा अरसा तक रोककर युवकों और वृद्धों को संसारसुख में सच्चा आनंद देती हैं की० रु० १।।) तीन शीशी की ४।)पोस्टेज अलग

मासिक रुकावट !

रजोलीना (पिल्स) किसी भी कारण से बंद पडे हुए मासिक धर्म को बिना तकलीफ फिर जारी कर नियमित करती है। ऋतु दोषों को दूर करती है, मासिक लानेवाली वस्तुओं की बनावट है, कीमत शीशी ४), रु०। तुरन्त फायदे के लिए तेज बनावट ६) रु० बी. पी. खर्च अलग.

गर्भांकुश (पिल्स) दवा के सेवन से हमेशा के लिए गर्भ नहीं रहता, मासिक धर्म नियमित जारी रहता है, गर्भ निरोध होता है, हानिरहित है, संतति नियमन के लिए उत्तमोत्तम उपाय है। की० प्रति शीशी ४) रु० बी. पी खर्च अलग.

दिव्यांगना गोलियाँ, स्त्रियों के लिये खास शक्तिवर्धक दवा है, प्रदर, रक्त-प्रदर, गर्भ न रहना, गर्भपात होजाना इत्यादि दूर होकर शरीर तन्दुरुस्त बनता है। की० रु० १।) तीन शीशी ३।।)

आँखों की तमाम शिकायतों के लिये शर्तिया

न० प्र० सुरमा सच्चे मोतियों के इस सुरमे से मोतियाबिंद फूला, खील, जाला, शार्ट साईट short sight, सुर्खी, रतौंधी, पानी निकलना वगैरह दूर होकर रोशनी बढ़ती है। फी शीशी का रु० १।) तथा रु० २।।)

बहिरापन

कान में से पीप-मवाद निकलना, चस्काशूल होना पर्दे में तकलीफ, सीं-सीं आवाज होना, बधिरता बहिरापन इत्यादि कान के भयंकर रोगों के लिए

'रसिक' कर्ण बिन्दु (इयर ड्रोप्स) इस्तेमाल करें। कीमत शीशी रु. १।।) तीन शीशी रु. ४।) तीन शीशी के सेवन से स्पष्ट सुनाई देता है।

☞ वी० पी० से मंगाने का पता— **दुग्धानुपान फार्मेसी** प्र० ३ जामनगर (काठियावाड़)

स्टोकिस्टो:—नागपुर—मुकुन्दराय ब्रदर्स महाल रोड.
अकोला—एन. बी. वोरा एण्ड सन्स, ताजनापेठ
(झण्डू एजेन्ट)
नागपुर—अनन्तराय ब्रदर्स किराना ओली इतबारी
जबलपुर—दिगंबर जनरल स्टोर्स जवाहिरगंज
खण्डवा—निमाड स्टोर्स ली०, बम्बई बाजार
सीवनी—गरीबदास धरमचन्द पोतदार
आमगांव—भाई कुंजीलाल ठाकुरदास

गुप्तधन

क्या है ! एवं कैसे प्राप्त करें। हरजनोपयोगी पुस्तक मुफ्त मंगवाकर पढ़ें।
लिखें—बी० शामकी कुं० २३ जामनगर

दो गीत

मिटते स्वप्न

लिख दे सुधि के चित्र हृदयपर सपनों के ओ मौन-चितेरे!
गागर भरने की बेला थी,
गुमसुम मैं पनघट पर आई!
विहँस-विहँस दो प्राण मिलेपर,
कहां सो गई वह अंगडाई ?
तबसे पथपर आंख बिछाती, बेसुध पगली सांझ-सबेरे।

पुरवाई की मंद झोंकपर
अरमानों की सजी रात थी।
राका की डोरों पर उतरी,
प्रथम मिलन की मधुर बात थी।
झूम लहर की परछाईं पर थिरक रहे वे गायन मेरे।

दूर चले जब किन्तु सजनि वे
उनघडियों के हास सँजोये।
बुझती जाती याद किसी की,
चाहे लाख नयन ये रोये।
फिरसे जरा जुटा दो तो, जो जाते मन के गान बिखेरे।

विदा-गीत

इन सपनों के कोई भी विश्वास दिए जाओ, जाते हो।
चलकर चूम किरण का मुख लूं,
मन में अब वह बात नहीं है।
मिले बहुत, पर आज तुम्हीं से
कैसी मोल विवशता ली है?
परदेसी, तब दर्द कहूँ क्या, तुम अधरों में मुसकाते हो।

जग भावुकता में बह-बहकर
अन्तर के संगीत बजाता।
मिलकर भी मैं आज बिदामें
राग हृदय के सुना न पाता।
याद भूलते, क्यों तुम सोये अरमानों को सहलाते हो।

नयनों के सब धन बिखेर कर
प्राणों के स्वर पाल रहा हूँ।
दीख न पडता, तरी किधर को
चली, और मैं आज कहां हूँ?
रहने दो, कुछ हँसी मुझे भी, तुम लहरों से वह लाते हो!

— 'नवल'

महात्मा गांधी की
शिक्षा योजना के कुछ तत्व

श्री रामप्रसाद भटनागर

(उच्च कोटि के सभी दार्शनिक जीवन और समाज को समग्र रुप में देखते तथा उनके संबंध में अपनी विवेचना करते आये हैं। शिक्षा-योजना उनके दार्शनिक तत्वों का प्रमुख आधार रही है। अरि-स्टाटेल ने भी अपनी शिक्षा योजना प्रस्तुत की थी। टालसटॉय तथा रोम्यारोलां के भी शिक्षा संबंधी कुछ विचार थे। उसी प्रकार महात्मा गांधी ने अपनी एक शिक्षा योजना विश्व को दी। उस शिक्षा योजना के प्रमुख तत्व क्या थे? वह श्री रामप्रसादजी भटनागर के इस विवेचनापूर्ण लेख में पढ़िये।)

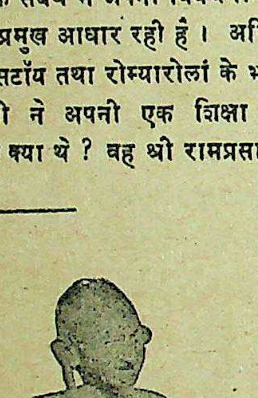

युग पुरुष महात्मा गांधी आज हमारे बीच नहीं हैं, पर उनकी अमर आत्मा आज भी हमारे पथों में ज्योति कण बिखरा रही है।

महात्मा गांधी ने युग के जिन वर्षों में जन्म लिया उस काल का भारतीय इतिहास उस संघर्ष की कहानी है जो अभी देश की राष्ट्रीयता के प्राणों में सो ही रहा था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पताका नीले आसमान में फहरा रही थी—निर्भय और बंधन मुक्त। पर १८५७ की क्रान्ति इतिहास के पन्नों को चुनौती दे चुकी थी। उसकी प्रतिक्रिया अब भी हवा के पंखों पर तैर रही थी। १८६१ के महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र ने देश की चेतना के तार को छू दिया और वह झनझना उठा। देशवासियों को लगा जैसे स्वप्न टूटा और प्रभात की बेला आई। उनके चरण उठ गये और देश की स्वाधीनता के पथ पर उन्होंने अपने पुण्यपर्व की ओर प्रस्थान किया। पर अभी वे लुक छिपकर ही चल रहे थे।

इसी समय महात्मा गांधी का २ अक्टूबर १८६८ को जन्म हुआ। जीवन का बाल्यकाल सुखों की गोद में बीता। शिक्षा-काल आंशिक भारतवर्ष में तथा आंशिक इंग्लैंड में कटा। यहीं से उनकी जीवनधारा ने अपने नवीन पथ की खोज आरम्भ की।

इंग्लैंड के वातावरण में रहते हुये उनकी आत्मा में एक महान शक्ति विद्रोह कर रही थी जो अपनी अभिव्यक्ति के लिये मार्ग खोज लेना चाहती थी। सम्भवतः इस आन्तरिक विद्रोह का कारण एक मनोवैज्ञानिक सत्य हो। सम्भवतः उनकी आत्म जो विश्व की प्रशंसा न पा सका हो, अपने में ही अभिमुख हो गया हो और अपने में ही जीवन के सत्य की खोज करने [illegible] अपने से बाहर गया हुआ आत्म जब

निराश होकर, चोट खाकर वापिस अपने में ही लौट आता है तब वह किसी ऊँचे सत्य का सहारा खोजकर उसी की आलोक–छाया में बाह्यजगत की क्रिया प्रतिक्रिया का विश्लेषण करता है। यही महात्मा गांधी के साथ भी हुआ।

जीवनके निम्नस्तर पर उनका आत्म संतुष्टि न पा सका। असन्तोष ने जगकर कहा "जो मुझे न मिल सका वह पाने की वस्तु भी तो नहीं है। जो कुछ विश्व करता है वह झूठ है। सत्य इससे ऊपर की वस्तु है।" बस फिर उनकी आंखों ने देखा मानवता के प्राणों में गहरा घाव हो गया है, विश्वभर में अशांति के देशदूत किसी भीषण आपद-काल की घोषणा कर रहे हैं। हिंसा बर्बर हो उठी है, प्रत्येक देश दुखी है, प्रत्येक मानव कराह रहा है। दृश्यजगत की मोटी मोटी रेखाओं के इस रेखाचित्र ने उन्हें किसी स्वप्न की ओर उद्बुद्ध किया। और वह स्वप्न था अपने देश की राष्ट्रीयता साम्राज्यवाद के बंधनों से मुक्त हो, देशवासी स्वतन्त्र हों, सुखी हों। पर यह महात्मा गांधी के स्वप्न की केवल आधारभूमि, केवल भूमिका ही थी। उनका स्वप्न तो सम्पूर्ण मानव जीवन का स्वप्न था। उसको भारतीय, जर्मनी, रूसी, फ्रांसीसी, अमरीकी इत्यादि रेखाएँ टुकडों में नहीं बांट सकती थीं। हां, उस स्वप्न को सत्य होते हुये पहिले वह भारतवर्ष की भूमिपर ही देखना चाहते थे। और किसी देश के संबंध में उन्हे अधिकार ही क्या था?

महात्मा गांधी ने मानवता का जो चित्र अपनी आंखों के सामने देखा उसकी प्रतिक्रिया उनके अन्तर की तीव्रतम पीडा में बदली। पीडित चेतना ने पूर्ण मानव की कल्पना की– एक स्वप्न देखा कि मानव जीवन पूर्ण है पर दृश्य जगत के प्रलोभन, आकर्षण तथा प्रकृत जीवन की निम्नस्तर की कामनायें, अभाव तथा वासनायें उसे पूर्णत्व की ओर नहीं बढने देती।

महात्मा गाँधी की कल्पना में राष्ट्र तथा विश्व का एक आदर्श चित्र है जिसकी प्रत्येक रेखा स्पष्ट और सीधी है और जिसका प्रत्येक रंग चमकीला है। उनके उस आदर्श राज्य में समाज उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचता है, जहाँ पहुँचकर दुख, हिंसा तथा जीवन के अभाव मिट जाते हैं और जहाँ पारस्परिक झगडे, कलह तथा ईर्षा की काली छाया प्रकाश की किरणों में घुल जाती है, पर ऐसे आदर्श समाज अथवा आदर्श राज्य की स्थापना के लिये व्यक्ति ही तो समाज की इकाई है। अतः महात्मा गाँधी का स्वप्न एक ओर समाज के सामूहिक जीवन की सीमा को छूता है और दूसरी ओर व्यक्ति के व्यक्तित्व को। यदि व्यक्ति का जीवन पूर्ण है तो समाज भी आदर्श और पूर्ण हो सकता है।

पर व्यक्ति किस प्रकार आदर्श जीवन तथा पूर्णत्व को प्राप्त करे? यह महात्मा गाँधी के दर्शन की प्रमुख समस्या है तथा इनकी शिक्षा की नवीन योजना की आधार शिला है। अपने इस प्रश्न का उत्तर उन्हें तर्क की इन मान्यताओं से मिलता है–

१ प्रत्येक व्यक्ति प्रकृत जीवन की निम्नश्रेणी की प्रेरणाओं तथा वासनाओं से ऊपर उठने का प्रयास करे।

२ आदर्शात्मक जीवन की पूर्णता की ओर सतत बढता रहे।

३ प्रत्येक व्यक्ति में आचरण की शुद्धि बौद्धिक विकास तथा व्यवहार की सरलता का सौंदर्य-सामजस्य हो।

४ प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में दया, सहानुभूति, कर्तव्य निष्ठा, निस्वार्थता, सादगी और सहनशीलता का वास हो।

५ ईर्षा, द्वेष, घ्रणा, छल, कपट, स्वार्थ तथा व्यवहार की अस्वभाविकता समाज तथा व्यक्ति के हृदय को छू न सके।

तत्वदर्शी महात्मा गाँधी की इन रेखाओं में आदर्श जीवन का पूर्ण चित्र आ जाता है। यही जीवन की पूर्णता है जिसकी सीमा तक पहुँचना ही प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य होना चाहिये। पर जो साध्य है उसकी प्राप्ति के लिये साधन चाहिये और साधना की सफलता के लिये एक उपयुक्त वातावरण। महात्मा गाँधी सम्भवतः यह भली प्रकार जानते थे कि जब व्यक्ति एक शिशु के रूप में संसार में आता है तो उसके व्यवहार की भूमि केवल प्रवृत्तिमूलक प्रेरणा ही होती है। भूख, प्यास तथा दुख–दर्द ही सबसे पहिली अनुभूति है जो उसके रोने तथा भिन्न भिन्न प्रकार के व्यवहार का कारण बनती है। व्यक्ति के शैशवकाल का सारा व्यवहार शारीरिक स्तर पर होता है। बुद्धि

का विकास हो चुकने पर फिर वह भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा उनके भिन्न प्रकार के आकर्षणों में भी भेदभाव स्थापित कर लेता है और इस प्रकार उसके व्यवहार में भी परिवर्तन आता चला जाता है। सामाजिक चेतना का विकास हो चुकने पर उचित और अनुचित, शुभ और अशुभ में भी वह विभेद करने लगता है। इसी प्रकार वह जीवन की पूर्णता की ओर बढता है।

परन्तु जीवन के इस क्रमिक विकास में वातावरण का भी बहुत कुछ हाथ रहता है। अतः पूर्ण सफलता के लिये उपयुक्त वातावरण भी चाहिये। मानवता के पूर्ण विकास के लिये वातावरण तथा शिक्षा दोनों का ही उपयुक्त सामंजस्य अनिवार्य है। महात्मा गांधी के दर्शन में दोनों का ही महत्व दीख पडता है। पर आत्मा का विकास, आत्म संयम तथा आत्मिक बल वातावरण से सदैव ऊपर है। जीवन की पूर्णता बुद्धि के विकास तथा आत्मबल की वृद्धि पर अवलम्बित है और आत्मबल की वृद्धि, आत्म संयम तथा बुद्धि का विकास शिक्षा द्वारा ही हो सकता है। इस प्रकार महात्मा गांधी के शास्त्र में शिक्षा एक बहुत ऊंचे आदर्श, एक महान साध्य की साधना के पथ में साधन मात्र ही है।

आदर्श वातावरण की स्थापना के लियें उन्होंने 'खादी', 'स्वदेशी', 'चर्खा', 'स्वयंपूर्णता', कुटीर उद्योग और अहिंसा आदि योजनाओं का सहारा लिया तथा दूसरी ओर शिक्षा की नवीन प्रणाली को अपनाया।

देश का आर्थिक जीवन ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कडियों में जकडा हुआ था। महात्मा गाँधी पहिले शृंखला की उन कडियों को काटना चाहते थे। उसके पश्चात् उनका दूसरा लक्ष्य मानसिक परतन्त्रता को दूर करके पूर्णतः भारतीय संस्कृति की पुनर्स्थापना करना था– एक ऐसी संस्कृति की स्थापना जो शरीर और आत्मा सब प्रकार से भारतीय हो और जो पूर्ण मानवता प्राप्त करने में प्रत्येक व्यक्ति को आगे बढा सके; जो जीवन की आध्यात्मिक भूमि पर ले जाकर खडा कर सके तथा जीवन में जो सत्य है, शिव है, सुन्दर है उसके दर्शन करा सके।

अपने इस उद्देश की पूर्ति के लिये उन्होंने कदम उठाया और १९२० में अहमदाबाद में गुजरात विश्वविद्यालय की स्थापना की। हिन्दु मुस्लिम धर्म इसके दो प्रमुख स्तम्भ थे। विश्वविद्यालय का ध्येय था देश की प्रान्तीय भाषाओं को सुरक्षित रखना तथा उनमें निहित देश की संस्कृति को पुनरुज्जीवित करना। यहां प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता थी तथा हिंदुस्थानी अनिवार्य विषय था। इस प्रकार महात्मा गांधी ने सर्वप्रथम गुजरात विश्वविद्यालय की स्थापना करके ऐसे स्थल का निर्माण किया जहां भिन्न भिन्न प्रातों की परम्परा तथा संस्कृति का सामंजस्य सुलभ हो सकता था।

दूसरा कदम उन्हें उच्च शिक्षालयों के नव संगठन की ओर ले गया। शिक्षित वर्ग तथा अशिक्षित वर्ग के बीच एक गहरी खाई थी। उसे वह भरना चाहते थे। शिक्षित वर्ग वाले केवल पुस्तकों का ही ज्ञान रखते थे और हाथ से काम करनेवाले, मेहनत मजदूरी करने वाले वर्ग से दूर रहते थे। उन्होंने नीचे से ऊपर तक की सब कक्षाओं की शिक्षा का केन्द्र हस्त कला कौशल को बनाने की योजना की जिससे यह दूरत्व मिट जाये; सभी हाथ से काम करें, तथा शिल्पकला और हस्त–कला–कौशल को श्रद्धा की दृष्टि से देखें।

अमरीकन दार्शनिक डीवी की शिक्षा योजना में भी हस्तकला–कौशल ही प्रमुख माध्यम है। डीवी के अनुसार अनुभव ही व्यक्ति की सम्पूर्ण शिक्षा की आधार शिला है। बालकों के रचनात्मक कार्य में ही उनकी बुद्धि तथा ज्ञान का रहस्य निहित है। जब कला में बालक कोई हस्तकला कौशल-कार्य करता है तो उस समय उसकी चिंतन-शक्ति तथा कार्य-शक्ति दोनों साथ साथ क्रियाशील होती है। दोनों के सन्धिस्थल पर बालक को जो अनुभूति होती है वह उसके मानसिक बौद्धिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक सब प्रकार के विकास में सहायक बनती है। डीवो के ये आधार तत्व महात्मा गाँधी की शिक्षा प्रणाली में भी मिलते हैं। परन्तु दोनों की पृष्ठभूमि भिन्न है। महात्मा गाँधी की संस्थापनायें आध्यात्मिक भूमिपर हुई हैं तथा डीवी का दृष्टिकोण समाज–सुधार की भावना से प्रेरित हुआ है। महात्मा गांधी के लिये समाज साधन है, साध्य नहीं। साध्य तो जीवन की पूर्णता है। लोक पक्ष में वह मानववादी है। पर मानववाद भी उनके महाप्रस्थान के पथ का संबल ही है। लक्ष्य तो उनका एक बहुत बडा सत्य है जो कबीर की इन पक्तियों में भी मिलता है–

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं,
सब अँधियारा मिट गया, दीपक रेखा माँहि ।।

महात्मा गाँधी आर्थिक शोषण के विनाश तथा जन साधारण के उद्धार में ही मानव जाति का कल्याण देखते हैं । पूंजीवाद उनके पथ के बीच स्थित एक बहुत ऊँचा पहाड है । यूरोप तथा अमरीका का पूंजीवाद उन्हें जीवन का महान अभिशाप सा दिख पडता है । अत: अपनी नवीन शिक्षा प्रणाली में वह इन सबसे मुक्ति पानेका साधन खोजते हैं । फलत: शिक्षा का ध्येय सर्व प्रथम शिल्प स्वावलम्बन हो जाता है । इस लक्ष्य की पूर्ति के फलस्वरूप ही हस्तकला कौशल को उनकी शिक्षा का केन्द्र-बिंदु बनना पडा ।

डीवी का ध्येय लौकिक है, महात्मा गांधी का लोकातीत ! डीवी की शिक्षा पद्धति का आधार पूंजीवाद की शिलापर टिके हुये समाज को सुव्यवस्था प्रदान करना है; गांधीजी आत्म परिष्कृति को ही शिक्षा मानते हैं ।

महात्मा गांधी धार्मिक शिक्षा के विरोधी नहीं थे । वह एक आस्तिक प्राणी थे । अत: उनकी शिक्षा की आत्मा अनासक्त योग है । वह एक ऋषि थे । उनका जीवन भक्ति और साधना का जीवन था । अत: धर्म भावना उनकी शिक्षा पद्धति का आंचल कैसे छोड सकती थी ? हां ! वह यह कभी उचित नहीं समझते थे कि प्रत्येक धर्म की पुस्तकें कक्षा में बालकों को पढाई जायें । धर्म के क्षेत्र में वह समन्वय चाहते थे और चाहते थे कि प्रत्येक धर्म में जो शुभ है, जो शाश्वत सत्य है और चिर सुन्दर है उसे अवश्य पढाया जाये । वर्धा शिक्षा योजना के अन्तर्गत सभी धर्मों के आध्यात्मिक तत्वों की दीक्षा दी जाने की सुविधा है ।

महात्मा गांधी की शिक्षा-योजना एक बहुत बडी साधना है । उस योजना में प्रत्येक बालक शिक्षा आश्रम में एक साधक मात्र है और प्रत्येक अध्यापक एक योगी मात्र । अध्यापक प्रकाश की वह ज्योति है जिसके आलोक में प्रत्येक बालक अपने साधनापथ पर आगे बढता है । अत: अध्यापक को ज्ञान संचय करने के अतिरिक्त अपने व्यक्तित्व को शुभ्र ज्योत्सना सा परिष्कृत बनाना आवश्यक है ।

उनके सत्याग्रह आश्रम में अध्यापकों को कठोर संयम तथा आत्म-नियंत्रण का जीवन व्यतीत करना पडता था । उन्हें बहुत से व्रत तथा नियमों का पालन करने की प्रतिज्ञा करनी पडती थी; जैसे:-

१- सत्य व्रत पालन,
२- ब्रह्मचर्य,
३ - अहिंसा,
४- सात्विक भोजन,
५- सुख-सम्पत्ति वैभव तथा चोरी का त्याग ।

इसके अतिरिक्त उन्हें 'स्वदेशी-वृत' का भी पालन करना पडता था । अपने सारे काम हाथ से करने पडते थे ।

केवल चार वर्ष से ऊपर के विद्यार्थी बालकों को आश्रम में भर्त्ती करने का नियम था । पर इसके पश्चात् किसी भी अवस्था में वह आश्रम का स्नातक बन सकता था । १० वर्ष तक उन्हें आश्रम में ही रहने की योजना थी । कोई भी विद्यार्थी अपने माता-पिता के पास नहीं जा सकता था और न उसे उनसे मिलने की ही आज्ञा थी । हिन्दी तथा द्राविड भाषा सीखना उनके लिये अनिवार्य था । तीन वर्ष भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों के देशाटन की व्यवस्था की गई थी । कताई बुनाई, बागवानी तथा कला कौशल उनकी शिक्षा का माध्यमिक केन्द्र था ।

अन्तिम शब्द

इस प्रकार महात्मा गांधी की शिक्षा प्रणाली केवल ज्ञान राशिका संचय करना ही नहीं है । बौद्धिक ज्ञान केवल एक साधन है, पूर्ण शिक्षा का एक अंश मात्र है । व्यक्तित्व का पूर्ण विकास, आत्मा का ब्रह्म के रूप में विवृति तथा अनासक्त योग ही उनकी शिक्षा प्रणाली का ध्येय है । वही शिक्षा उनकी दृष्टि में पूर्ण है जो व्यक्ति को उसके समीप की सीमा से बाहर ले जाकर ब्रह्म की ओर उन्मुख करती है ।

प्यार

गोपीकृष्ण गोपेश

प्यार से कौन परिचित नहीं ? पर 'प्यार' को सब अपने अपने ढंग से समझते आये हैं किंतु प्रयाग के कवि गोपेशजी का 'प्यार' कैसा है, उसका चित्र उनकी 'प्यार' कविता में देखिये ।]

प्यार—
प्यार की बातें वहुत करता रहा मैं—
प्यार है जो चांदनी के वक्ष में भी
नित सुबह की आग भर दे,
रात-दिन का मेट अन्तर
चांद-सूरज एक कर दे...
और
वह इन्सान—
देखे एक रेगिस्तान,
जिसमें ताड़ के नीचे मिले दो बूंद सारा जल,
आदमी की बात में करता नहीं केवल,
जिसे पीकर देवता भी मौत से कुम्हलायें,
कि जैसे दूर के दीपक
पथिक के प्राण में बुझ जायें,
प्यार—
प्यार पर अब तक मरता रहा मैं—
प्यार है जो आदमी को
दे अटल-विश्वास जीने का निरन्तर,
प्यार है जो आदमी की सांस में दे
बांध पत्थर...
और फिर इन्सान—
देखे एक रेगिस्तान...
जिसमें रेत के मीनार पर मीनार ढलते जांय,
जिसमें गुम्बदों की गोद में शैतान पलते जांय,
जो यों सर नवाकर
मुंह बनाकर
निगल ले कुल सृष्टि का निर्माण,
ज्यों निकलते-निकलते
फिर अटक जायें प्राण,
ज्यों किसी के आँसुओं में
उलझ जायें गान....
प्यार—
प्यार की बातें बहुत करता रहा मैं–
प्यार पर अब तकमरता रहा मैं–
किन्तु, सब कुछ झूठ है, है सत्य
मेरी सांस घुटने की क्रिया का क्षण,
पलकियों के एक कोने में अडा,
बिछुडा अभागा साथियों से
एक आंसूकन,
टूट जाये ज्योंकि कोई प्रण...
प्यार--
प्यार की बातें बहुत करता रहा मैं--
प्यार पर अबतक बहुत मरता रहा मैं--
किन्तु, प्रेयसि, प्यार ममता, झूठ
सत्य है यह शीशियां, यह गोलियां,
यह डाक्टर, यह नर्स...
जो कि मुरझी-मौत को भी
जिन्दगी की एक दो सुइयां लगा दें,
दे भरोसा, मौत को कुल भय भगादें,
आदमी को गफलतों की नींद से
जैसे जगा दें
प्राण, मेरी,
बुरा मत मानो
कि झूठा है तुम्हारा प्यार--
सत्य है यह डाक्टर
यह नर्स,
यह उपचार ।

उसका भाग्य

श्री शान्ताराम जैन

विधाता ने उस रूप की कलिका को एक झोपडी में खिलाया। विरासत में उसे मिला भीख माँगना। कलिका खिलकर एक दिन फूल बनी। फूल पर रस लोभी भौंरे भंडराने लगे। पैसों के बदले उसके रूपसे खेलनेवाले उसे बहुत मिले किंतु उसे प्रेम करनेवाला कोई नहीं। वह अपने भाग्य को खोजती रही ! खोजती रही ! पर उसका भाग्य सोया हुआ था.....उसकी झोपडी के पास ही....उसका भाग्य......

सिर्फ छः महीने पहिले की बात ! बिजली की चपलता उसके शरीर में थी। आकर्षण का तेज उसके नेत्रों से चमकता था। वाणी का माधुर्य उसके ओठों से टपकता था। मयूर की मोहकता उसकी चाल में प्रतीत होती थी। सौन्दर्य सम्पन्नता का सारा वैभव विधाता ने उसके सामने हाथ जोडकर खडा कर दिया था।

तरुणाई की मस्तीने उसे मदहोश बनादिया था। अपने प्रफुलित सौन्दर्य और यौवन की मस्ती से उन्मत्त होगई थी वह। वह प्रतीक्षा कर रही थी कि उसके भाग्य पर सबको ईर्ष्या हो रही थी लेकिन आज.......
सिर्फ छः महीने के बाद ?

० ० ० ०

अपनी उम्र के ढाई वर्ष के बाद ही वह माता की ममता से वंचित होगई।

"क्या होगा इस बच्ची का ? " कहकर उसके पिताने अपने मस्तक पर हाथ मार लिया था लेकिन....?

गहराई तक गीलापन न रहने पर भी बेर और बबूल के पेड पथरीली जमीन में पैदा होते बढते और फलते फूलते हैं। उसी तरह वैभव का गीलापन न रहते हुयें भी उसकी जीवनलता बढी और फली फूली। मानो बेर और बबूल के पेड पर गुलाब मोगरे का फूल खिला हो, ऐंसाही उसका हुआ। दरबदर भीख मांगने वाले भिखारी की झोपडी में विधाता को घोखा देकर सौन्दर्य की अमानत वह अपने साथ लेंकर आई थी।

अपनी लज्जा ढांकने के लिये जो फटी चिंदियाँ उसनें अपने शरीर पर लपेट रखी थीं उनमें से उसका सौन्दर्य उभर उभर कर झांक रहा था। पांच वर्ष की होते ही उसने अपनें मां–बाप का पेशा शुरू कर दिया। रास्तों पर वह भीख मांगने लगी। उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय दिखाई देती थी अतः सहज ही कोई भला आदमी उसे पैसा--दो पैसा दे देता था। पैसा मिलते ही हरिणी की तरह कूदती हुई वह दूसरे व्यक्ति के पास जा पहुँचती और "ओ मालक!" कहकर हाथ पसार देती। यदि कोई कंजूस उसे पैसा देने में आगे पीछे करता तो वह उसका पीछा करने में कमी नहीं करती। इस पींछा करने में पैसे के लोभ की अपेक्षा उसकी हठधर्मी ही अधिक थी। "ओ मालक, ओ मालक, गरीब को एक पैसा दो" इस तरह लगातार पुकारती हुई वह पैसा न देनेवाले कंजूस का पीछा करती। इतने पर भी किसी के दिल में दया नहीं पैदा होती तो वह उसका कोट पकडकर खींचने में भी आगा-पीछा न करती, उसकी इस हठधर्मी के करण कहिये या दयनीय भोलेपन के कारण कहिये, भिखारियों के अन्य बच्चों की अपेक्षा उसे दो चार आने अधिक ही मिलते। अतः सहजही अन्य बच्चे उससे ईर्ष्या करते और नाराज रहते।

दिनभर की कमाई रातको वह अपने पिता को देती और पिता 'बडी भाग्यवान मेरी बच्ची' कहकर उसकी पीठपर से प्यार का हाथ फेरता और कुतूहल से उसको चूम लेता। उसके कष्ट की कमाई पर ही वह जीवित था। स्वयं कुछ भी काम न करके मजे में जीवन बिताता था। दिनभर होटलों म बैठकर गप्पे मारता, बकझक करता, शराब पीता, गांजा फूकता और पैसे बचने पर अपना अन्य शौक भी पूरा करता।

दिन और महीनें बीतनें लनें। उसकी कमाई भी बढने लगी। परिणामत: उसके पिता के व्यसन भी बढने लगे। उम्र के साथ उसका शरीर भी बढने लगा और सौन्दर्य भी चमकने लगा। मन और भावना की भी बढती.होने लगी।

जीवन के सोलहवें वर्ष में उसने पदार्पण किया। यौवन के नये प्रदेश में उसका प्रवेश हुआ और इसके बाद उसके उठे हुये गालों पर लालिमा झलकने लगी। लालजर्द ओंठ फूटे हुये अनार के भीतर से दोनों की तरह चमकने लगें। भौंहों को धनुष्याकृति मिली। वक्ष: स्थल उरोभाग छोडकर ऊपर उठ गया। नितंब नजरों में आनें लगे। कमर में लचक आगई। वाणी से माधुर्य बिखरने लगा। आंखों से मदिरा की मस्ती बहने लगी। हंसी में फूल खिलने लगें। उसके अनुपम सौन्दर्य का तेज रोम रोम से फूट रहा था।

वह पूर्णतया बदल गई थी। उसी तरह उसकी ओर देखनेवाले और उसको भीख देनेवाले की दृष्टि भी बदल गई थी। भीख मांगने में उसे अब शरम आने लगी थी किन्तु अपने व्यसनी पिता की धाक से वह यह सब करती थी। भीख मांगने के सिवा अन्य दूसरा कोई रास्ता भी नहीं था। इधर कुछ दिनों से उसकी आय घटने लगी थी। देनेंवाले भी देनें में आनाकानी करते थे। वह भी बचपन की तरह लेने के लिये हठ नहीं करती थी। कोई उससे उसका नाम पूछता और वह भी शर्म से गडकर कहदेती-

--"रंभा है मेरा नाम" पूछनेंवाले मुस्कराकर आगे बढते हुये कहते--"हो तो तुम सचमुच रंभा लेकिन....कोई धीरे से पूछता "यह पैसे की भीख कबतक मांगोगी? किसी धनिक से प्रेम की भीख मांगो तो सदा के लिये यह खटखट दूर हो जाय। इतनी बडी होगई। क्या अब भी भीख ही मांगोगी? कोई दूसरा धन्धा क्यों नहीं देखती?" कोई कहता "तुम सिर्फ मांगती हो। देती कुछ नहीं। पहिले कुछ देना चाहिये। फिर मांगना चाहिये।" ये सब लोग ऐसी विचित्र बातें क्यों बोलते हें, उसकी समझ में कुछ नहीं आता था। केवल कुछ देर वह बोलनेंवालों की ओर देखती और फिर चुपचाप चल देती।

धीरे धीरे उसे भीख मिलना बन्द होगया। उसके पिता की आवश्यकता पूर्ति में बाधा पहुँचने लगी। उस आलसी आदमी को अपनी लडकी की कठिनाई का पता नहीं था। वह पैसा कमाये और यह खर्च करे, इतना ही उसे मालूम था। वह नाराज होता, गालियां देता और कभी मारने को उठता।

एक दिन नीची गर्दन किये उसनें पिता से कहा- "आजकल पैसा कोई देता नहीं। लोग न जानें क्या क्या बोलते हें। कोई चेष्टा करता है, कोई आंखें मटकाता है तो कोई ठहाका मारकर हंसता है। मैं कुछ नहीं समझती।" "क्या कहते हैं?" पितानें जोरसे हंसकर पूछा- "लोग मेरी मजाक उडाते हें?" "हां" आंखें मटकातें है? "हां, हां, हां," उसनें पिताके प्रश्नों से खीझकर उत्तर दिया। पहिले तो पिता हंसा फिर डपटकर बोला-और क्या चाहिये? डटकर बेवकूफ बनाओ एक एक को।' लोग हंसते हैं,

आंखें मटकाते हैं, मजाक उडाते हें तो उन्हें बेवकूफ कैसे बनायें! कुछ समझ में नहीं आता था उसकी। धीरे से उसने गर्दन ऊँची करके पिता की ओर देखकर कहा-'उनको बेवकूफ बनाऊँ याने क्या करूँ?' 'क्या वह भी मुझे ही बताना होगा? तुझे कुछ नहीं समझता' पितानें गुस्से में आकर कहा। उसने फिर गर्दन नीची करके कहा-

--"मैं कुछ नहीं समझती। सचमुच मैं कुछ नहीं समझती।" अपनी लडकी के भोलेपन पर पिता को खुशी हुई और उसके गालपर हलकी चपत लगाकर बोला --"तू जवान होगई है बेटी, रूपवान भी है। दुनिया झुकती है मगर...." पहिली बार उसने अनुभव किया कि उसमें कुछ संवेदनात्मक परिवर्तन होगया है। वह शर्मा गई।

"समझ गई ना बेटी? गरीब आदमियों को पेट के लिये सब कुछ करना पडता है। भाग्य....पितानें दीर्घ श्वांस छोडते हुये यह कहा और उसकी सम्मति के लिये वह प्रतीक्षा करनें लगा किन्तु उसनें नकारार्थी गर्दन हिलादी।

"नहीं समझती? अब भी नहीं समझी! तेज स्वर में पिता ने कहा। थरथराते ओठों से उसके बोल निकले--"न, नहीं"

"आश्चर्य है कि जो बात अन्य लडकियों को उम्र के ग्यारहवें वर्ष में समझ जाती हैं वह तुझे सोलहवें वर्ष में भी नहीं समझी। आश्चर्य है।" उसके व्यसनी पिता के क्रोध का पारा धीरे धीरे ऊपर चढ रहा था

लडकी कुछ ढोंग कर रही है, ऐसा उसे जान पडने लगा। फिर वह चिडकर कहने लगा--" किसी सहेली से पूछकर देख। रंगू से पूछ, गंगू से पूछ। वे चपटे नाक की नकटी लडकियां खूब पैसा कमाती हैं और तू इतनी रूपवान होकर भी कुछ नहीं करती। क्या कहना तुझे!" उस समय वह कुछ बोली नहीं। किन्तु दूसरे दिन उसने अपनी एक सहेली से पूछा --" रंगू, क्या करूं? कैसे बेवकूफ बनाकर ठगूं उन लोगों को? लोग हंसते हैं, आंखें मटकाते हैं, अंटसंट बकते हैं तब क्या रहता है उनके मनमें? ऐसे लोगों को तुम क्या करती हो?" उसकी सहेली पहिले तो हंसी, बादमें कुछ क्षण सोचती रही। फिर हावभाव के साथ कहने लगी--" मानों तुम कुछ समझती ही नहीं। फिजूल नखरे क्यों करती हो?"

अनजान की तरह उसने कहा–'तेरी कसम, में कुछ नहीं समझती। बताओ ना!'

रंगूने तब सब कुछ समझाकर उसे कहा कि अब तुम जवान होगई हो। तुम्हें देखकर लोगों के मुंह में पानी आजाता है। इसपर उसने जोरसे हंसकर कहा– में कोई खाने की चीज हूँ क्या?'.

'और क्या? किन्तु इस चीज को खानें के दाँत अलग रहते हैं। तुम नहीं जानती। ऊपर से अच्छे दिखनेवाले ये लोग भीतर से बहुत काले रहते हैं। दिन में वे अपने को छूयेंगें नहीं, पैसा भी दूर से डालेंगे किन्तु रात को ये लोग अपने–तुम्हारी मेरी तरह की जवान लडकियों के–गले में हाथ डालेंगें, मुंह चूमेंगे और सब कुछ करने को तैयार हो जायेंगे। उस समय उन्हें छूत नहीं लगती' रंगूने उसे आवश्यक बातें समझादी।

" ओ! यह बात है। तो क्या करना चाहिये? उनसे पैसे कैसे ठगे जांय"--उसने ठोडी पर अंगुली रखकर आश्चर्य प्रकट करते हुये कहा। " कोई अपनी ओर देखकर हंसें तो अपनें को भी हँसना चाहियें। कोई टक लगाकर देखें तो अपने को भी आंखें गडोकर देखना चाहिये और शरमाने का ढंग करके हंस देना चाहियें। कोई मजाक करे तो नाराज नहीं होना चाहिये। किसी ने फालतू प्रश्न किया तो 'हां' भी मत कहो और 'ना' भी मत कहो। उसकी ओर देखकर हंसदो और झट से शरमाकर गर्दन झुकालो। फिर देखो कि आज तुम्हें भीखदेनेंवाला आदमी पांच रुपये का नोट तुम्हारी ओर बढादेगा। फिर एक एक चीज मांगना शुरू करो। कभी ब्लाऊज, कभी साडी, कभी सँडल और कभी कुछ। झट ही मिल जायेंगी।" रंगू ने सारी बातें उसे समझादी।

" किन्तु ऐसा क्यों करें?" उसने पूछा। "पैसा चाहिये इसलिये और क्यों? पेट भरने के लिये हम भीख मांगती हैं किन्तु अपने समान हट्टी कट्टी जवान लडकियों को कोई भीख क्यों देगा? काम करके चार पैसे मिलाना चाहें तो कोई मजदूरी भी नहीं मिलती। घरकी देहली पर भी आने देते हैं क्या ये लोग अपने को? तब फिर और क्या करेंगे?

रंगू के शब्दाघात से उसके अज्ञान का कवच फूट गया। एक नई दुनियां में वह आगई। अंडे के बाहिर निकले हुये पखेरू की तरह विस्फारित नेत्रों से वह इस नई दुनियां को देखने लगी। उम्र के अनुसार वह बढ रही थी। उसे इतना ही मालूम था कि शरीर का विकास हो रहा है। किन्तु अनेक दृष्टि से जो परिवर्तन उसमें हो रहा था, उसका ज्ञान उसे नहीं था। जवानी के कारण लोग उसकी तरफ क्यों आकर्षित होतें हैं, यह वह समझ नहीं सकी थी किन्तु रंगू की बातों से चलचित्र की तरह उसके सामने बहुतसी बातें आने लगी। उसे पता चला की विधाता ने उसे अनुपम सौन्दर्य दिया है। अपनी तरुणाई का उसे अनुभव हुआ। सौन्दर्य और जवानी इस ईश्वर प्रदत्त संपत्ति का उपयोग रंगू के कहने के अनुसार विपरीत मार्ग से करने की बात उसें रुचि नहीं। आजतक उसने सिर्फ भीख मांगी थी। किसी को फंसाकर, ठगकर या चोरी कर एक पैसा भी उसने नहीं कमाया था। अपने जीवन का उसने यही अर्थ समझा था कि भीख मांगने के लिये वह पैदा हुई है और पैसे मांगकर पिता को देना चाहिये। इसी एक जीवन मार्ग पर वह आजतक चली आरही थी। इसलिये रंगू द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने की उसकी हिम्मत नहीं हुई।

वह घर आई और काच के फूटे टुकडे में, जिसे वह आइने की तरह उपयोग करती थी, अपने रूप को देखने लगी। इस तरह आइने का उपयोग करने की दृष्टि उसे पहिलीं बार ही मिली थी। इधर उधर बिखरे हुये केस तीन चार दिन में कभी फुरसत के समय ठीक ठाक कर लेना ही आइने का उपयोग वह समझती थी। इसके आगे की कोई कल्पना उसके

दिमाग में अभीतक नहीं आती थी । उस पारा उडे हुय काच के टुकडे में वह अपना रूप ठीक से नहीं देख सकी और उसने वह टुकडा फेंक दिया और विचार मग्न हो गई। थोडी ही देर में उसके मस्तिष्क में एक प्रकाश की रेखा दौड गई। अपने भाग्य का, रूप संपदा का पता चलते ही उसके गाल गर्व से ऊपर उठगयें, गर्दन ऊँची होगई और वक्षःस्थल फूल गया ।

अपनी जवानी को लूटने के लिये बहुत से लोग टपे हुए हैं । लोग चाहते हैं कि मेरी जवानी पर दिन या रात में, 'जब भी मौका मिले, डाका डाला जाय । इस बात की जानकारी अब उसे होगई थी । उसकी ओर लालायित आंखों से देखनेवाले में युवक, प्रौढ और वृद्ध सभी थे । सेठसाहूकारों के सिवा धर्म के नाम की माला जपनेवाले तथा देशोद्धार, दलितोद्धार और समाजोद्धार की गप्पा मारनेवाले भी थे ।

उसे मालूम होने लगा कि सचमुच ही में भाग्यवान हूँ । मेरा जन्म भीख माँगकर पेट भरने के लिये नहीं हुआ है । यदि ऐसा ही होता तो भिखारी की झोपडी में जन्म देकर विधाता यह अनुपम सौन्दर्य मुझे क्यों प्रदान करता । इन विचारों से उसे अपने सौन्दर्य के सम्बन्ध में अभिमान होने लगा । और इसके बाद....।

दूसरे ही दिन से उसके व्यवहार में परिवर्तन होने लगा । उसका चलना, हंसना और बोलना बदल गया । उसके चलने में नजाकत आगई, बोलने में वह बहकने लगी और हंसने में खिलखिला पडती । उसके चाल की सरलता, बोली की नम्रता और हंसने की स्वाभाविकता खतम होगई ।

भीख मांगना उसनें बन्द कर दिया । अपने भाग्य का उदय हो, अपने पास सोने चांदी के ढेर लग जांय और ढेर लगानेवाले अपने से प्रेम की भीख मांगे, ऐसी गलत भावना दिल में धारण करके वह बर्ताव करने लगी किन्तु उसकी यह इच्छा पूरी होनेवाली नहीं थी । सामाजिक विषमता की जडें दूर तक फैली होने के कारण उसके सौन्दर्य पर लट्टू होनेवाले भक्त तो सैकडों थे किन्तु उससे प्रेम करनेवाला पुरुष कोई नहीं मिला । मिलना संभव भी नहीं था क्योंकि सभी उसके सौन्दर्य का सौदा करना चाहते थे और वह भी रात के अंधेरे में ।

पहिले यह सारा सत्य उसे दिखाई नहीं दिया क्योंकि आत्मश्रद्धा ने उसके हृदय में अंधकार फैला दिया था। यह अंधेरा अब दूर हो गया और अब उसने अपनी सहेली रंगू की सलाह के अनुसार एक एक को बेवकूफ बनाकर लूटने का निश्चय किया । अब उसनें अपना व्यवहार बदल दिया था ।

पुनः वह भीख मांगने के बहाने हाथ फैलाने लगी किन्तु अब उसका भीख मांगना सामनेवाले पुरुष को प्रलोभन देना था । उसकी एक अदा पर सामनेवाला ठंडा पड जाता । वह जबान से बोलने की जगह अब आंखों से बोलने लगी थी । उसके मूक नैनों की भाषा समझनेवाले समझने लगे थे । उसके हावभाव उसके सौन्दर्य की खुमारी का स्वाद लेने के लिये भाव कर रहे थे । भाव पट रहा था और उसका सौन्दर्य लुट रहा था । सेठसाहुकारों के महलों में उसका प्रवेश होने लगा था। परिणामतः उसके पास प्रतिदिन चांदी के रुपये खनखनाने लगे थे । उसकी झोपडी में तरह तरह की साडियां और ब्लाऊज इकट्ठे होने लगें । उसके घर में स्नो-पावडर आदि सौन्दर्य-प्रसाधनों का प्रवेश होने लगा । उसके पिता की ऐयाशी के लिये भरपूर पैसा मिलने लगा । अब दो-तीन बार शराब तथा मटन की जरूरत होने लगी और मिलने भी लगा । लडकी की कमाई का पैसा उसके पास खनखनाते ही शराबियों का झुण्ड उसके आसपास जमने लगा था । वह कमाती और यह खोता । इस तरह का क्रम कई दिनों तक चलता रहा । वह एक तरफ से प्राप्त करती तो दूसरी तरफ से खोरही थी । दूसरों का धन लूट रही थी किन्तु अपना सर्वस्व लुटा रही थी । दूसरों को लूटते समय उसने अच्छे-बुरे का विचार नहीं किया था । इसी तरह अपना सर्वस्व लुटाते समय भी उसने किसी प्रकार का विचार नहीं किया । अंत में ऐसी बातों का जो परिणाम होता है, वही हुआ ।

एक दिन रात को किसी ग्राहक की खोज में वह एक पुल के पास......शहर के बाहिर ....दूर...... खडी थी । बहुत देर तक प्रतीक्षा करती रही किन्तु कोई नहीं आया । वह निराश होगई और उसी समय उसे झनझनाकर बुखार आगया । वह पुल के पास ही बैठ गई । उसे भय हुआ कि अपना भाग्य शायद यहीं समाप्त न हो जाय । इस शंका से वह थर्रा उठी । किन्तु नहीं......उसका भाग्य अभी आगे था । उसके एक पडौसी, उसीकी जाति के एक युवकने उसे सहारा दिया । अपनी पुष्ट भुजाओं में उसे उठाकर उसके

घरतक पहुंचा दिया। भरी हुई छाती और मांसल बाहुओं के स्पर्श से बुखार की हालत में भी उसे रोमांच हो आया। कितनी निर्भीकता से उसने अपनी गर्दन युवक के कंधेपर डालदी थी।

उस दिन रातभर वह बेचैन रही। रह रहकर उस युवक की मूर्ति उसके सामने आ रही थी। बारबार वह अनुभव करने लगी कि मैं शहर से दूर पुल पर खडी रहूं। वह युवक आये और अपनी पुष्ट भुजाओं में मुझे उठाले। निर्भीकता से मैं अपनी गर्दन उसके कंधेपर डालदूं और वह मुझे घरतक पहुंचा दे। शरीर में बुखार और मनमें विचारों का तूफान। रातभर वह बेचैन रही।

दूसरे दिन से बराबर उसका बुखार बढने लगा। बीमारी ने उसके शरीर को खोखला बना दिया किन्तु अभी उसके भाग्य का अंत नहीं हुआ था। पन्द्रह दिन होजाने पर भी उसका बुखार हठयोगी की तरह उसे पकडे बैठा था। उसी में निसर्ग की कोप दृष्टि भी हुई। नसीब की नौका डूबते डूबते बची। नदी की बाढ से सारे भिखमंगों की झोपडियाँ बह गईं। इस समय भी उस पडौसी युवक ने रक्षा की और सुरक्षित जगह में उसे पहुंचा दिया। बार बार वह सोचने लगी कि फिर कोई संकट आवे। अपनी पुष्ट भुजाओं में फिर वह उठाले। शरीर के एक एक कण से सुखदायक चमक निकले। शरीर भर में मीठा मीठा रोमांच हो और फिर निर्भीकता के साथ में अपनी गर्दन उसके कंधे पर डालदूं।

सार्वजनिक वाचनालय के मेहराब के नीचे उसने लाकर उसे रखा था। और भी कुछ भिखारी सुरक्षित स्थान समझकर वहां आगये थे किन्तु दूसरे तीसरे दिन उन लोगों ने अपनी व्यवस्था करली थी और वहाँ से चले गये थे उसका भाग्य मात्र……। हजारों आदमियों की पदधूलि से निर्मित हाथभर जगह में जो धूल का स्तर जम गया था वहीं उसका भाग्य धूल चाट रहा था। जिस शरीर और सौन्दर्य के बलपर वह अपने भाग्य का उदय चाहती थी वह शरीर सौन्दर्य..

हिंदी का सचित्र मासिक
कल्पना
(साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक)
पढिये
जिसमें उच्चकोटि के साहित्यिकों की रचनाएँ आपको मिलेंगी।
अपने गंभीर और सुरुचिपूर्ण
स्वरूप के कारण सरकारी विभागों द्वारा मान्य
विशेष परिचय के लिये हमें लिखिये
संपादक मण्डल
डा० आर्येन्द्र शर्मा (प्रधान सम्पादक)
मधुसूदन चतुर्वेदी बद्रीविशाल पित्ती
वृन्दावनविहारी मिश्र मुनीन्द्र वार्षिक शुल्क १२)
पृष्ठ संख्या ८० कला-सम्पादक-जगदीश मित्तल एक प्रति १)
'कल्पना' कार्यालय, ८३१ बेगमबाजार, हैदराबाद-दक्षिण.

महीना डेढ महीना पहिले मनुष्य के मन को शीघ्र आकर्षित कर लेनेवाला उसका सुडौल शरीर अब हड्डियों का ढांचा बनकर भयप्रद हो गया था। वह विद्रूप दिखने लगी थी। गाल बैठ गये थे। आंख भीतर धँस गई थी। तोते को शर्मिन्दा करनेवाली नाक अब नहीं रही थी। उन्नत वक्षःस्थल को अब सपाट-भूभाग का स्वरूप प्राप्त होगया था। पुष्ट नितंब हवा निकले हुये फुटबॉल की तरह चपटे हो गये थे। बिजली की चपलता अब उसमें नहीं थी। आंखों की मादकता नष्ट होगई थी। वाणी का माधुर्य खतम हो गया और सौन्दर्य की मस्ती लुप्त होगई थी। उसके सौन्दर्य पर पागल होनेवाले, उसके कौमार्य पर टूट पडनेवाले और उसकी जवानी से खेलनेवाले अब उसकी ओर देखने के लिए भी तैयार नहीं थे। छि: अब कोई......कोई नहीं था उसकी ओर देखने वाला! सिर्फ एक ही युवक था अब उसकी ओर देखनेवाला!

उसके लिये वह खाने को लाता। दवा लाता। उसे क्या चाहिये और क्या नहीं, इसकी पूछताछ करता। वह यह सब क्यों करता है, यह उसे नहीं समझता था लेकिन वह यह सब करता रहे, ऐसा वह हृदय से चाहती थी। वह यह जानने के लिये अब उत्सुक थी कि वह यह सब क्यों कर रहा है।

अंत में उसने एक दिन पूछा--" क्यों करते हो यह सब मेरे लिये तुम?" दूसरा तो कोई कुछ भी नहीं करता? तुम क्यों करते हो फिर?"

"करता हूं, बस"-- उसने उत्तर दिया। "लेकिन क्यों?" उसने प्रश्न किया। "करने की इच्छा होती है, इसलिए" युवक ने उत्तर दिया। "वही तो, क्यों करने की इच्छा होती है तुम्हारी" वह अपने प्रश्न पर दृढ थी। वह असमंजस में पड गया क्या उत्तर दे, उसकी समझ में नही आरहा था।

"बोलो, बोलो ना" उसने हठपूर्वक पूछा।

"कैसे बतलाऊँ तुझे"–

युवक ने उसकी आंखों में आंखे गडाकर कहना शुरू किया। उसके ओठ हिले, गले में कुछ अटकासा मालूम हुआ और उसकी आंखों से टपाटप आंसू पडने लगें। कातर स्वर में उसने कहा– "बचपन से ही तुमपर मेरा प्रेम है लेकिन तुम कितनी सुन्दर और मैं कितना कुरूप। मेरी एक आंख भी फूटी हुई! इसलिये मैं अभीतक अपना प्रेम छिपाता रहा।"

"सचमुच?" उसने सजग होकर पूछा। "क्या अब भी तुम्हें विश्वास नहीं?" बडे कष्ट से अपने को रोककर उसने उत्तर दिया। वह एकदम उसके गले से लिपट गई और कहने लगी--नहीं, ऐसा नहीं है। मुझे तुम पर विश्वास है। मुझे क्षमा करदो!"

आनंद से युवक का रोम रोम खिल उठा। उसने अपने कुडते की बांह से अपने आंसू पोंछ लिये और झट उसने अपनी पुष्ट भुजाओं में उसे जकड लिया। उसने भी बेफिक्री से अपनी गर्दन उसके कंधे पर डालदी। अब उसे मालूम हुआ कि भाग्य-भाग्य समझकर जिसके पीछे में दौड रही थी, वह भ्रम था। मेरा सच्चा भाग्य तो मेरे पीछे दौड रहा था। अकस्मात वह आज मुझे प्राप्त हुआ।

राज्यसत्ता के हाथ में शिक्षा का संचालन चला जाय, इससे बढकर देश के लिये कोई खतरा नहीं हो सकता। तालीम तो ज्ञानियों के ही के हाथ में होनी चाहिये, सरकार के हाथ में नहीं। सरकार तो एक ही बना-बनाया ढांचा लादेगी और उसे ही चलायेगी। उससे न हमारा विकास बढेगा, न प्रज्ञा बढेगी। तालीम की बागडोर यदि सरकार के हाथ में रहती है, तो वह लोगों के दिमाग जैसे बनाना चाहेगी वैसे बनायेगी। हम शिक्षण पर राज्य की सत्ता नहीं चलाना चाहते।

—संत विनोबा

शांति का दूत

केशवचंद्र वर्मा

जीवन में हास्य और व्यंग कभी अलग-अलग चलते हैं और कभी मिलेजुले। प्रयाग के कवि श्री केशवचन्द्र वर्मा की कविताओं में हास्य और व्यंग का अनुपम सम्मिश्रण मिलता है। वे एक ओर हमें हंसाते हैं तो दूसरी ओर व्यंग की चोट से हमारी चेतना को झकझोर भी देते हैं। 'शांति का दूत" और "प्यार का रोग" कवि की ऐसी ही रचनायें हैं।

रिक्शा रुका
लुंङ-चू-वान की दूकान के आगे।
उतर पडा शान्ति का दूत
वह कवि।
जिसकी बगल में एक नहीं
तीन चार फाइलें थीं....
कोई कविताओं की, कोई विज्ञापनों की
कोई मेनीफेस्टो की
कोई उन किताबी पन्नों की जिसे उसने
बडी मेहनत से, हिम्मत से
पब्लिक लाइब्रेरी की किताबों से उडाए थे।
उसके बाल, साइबेरिया के जंगलों की तरह बिखरे थे।
मत्था कुछ उभरा सा....चमकता सा
जैसे वहां की पडी बर्फ...जमी हुई...
(उसके दिमाग सी !)
गालों में गड्ढे
जैसे कैस्पियन सागर देखकर उसने बनवाये हों।
नाक कुछ चमकती-कज्जाकों सरीखी
स्वर कुछ तेज-मास्को रेडियो जैसा।
पहिले की पेंट शर्ट
अब बदल गए थे कुर्ते पैजामे और
मोटे फरेम के घूपी चश्मे में
जैसे पीटर्सबर्ग हो गया हो उसकी देह पर लेनिनग्राड।
एशिया के बारे में उसके विचार
पहिले बहुत बोदे थे।
लेकिन लोगों के कहने सुनने से
चीन के लिए
उसने अपने मन में इधर
धीरे धीरे बडी पुख्ता विचारधारा बना ली थी
बिल्कुल चीन के दीवार सी।
बहरहाल
रिक्शा रुका
लुंङ-चू-वान की दूकान के आगे।
देकर चवन्नी उसे टरकाया
'अधिक झिकझिक मत मचाओ
हो रहा है दांत में कुछ दर्द
खुश रहो दूसरी सवारी ढूंढो।'
रिक्शा वाला बेचारा
टुकुरटुकुर ताकता खिसिक चला
जैसे कोई छायावादी कवि प्रयोगवादियों की मार से
भगा हो।

'शान्ति का वह दूत'
भीतर घुसा दूकान में।
दांत के डाक्टर की चीनी दूकान
चीनी सामान
चीनी सारा इंतज़ाम
सब कुछ कितना अच्छा लगा उसे
जैसे उसकी कल्पना को नया द्वार हो मिला।
यह चारों तरफ दांतों के नए नए सेट
लटके हुए चित्र
हंसती हुई मेमों के
जिन्होंने अपने दांत इसी दूकान से बनवाए थे।
उसने सोचा:
दांत ही प्रगति का चिन्ह है।
पृथ्वीपुत्रों का उपजाया यह सारा अन्न बेकार है
अगर दांत नहीं हैं ऐसे
जो उनको बत्तीस बार चबाचबा कर खा सकें।
उसे ग्लानि हुई

यह भी देश कैसा है
जहां सभी डाक्टर –हैं
पेट के, नाक के, कान के,
हाथ के, पांव के,
किंतु नहीं दांत के ।
दांत, यह अस्त्र है नारी अबलाओं का
पीडित प्रताडित वर्ग का
इसीलिए इसका महत्व चीनियों ने आंका है ।
उसने देखा
छाता लिए चीनी सुंदरी का लम्बा कलेंडर
जो उसकी अपनी प्रेयसी से हजार गुना सुन्दर थी
उसने सोचा
इसी तरह की लुंगी वह उसके लिए भी लाएगा ।
और यह आरामकुर्सी
चीनी मखमल में लपेटी
जिसपर बैठने के सुख में
दांत क्या, इंसान सिर तक तुडवाने में हिचके नहीं ।
काश ! यहां घर घर में ऐसी कुर्सी होती ।
तब तक लुंग-चू-वान
उसे लगा साक्षात माओ का प्रतिनिधि
वही रूप, वही रंग, वही ढंग,
जैसा तस्वीर में उसने अभी देखा था ।
कवि ने बडे आर्त स्वर में कहा
जैसे उसके कंठ में चीन की शोक की नदी हो उमडी हुई
'साथी, मेरा यह पिछला दांत
बहुत दिन से हिलता चला आता है
बहुत तकलीफ देह, फिर भी उखडता नहीं
बिल्कुल बुर्जुवा कल्चर जैसा
इसको तुम नष्ट करो
इसको तुम भ्रष्ट करो
क्रांति दूत, मुझको इस कष्ट से किसी भांति मुक्त करो ।"
उखड गया दांत ।
पर लम्बा बिल देख वह बोल उठा चतुर कविः
"बंधु मेरे मैं बहुत बदकिस्मती से होगया इस देश में पैदा
नहीं मैं कर्म से निज धर्म से और सचमुच शर्म से कहता
मैं तुम्हारा बंधु हूं ।
मुझे यह चीन बहुत अच्छा लगता है
सच मानों, मैंने भी थोडी थोडी अफीम शुरू कर दी है !
चाय और चावल के बिना तो मैं जी नहीं सकता !
रेशम भी मैं चुरा छिपाकर घर में पहिन ही लेता हूँ !
सच मानों, मैं चाहता हूं कि चीनी आत्मा किसी तरह
मेरे अन्दर प्रवेश कर जाय ।
पैसे से मैं लाचार हूं
मैं तुम्हारे लिए साहित्यिक विज्ञापन लिख सकता हूं
लेकिन मेरी जान छोड दो'
और बहुत किचकिच के बाद
साहित्यिक विज्ञापन लिखने पर तोड हुआ
जान छूटी बाहर आए ।
दिन भर के काम से
और इस बुर्जुवा कल्चर वाले दांत के दर्द से थककर
जल्दी ही वह सोने लगा ।
आंख लगी सपने जगे ।
शांति सम्मेलन के सपने उसे आने लगे ।
उसे लगा वह भी एक प्रतिनिधि है जो
दूसरों के मुकाबिले, ज्यादा जोर से मेजपर
घूंसे पटक अपनी बात कहता था ।
चुनचुङ चुनचुङ चुनचुङ
शी यांग हो ची शुन लुंङ
रातभर कानों में उसके गूंजा किए
साथ ही तालियों की तडतडाहट भी
जो कि उन मामलों के साथ साथ बजती थी
बजती ही जाती थी ।
उसने संकेत किया
कोरिया ट्यूनीशिया का !
ईरान के तेल का !
काश्मीर की जमीन का !!
चुनचुङ चुनचुङ चुनचुङ
भाषणों के अनुवाद होते रहे
तालियां बजती रहीं ।
सुबह होते होते उसने देखा
सचमुच कोरिया का मैदान
सैकडों मच्छरों की पीटी हुई लाशें
एकाध अब भी चुनचुङ चुनचुङ भुनभुङ करते उडते थे
उसने हथेली देखी
लाल लाल !!
मच्छरों के खून से रंगी हुई ।
बहुत देर बाद कवि
भाषण और तालियों का यह रहस्य जान सका ।

प्यार का रोग

वह थे मेरे दोस्त मुझे अक्सर चौराहे पर मिल जाते'
घंटों खडे खडे हम दोनों कुल रिश्तों की लिस्ट बनाते ।
अच्छे चंगे भले एक दिन सुबह सुबह ही आए घर पर,
खोए खोए से गुमसुम से लगे बताने मुझसे आकर।
'जानें क्या होगया मुझे है नित चिंतातुर हूं मैं व्याकुल'
आंखें पुरनम दिल कुछ धुक धुक किसी व्यथा में जीता घुल घुल ।
मैंने उनकी नब्ज थाम ली, बोले जीवन भार हो गया,
समझ गया मैं रोग मियाँ का कहा 'आपको प्यार होगया ।'

यह संक्रामक रोग सिनेमा से अक्सर पैदा होता है;
जिसे लगा यह एक बार वह आठ आठ आंसू रोता है ।
यह हल्की फुल्की टी. बी. है जोकि आपको चित कर देगा'
मनोवेग की सारी सूजन यह मिनटों में ही हर लेगा ।
कभी कभी छुतिहा बीमारी यह कालिज से भी आती है।
पर लगनेवालों को तो यह चलती राहों लग जाती है

यह कि किसी दिन बुरी जगह ले जाकर तुमको मरवाएगा,
यह कि किसी दिन अनजाने में कविता तुमसे करवाएगा ।
यह कि 'प्राण, प्रेयसि औ प्रीतम' वाहियात सब रटवाएगा,
यह कि नोकरी से हुजूर का पत्ता चटपट कटवाएगा ।
यह कि चार दिन में ही चेहरा चूसा आम बना देता है,
यह कि दोस्तों की मजलिस में टॉपिक खुद बनवा लेता है ।
यह कि अन्त में स्वयं आपको उल्टा बुद्धू ठहराएगा,
यह कि तुम्हारी ही नजरों में तुमको खुद ही गिरवाएगा ।

अब तक कितने लगे, लगेंगे कितने इस पंचायती घाट,
तुम भी चाहो तो ले आओ इसी किनारे अपनी खाट ।

इसका नेचर सीरियस है सही, पर होता वह धीरे धीरे,
यह नासूर हवा हो जाता कभी कभी बिन फाडे चीरे ।
कभी कभी इन्सल्ट करारी रामबाण सी हो जाती है,
जो कि बिना मरहम पट्टी के इस जहान से छुटवाती है ।
अभी अभी का रोग अगर है बदनामी का चूरन खाओ,
मर्ज पुराना हो तो थुका फजीहत का काढा पी जाओ ।
पर इलाज से बेहतर माना जाता है यह रोग बचाना,

इसीलिए में फर्ज समझता हूं कुछ गुर की बात बताना ।
भरी जवानी के आलम में नहीं चांदनी में तुम टहलो,
टहलो भी तो किसी एडिटर के संग में बस गुमसुम टहलो ।
जो कि चांदनी पर तुमको अमरीका का मत बतलाएगा,
जो कि नदी के पुलिनों पर कुछ रूसी खबरें कह जाएगा ।

और सिनेमा जाना तो कुछ ऐसे मित्रों के संग जाना,
जिनका काम गालियां देना हो, और फिर पैसे बरसाना ।
'उहां न लागे राउरा मया'...बड़े प्रेम से बीड़ो पीते,
लौटोगे तुम हंसते गाते नई जिन्दगी पाते जीते ।

जग की सब सुन्दरता को तुम मृत नानी का रूप समझना,
उनसे डरना, उनसे बचना, सोच समझकर कहीं उलझना ।
अगर उलझना तो भी आंखों पर धूपी चश्मा हो प्यारे,
चश्मे के नीचे नीचे अपराध सभी हैं क्षम्य तुम्हारे ।

" आचार्यों का मत है कि कलासाधना का मूल है सत्य, शिव और सुंदर अर्थात साधना सत्य और सुंदर के ऊपर प्रतिष्ठित हो तथा उसका फल हो कल्याणकारी । जो विज्ञान के साधक हैं (तत्वज्ञान की बात नहीं कहता, बल्कि साधारण सांसरिक अर्थ में अर्थात् जो वैज्ञानिक हैं उनका एकमात्र मंत्र है सत्य साधना का फल सुंदर हो असुंदर हो, कल्याणकारी हो अकल्याणकारी हो, किसी से भी मतलब नहीं । हो अच्छा ही है, न हो अपराध नहीं, किंतु साहित्य साधना का एक पुराना पथिक होकर में यही अनुभव करता रहा हूं कि इस मार्ग में पग पग पर विरोध है । संसार की जिस घटना में हम सत्य पाते हैं, वह हो सकता है साहित्य में सुंदर न हो और जो सुंदर है वह साहित्य में नितांत मिथ्या हो सकता है । ज़िसे सत्य के नाम से जानता हूं, उसे मूर्तिमान करने की चेष्टा में देखा है, या तो वीभत्स हो जाता है या कलाकार शिव एवं सत्य को छोडकर भी सुंदर का रूप दर्शन नहीं कर पाता । ठीक इसी प्रकार मंगल और अमंगल की बात भी है।

—शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

मेरी साहित्यिक डायरी के कुछ पृष्ठ

श्री शिवचन्द्र नागर

कभी कभी व्यक्ति अपने मनोभावों का चित्र स्वयं देखना चाहता है। डायरी उस चित्र को देखने का ही एक माध्यम मात्र है। वे चित्र कभी कभी विशेष परिधियों में बंधे हो सकते हैं तो कभी वर्षा के बादलों की भाँति विविधरंगी एवं व्यापक। श्री नागरजी ने अपनी डायरी में अपने प्रयाग के साहित्यिक जीवन के कुछ चित्र खींचे हैं। उन्हें ही हम यहाँ दे रहे हैं।

प्रथम जनवरी १९५०

अबतक साहित्य न तो मेरा जीवन ही रहा और न जीवन का आधार ही। दस वर्ष से वह मेरे प्राणों की प्यास रहा है और अपने सुखदुख तथा संघर्ष का विश्राम स्थल !

आज नव वर्ष की प्रथम रात है और मैं कुछ लिखने बैठा हूं। इस समय मुझे ऐसा लग रहा है जैसे यह मेरे साहित्यिक जीवन का नवप्रभात हो।

आज प्रातः उठते ही मैंने सर्वप्रथम आज का "संगम" पढ़ा। उसमें श्री भारती के कुछ प्रगतिवाद के संबंध में विचार थे। उन विचारों को स्वतंत्र विचार तो नहीं कहा जा सकता बल्कि उन्हें टईं का उत्तर पत्थर से कहूँ तो अच्छा होगा। साहित्यिक क्षेत्र में भी यह राजनैतिक दंगल देखकर हंसी आजाती है।

तदुपरांत 'पहाडी जी में से दो आने का 'नया सबेरा' खरीदने चला गया। पहाडीजी पास ही रहते हैं; उसमें डा० रामविलासजी का एक लेख था और 'संगम' में भारतीजी ने विशेष रूपसे उसी लेख का उत्तर दिया था। 'नया सबेरा' तो मैंने दो आने देकर ही खरीदा पर उसके साथ मुझे पहाडीजी नें भी मौखिक रूप से उस लेख की भूमिका तथा विवेचना के रूप में जो एक छोटा सा भाषण दे डाला, वह मेरे लियें बहुत अधिक था। उन्होंनें बतलाया कि रूस में भी जब लेखक बोलशेविक क्रांति के मार्ग से हट गये थे तो लेनिन को उन्हें अनेक Injunction देने पड़े थे, ऐसा ही एक Injunction यह भी है। इस प्रकार के लेख सभी उन लेखकों पर [illegible] जो [illegible] हैं तो प्रगतिवादी पर मार्क्सवाद के पथ से भ्रष्ट हो गये हैं। पहाडीजी की बात सुनकर मुझे ऐसा लगा कि आज के प्रगतिवादी लेखकों में भी उनके अनुसार दो वर्ग हैं। एक शुद्ध मार्क्सवादी और एक अशुद्ध मार्क्सवादी (Pseudo Marxist)। शुद्ध मार्क्सवादियों में पूरे भारतवर्ष में गिने चुने ही साहित्यिक हैं और पहाडी जी के अनुसार वे ही क्रांति और 'प्रगति' के सच्चे दूत हैं। बाकी वे सभी नौजवान लेखक, जिनकी रगों में नया खून बहता है और जिनकी लेखनीं से नव-जीवन और नव-प्रकाश झरता है पर दुर्भाग्य से मार्क्सवादी ढांचे में फिट होने से जरा कहीं रह जाते हैं, Pseudo-Marxist हैं और उन्हें मार मारकर शुद्ध मार्क्सवादी बनाना चाहिये।

घर आने पर मैंने दोनों लेखों को फिर से पढ़ डाला, पढने के बाद मैंने कुछ क्षण के लिये अपनी आंखें बंद कर लीं और मुझे ऐसा लगा कि जैसे डा० रामविलास और भारती जी कुश्ती लड रहे हों। मैं अपने अकेले कमरे में ही जोर से हंस पडा।

कलाकार तो सत्य का पारखी, खोजी और स्रष्टा है। सत्य, शाश्वत और देश काल की सीमाओं से परे होता है। मार्क्स नें भी सत्य के दर्शन किये थे और मानवता के कल्याण का एक स्वर्णिम स्वप्न देखा था। उस स्वप्न को वह सत्य में परिणत करना चाहता था इसी को उसने अपनी चिंतनधारा द्वारा अपने ग्रंथ 'The Capital' में व्यक्त किया। इसीलिये मैं तो इस महान ग्रंथ को मानवता का एक महाकाव्य समझता हूं। कोई भी व्यक्ति मानवता के मन्दिर में जनकल्याण के परिमल से सुरभित अपने प्रगतिशील तथा

क्रांतिकारी भावों के पुष्प चढा सकता है फिर उसमें मार्क्सवादी तथा अमार्क्सवादी ही क्या ? जैसे प्रकाश को डिब्बों में बंद नहीं किया जा सकता वैसे ही सत्य को भी किसी वादविशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता है पर लगता है इस युग के कुछ साहित्यिक इसी दिशा मे धुएँ की मुठ्ठियां भर रहे हैं। इस संकीर्णता से भरे हुए so-Callod प्रगतिवाद को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि जैसे कुछ राजनैतिक गुटबंदी के नेता कम्यूनिज्म के ऊंट के गले में प्रगतिवाद की घंटी बांधने का प्रयत्न कर रहे हों।

साहित्य में यह युग ऐसा लगता है कि जैसे उस संक्रांति काल का प्रभात हो जहां एकधारा दूसरी धारा से मिलती है। क्षितिज पर अनेकों तारे तथा तारिकायें हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें से कौन सूर्य और चंद्रमा बनकर साहित्य के प्रांगण में प्रकाश रश्मियां बरसायेंगे।

९ जनवरी १९५० सोमवार

आज प्रभात काल मे श्री इलाचन्द्रजी जोशी से भेंट हुई।। कल मैंने 'संगम' में उनकी 'पथरेखा' म उनके 'प्रगतिवाद' के विषय में कुछ विचार पढे थे। मैंने उसकी बात उठाते हुए उनसे कहा " आपने-अपना दृष्टिकोण बडे ही सरल और सुंदर ढंग से रक्खा है।"

"मैं तो इस संबंध में अपने विचार अनेक बार व्यक्त कर चुका हूं। वे तो मेरे मनोभाव थे।" जोशी जी बोले।

"मनोभावों में बहुधा विचारों से अधिक सत्य निहित होता है, क्योंकि मनोभाव unconcious होते हैं और विचार concious." मैंने कहा।

उन्होंनें मेरा निरालाजी पर लिखा हुआ 'देशदूत' मे प्रकाशित रेखाचित्र पढा। वह उन्हें पसंद आया।

संध्या को 'मानव' जी से भेंट हुई। प्रायः इनसे भेंट होती रहती है। जीवन से, मन से और प्राणों से यह व्यक्ति केवल साहित्यिक है, कलाकार है। इनसे जीवन की और मनकी भली बुरी सभी बातें होती हैं पर जब साहित्यिक वार्तालाप चलता है तो कभी कभी मुझे तो ऐसा लगा है कि जैसे दो प्राणों के तथा बुद्धियों के बीच एक अलौकिक रस प्रवाह बह रहा हो।

आज हम 'संगम' की ओर चले गये 'नौका विहार' का मन था, पर एक नाविक ने थोडी देर ही इधर उधर घुमा फिराकर इससे आगे चलने की असमर्थता प्रगट कर दी। कुछ बुरा लगा। फिर गंगा तट पर एक ओर एकांत में पडे एक तख्त पर आ बैठे। वातावरण बडा ही रोमानी लग रहा था। सामने एक ओर कुछ लोग गंगाजी की आरती उतार रहे थे। उसे देखकर 'मानव' जी बोले "एक दिन इस सब में मेरी कितनी श्रद्धा थी पर आज यह मुझे एक ढोंग के अतिरिक्त कुछ नहीं लगता।"

मैंने पूछा 'ऐसा क्यों ?'

इस पर उन्होंने उत्तर कुछ नहीं दिया और वे कुछ उदास हो गये, अब मैं सोचता हूँ कि क्या वह उदासी एक स्पष्ट उत्तर नहीं था'

फिर सामने एक स्त्री गंगाकी लहरों में दीपक प्रवाहित कर रही थी। उसे देखकर मानवजी बोले-"भला अब इस सबका क्या अर्थ है ? कभी अतीतकाल में एक प्रथा रही होगी कि दीप प्रवाहित कर दिये जायें जिससे भूली भटकी नौका उस झिलमिल प्रकाश में अपना मार्ग देख सके और नाविक समझें कि यहीं कहीं पास में मनुष्य बसते हैं, पर अब यह एक रूढि मात्र रह गई है।"

रात अधिक होती आ रही थी। हम घर को चल दियें। रास्ते में यशपाल के नव-प्रकाशित कहानीसंग्रह "फूलों का कुरता" की बात चली। इस कहानी सं ह को मैंने भी पढा था। मैंने कहा कि इन कहानियों को विश्व की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में रक्खा जा सकता है। मानवजी भी इससे सहमत थे। इन कहानियों में लेखक ने बडी ही व्यंजनापूर्ण रीति से यह बतलाया है कि समय और परिस्थिति की धारा से दूर जा पडी हुई रूढि पालन करने में ही मानवता को नग्नता और निर्लज्जता का लक्ष्य बनना पडता है पर उस रूढि को तोडकर युग और समय के साथ कदम रखने में उसकी रक्षा होती है। कहानी इस प्रकार है- 'फूलो एक पांच वर्ष की पहाडी ग्रामीण बालिका है। उसकी पास के ही एक सात वर्ष के ग्रामीण बालक से सगाई हो गई है। एक दिन वह बालक उधर आ निकलता है जिधर शरीर पर केवल एक कुर्ता ही पहने हुए फूलो खेल रही थी। फूलो के साथी उसे देखकर 'फूलो का दुल्हा, फूलो का दुल्हा' कहकर [illegible] हैं। पांचवर्ष की फूलो गांव के रूढिगत

शिष्टाचार के पालन में कुर्ते का छोर उठाकर अपना मुंह छिपा लेती है और इस प्रकार इस रूढि के पालन में वह नीचे से नंगी हो जाती है।"

इसी संग्रह में संग्रहीत दो कहानियों पर और बात उठी। ये दोनों कहानियां Sex-Problem पर थीं। एक कहानी थी "धर्म-रक्षा" और दूसरी थी "प्रतिष्ठा का बोझ"। पहिली में लेखक ने दिखाया था कि एक प्रोफेसर साहब अपनी लडकी को एक नौकर के साथ देखकर उसे क्रोध में मारने दौडते हैं और मारते ही मारते में उसके शरीर के स्पर्श में रस लेने लगते हैं और फिर कामातुर हो जाते हैं और अपनी ही लडकी के साथ व्यभिचार को अग्रसर होते हैं। मैंने कहा कुछ विशेष परिस्थितियों में यह बात संभव है और इसलिये यह एक यथार्थवादी चित्रण हुआ। मानवजी को विशेष आपत्ति इस बात पर थी कि लेखकने इस घटना को इस प्रकार चित्रित किया है कि पाठक पर अच्छा प्रभाव नहीं पडता। लगता है कि लेखक लिखते लिखते जैसे घटना में स्वयं रस लेने लगा है। यही आपत्ति उन्हें दूसरी कहानी "प्रतिष्ठा के बोझ" पर भी थी। उसमें लेखक ने यह दिखलाया है कि एक व्यक्ति सासद्वारा बहू के साथ व्यभिचार करता हुआ पकडे जाने पर बहू को छोडकर सास पर टूट पडता है। यशपाल की मैंने थोडी सी ही कहानियां पढी हैं। इस लेखक में परिस्थिति चित्रण तथा व्यंजनात्मक और कलात्मक ढंग से तीखा व्यंग करने की अद्भुत शक्ति है।

रात को नौ बजे के लगभग मैं घर आ गया और अब बैठा हुआ यही कुछ लिख रहा हूं।

रोइए मत-हंसिए ! ग्राहक बनिए !!

प्रधान सम्पादक
बेढब बनारसी
सम्पादक
गोविंदप्रसाद केजरीवाल

'करेला'
(हास्य-व्यंग्य प्रधान अनूठा पाक्षिक पत्र)
वा. मू. ४।।) एक प्रति ≡)

प्रकाशक
युगाश्रय प्रेस
विश्वेश्वरगंज
बनारस

शुभ सम्मतियाँ

(१) दैनिक नवभारत टाईम्स, बम्बई। " करेला " का पहला अंक ऐसा है जो दूसरे अंक के प्रति उत्सुकता जागरूक कर देता है। यह अपने प्रयत्नों कि सजगता से हिंदी में हास्य रस की वर्षा करने लगे तो इस बात को दुहराने की आवश्यकता न रह जायगी कि हिंदी में हास्य रस की कमी है।"

(२) हास्य सम्राट श्री. जी. पी. श्रीवास्तव। "आपका 'करेला' वास्तव में हास्यमय, हृदयग्राही, विनोद तथा व्यंगपूर्ण है। मैं हृदय से इसकी सफलता चाहता हूं।"

(३) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, काशी विश्वविद्यालय। " 'बेढब' जो जैसे विनय और सरस साहित्यिक के हाथों लगे पौधे से ऐसे ही फल की आशा है।"

रेलवे स्टेशनों पर व्हीलर के बुकस्टाल पर 'करेला' खरीदें

"जनता के मानसिक एवं बौद्धिक स्तर का विकास तथा देश की उन्नति तथा प्रगति देश के उत्तम साहित्य पर निर्भर है ।"

हमारे कलात्मक प्रकाशनों का सदा से यही लक्ष्य रहा है और इसी आदर्श को लेकर हमने कतिपय पुस्तकें प्रकाशित की हैं ।

हमारे प्रकाशन :—

कल्पना-कानन

(लें० :– श्री ब्रिजलाल बियाणी)

यह पुस्तक बियाणीजी की सूक्ष्म विचार रेखाओं तथा कल्पना के रंगों से युक्त, सरस तथा भावपूर्ण ११ रेखाचित्रों का सुंदर संकलन है । पुस्तक सचित्र सजिल्द; गेट–अप कलात्मक एवं सुरुचि पूर्ण ।

मूल्य २),

जेल में

(लें० :–श्री ब्रिजलालजी बियाणी)

बाहर की दुनिया से तो सभी परिचित हैं पर जेल की दुनिया से कोई कोई ही । उस दुनिया से परिचित होने के लिये जेल की मार्मिक अनुभूतियों तथा संस्मरणों से पूर्ण श्री ब्रिजलालजी बियाणी द्वारा लिखित 'जेल में' पुस्तक को आज ही मंगाकर पढिये । पुस्तक सचित्र, सजिल्द, गेट–अप कलात्मक एवं सुरुचिपूर्ण ।

मूल्य ३)

'कल्पना कानन' और 'जेल में' इन दोनों पुस्तकों के मराठी संस्करण भी प्राप्य हैं ।

सेवेचा सागर (मराठी)

(लें० :–डॉ. कृष्णमूर्ति)

जब मनुष्य का जीवन अपने 'स्व' के दायरे से ऊपर उठकर समाज और राष्ट्र के क्षेत्र में लय होने लगता है तो उसकी सेवा का क्षेत्र भी दिन–दिन व्यापक और विराट होता जाता है । माननीय ब्रिजलालजी बियाणी की समाज राष्ट्र, राजनीति, और साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में की गई सेवाओं से देश भली भाँति परिचित है । डा. कृष्णमूर्ति ने अपनी इस पुस्तक में उनकी इन्हीं सर्वांगीण सेवाओं के अपार समुद्र को बाँधने का प्रयत्न किया है । मा० बियाणीजी के जीवन, विचार, दर्शन और कार्यों को जानने के लिए आज ही इस पुस्तक को मंगाकर पढ़िये । पुस्तक–सचित्र, सजिल्द एवं गेटअप-कलात्मक तथा सुरुचिपूर्ण । **मूल्य ॥)**

भावना–परिमल (हिंदी)

(सं० :–आचार्य इंद्र नारायण गुर्टू)

प्राणी का भावलोक भी बडा ही रहस्यमय है । इसको जानने के प्रयत्न दार्शनिकों द्वारा आदिकाल से होते आये हैं । हिंदी के प्रसिद्ध विद्वानों ने भी इससे संबंधित विषयोंपर अपनी लेखनी उठायी है । श्री आचार्य इंद्रनारायणजी गुर्टू ने इस पुस्तक में ऐसे ही उच्च कोटि के भावपूर्ण निबंधों का संपादन किय है । पुस्तक सचित्र, सजिल्द, एवं गेटअप कलात्मक तथा सुरुचिपूर्ण ।

बुकसेलर्स को प्रत्येक आर्डरपर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा । १००) से अधिक मूल्य की पुस्तकें एक साथ मंगानेपर ३३ प्रतिशत कमीशन देंगे ।

मूल्य ५)

मिलने का पता :–**व्यवस्थापक 'हिंद प्रकाशन' राजस्थान–भवन**, अकोला (म. प्र.)

आधुनिक हिंदी और मराठी साहित्य

श्री व्योहार राजेंद्रसिंह

साहित्य तो मानव-चेतना का आलोक-पुंज मात्र है, जो विभिन्न भाषाओं के माध्यमों से व्यक्त होता आया है । मानव प्रकृति मूलतः एक होने के कारण देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्य में ही नहीं वरन् विभिन्न देशों की साहित्य धाराओं में भी समता मिलती है । इस लेख में विद्वान् लेखकने हिंदी और मराठी साहित्य का संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

मराठी गद्य साहित्य का प्रारंभ हिंदी गद्य के बहुत पहिले प्रारंभ हो चुका था । सबसे पहिले संवत १०४० के शिलालेख में इसका उदाहरण मिलता है । किंतु उसका विकास १५ वीं सदी में हुआ । और उसका सौभाग्य भी विदर्भ प्रांत को मिला । संवत १४१० में लिखित ऋद्धिपुर वर्णन उस समय के गद्य का एक उदाहरण है । पद्य साहित्य के समान गद्य साहित्य के विकास में भी महानुभाव पंथ का विशेष हाथ रहा है । इधर हिंदी साहित्य में वल्लभ सम्प्रदाय को गद्य साहित्य के प्रारंभ करने का श्रेय है । ८४ वैष्णवों की वार्ता इसका एक विशेष उदाहरण है ।

किंतु असली गद्य साहित्य का विकास अंग्रेजों के आगमन के बाद ही हुआ । और उसका प्रारंभ दोनों ही भाषा में पाठ्य पुस्तकों से हुआ । मराठी साहित्य में श्रीकृष्ण शास्त्री चिपळूणकर आदि विद्वानों ने जो कार्य किया उसी प्रकार हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र और राजा शिवप्रसाद ने वही कार्य किया । राष्ट्रीय तथा सामाजिक आंदोलनों का प्रारंभ ही से दोनों साहित्यों पर बडा प्रभाव रहा । अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप विदेशी साहित्य का भी प्रभाव दोनों साहित्योंपर पडा जो कि उसके काव्यों, कहानियों और उपन्यासों पर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है । राजनीतिक क्रांति के फलस्वरूप स्वदेशी मादक द्रव्य निषेध, अस्पृश्योद्धार आदि सामाजिक सुधार संबंधी कार्यक्रम तथा स्वराज्य, स्वदेशी और विदेशी वस्तु बहिष्कार के आंदोलनों का प्रभाव साहित्य पर पडे बिना न रहा । राष्ट्रीय चेतना का जागरण हिंदी साहित्य में हरिश्चंद्र और प्रतापनारायण ने किया और दक्षिण में सावरकर, गोविंद कवि और यशवंत ने किया । उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द सरस्वती और दक्षिण में रांनड़े आदि ने किया । उधर राजनीतिक नेतृत्व लोकमान्य तिलक के हाथों में आने से राजनीतिक साहित्य के निर्माण में "केसरी" और "मराठा" पत्रों ने महान कार्य किया ।

काव्य साहित्य में अंग्रेजी कवि शैली और कीट्स के प्रभाव से प्रेरित होकर जिस धारा का प्रारंभ केशवसुत ने किया उसी को आगरकर, तिलक और गोखले ने आगे बढाया । इधर हिंदी साहित्य में रवींद्रनाथ ठाकुर के प्रभाव से छायावाद का उदय हुआ । इन धाराओं की प्रतिक्रिया भी बराबर चलती रही । स्वयं केशवसुत के शिष्य गडकरी अथवा गोविंदाग्रज ने कल्पना के बदले बुद्धिप्रधान और तर्कपूर्ण काव्य प्रणाली को अपनाया । हिंदी में यह प्रणाली पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि नें प्रारंभ की थी और उसके प्रतिक्रिया स्वरूप छायावादी कविता का प्रारंभ देखने को मिलता है ।

दोनों भाषाओं के काव्य साहित्य की तुलना करें तो अर्वाचीन काल में दोनों ही में हमें प्राकृतिक सौंदर्य, प्रणय गीत, नारी सौंदर्य आदि वासनात्मक कविताओं की अधिकता मिलती है। इसके विपरीत जो आदर्शवादी और राष्ट्रीयता–मूलक धारा श्री चिपलूणकर और आगरकर ने आरंभ की थी उसका अंत उन्हींके साथ हो गया; ऐसा मराठी इतिहासकार कहते हैं ; किंतु हिंदी में जिस राष्ट्रीयता की धारा को प्रवाहित किया गया था उसे श्रीधर पाठक, हरिऔध नें पुष्ट किया और उसे मैथिलीशरण गुप्त तथा दिनकर आदि कवि आज अक्षुण्ण बनायें हुये हैं ।

कहानी और उपन्यास साहित्य की ओर यदि हम दृष्टिपात करें तो पता लगेगा कि मराठी और हिन्दी

दोनों में इनका प्रारंभ विदेशी साहित्य के प्रभाव से हुआ। सर्व प्रथम श्री विष्णु शास्त्री ने संस्कृत और अरबी कथा साहित्य को मराठी में अनूदित किया। उसके बाद भी अंग्रेजी, फरासीसी और चीनी भाषाओं के अनुवाद होने लगे। इसके बाद बंगला साहित्य का प्रभाव भी दोनों भाषाओं पर पडा। शायद मराठी की अपेक्षा हिंदी में बंगला उपन्यासों के अधिक अनुवाद हुए। उसके साथही जिस प्रकार हिंदी में हरिभाऊ आपटे, वामन मल्हार जोशी और श्री खांडेकर के उपन्यासों के अनुवाद होने लगे।

इसी प्रकार मराठी में भी श्री प्रेमचंद और सुदर्शन की कहानियों और उपन्यासों के अनुवाद प्रकाशित हुए।

हम अनुवादों की आवश्यकता को अनुभव करते हुए भी मौलिकता के पक्षपाती हैं क्योंकि मौलिक कहानियों और उपन्यासों ही के द्वारा किसी प्रदेश की विशेष संस्कृति और सामाजिक परिस्थिति तथा विचार धारा का पता लगता है। हिंदी में बंगला साहित्य के अनुवादों की ओर दृष्टि रहने से उसमें मौलिकता का अभाव सा हो रहा था। उसकी कुछ पूर्ति श्री प्रेमचंद वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, श्री सुदर्शन और अज्ञेय द्वारा हुई हैं। किन्तु वह मराठी के सर्व श्री फडकें, खांडेकर, बोरकर और केलकर आदि की आदर्शवादिता क्रान्तिवादिता और हृदयग्राही शैली तक नहीं पहुंच सकी।

मराठी का नाटच-साहित्य भारतीय साहित्य में विशेष स्थान रखता है। संवत १९०० के पौराणिक और संस्कृत नाटकों के अनुवाद से जो परंपरा कृष्ण शास्त्री राजवाडे ने प्रारंभ की उसी प्रकार का प्रयत्न हिंदीमें भारतेंदु हरिश्चंद्र, राजा लक्ष्मणसिंह और सत्यनारायण कविरत्न ने किया। उसके बाद सर्वश्री किर्लोस्कर, देवल, कोल्हटकर, खाडिलकर और गडकरी ने सामाजिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा में अपना प्रचुरदान और मौलिक उद्भावना तथा कल्पना तथा व्यंग, वक्रोक्ति और विनोद का समुद्र जो उंडेल दिया, वह किसी भी दूसरी भारतीय भाषा के साहित्य में दुर्लभ है। हिंदी में भी हाल ही में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेंद्रनाथ अश्क और उदय शंकर भट्ट ने अपने नाटकों और एकांकियों द्वारा बहुत कुछ मौलिकता और नवीनता का सृजन किया है। तो भी मराठी साहित्य की नाटचकला बोलचाल की भाषा, संवादों की स्वाभाविकता तथा घटनाओं की नाटकीयता उसके Climax (चरम सीमा) तथा Anti Climax (विलोम चरम सीमा) लानें में हिंदी नाटककारों को अभी वर्षों लगेंगे। भाषा विज्ञान के विषय में भी मराठी साहित्य बहुत बढ़ा चढ़ा है। यदि केवल व्याकरण ही को लें तो मराठी में उसका प्रारंभ बहुत पहले हो चुका था। मराठी के सर्वप्रथम व्याकरणकार भास्कर कविराज व्यास श्री ज्ञानेश्वर के समकालीन थे जिन्होंने कि ज्ञानेश्वरी में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है!

> '' मूल व्याकरणा चेनि आधारें।
> सुभांषा निबंधु बोलिला कवीश्वरे।
> श्री भास्करे गोपाला आज्ञापलें।
> ते लक्ष्मण रत्नाकर बोलिलें ।।''

इन पक्तियों से व्यास के अतिरिक्त लक्ष्मण रत्नाकर नामक व्याकरणकार का भी पता चलता है। व्यास के ग्रंथ स्वभाषा निबंध यद्यपि अब अप्राप्य हैं तोभी उनकी परंपरा स्थिर है। इसके बाद अनेक व्याकरणकार हुए जिन्होंने मराठी के प्रामाणिक व्याकरण निर्माण किये। यहांतक कि पेशवा काल में एक मराठी व्याकरण संस्कृत के सूत्रों में लिखा मिलता है। व्याकरण के इतिहास में फडके पांडुरग तथा कृष्ण शास्त्री गोडबोले का नाम सदा अमर रहेगा। मराठी की तुलना मे यदि हम हिंदी पर दृष्टि डालते हु तो भाषा भास्कर के लेखक पादरी साहब के अतिरिक्त पंडित कामताप्रसाद गुरु काही नाम मिलता है। उनकें बाद 'अनामिका सा!र्थवती बहूव ही कहना पडता है। अभी श्री किशोरदासजी वाजपेयी का भी एक व्याकरण निकला है। कोषों के क्षेत्र में भी मराठी साहित्य अग्रगण्य जाव पडता है। आपटे के शब्द रत्नाकर और चित्रशाला के सरस्वती कोष के बाद प्रोफेंसर गज्जरने एक बृहत कोंष की रचना प्रारंभ की। इन सबसे बढकर मराठी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रशाशित बृहन महाराष्ट्र शब्द कोष सात आठ भागों में प्रकाशित हुआ जिसमें शिलसिलेवार प्राचीन कवियों और काव्यों, इतिहास, साहित्य, नाटच, संगीत और नृत्यकला आदि सभी शास्त्रीय विषयों का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त विग्रह कोष, विपत्ति. प्रदीप, प्राचीन ऐतिहासिक कोष तथा प्राचीन चरित्र कोष आदि ऐसे महत्वपूर्ण विशिष्ट कोष हैं जिनकी बराबरी का हिंदीं में भी कोष नहीं। इनके अनुकरण

पर हिंदी मे कोषों की रचना करना परम आवश्यक है। विश्वकोष के नाते महाराष्ट्रीय ज्ञान कोष सबसे महत्वपूर्ण है जिसके समकक्ष हिंदी विश्वकोष कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त व्यवहारिक ज्ञान कोष, महाराष्ट्रीय वाङमय सूची, संतकाव्य सूची नाम कोष, धर्मकोष, शासन कल्पतरु, विज्ञान बोध आदि कोषों के अनुकरण पर हिंदी मे भी कोष निर्माण आवश्यक है। मराठी के लिये हिंदी में यदि कोई गौरवपूर्ण और अनुकरणीय कोष है तो वह है काशी नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित "हिंदी शब्द सागर"।

साहित्य शास्त्र पर मराठी के समान हिन्दी में प्रारंभ काल ही से रस और अलंकार पर ग्रंथरचना होती आई है और आधुनिक काल में गद्य में भी अच्छे अच्छे ग्रंथ लिखे गये हैं। हिंदी में एक विषय ऐसा है कि जिसपर रीतिकाल में इतनी अधिक रचनायें हुई हैं कि उसका एक अंश भी मराठी में देखने को नहीं मिलता और वह विषय है नायिका भेद।

आलोचनात्मक साहित्य में आधुनिक कालमें हिंदी ने जितनी प्रगति की है, सचमुच गौरव की बात है महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्री रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदरदास, गुलाबराय, नगेंद्र आदि आलोचक मराठी के पांगारकर, आजगांवकर और केलकर आदि के समकक्ष आलोचना साहित्य में अपना स्थान रखते हैं।

हमारे देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि उसका इतिहास विदेशियों द्वारा लिखा गया। पराधीन देश का यही सबसे बडा अभिशाप है कि इतिहास विदेशी भाषा में विदेशियों द्वारा लिखा हुआ पढना पडे। अन्य प्रांतों के समान महाराष्ट्र का भी यही हाल हुआ कि उसका इतिहास बेलरिंग, स्पेगल और ग्रेडफ ने लिखा और उनका अनुवाद मराठी में किया गया। किंतु इस क्षेत्र में अन्य प्रांतों की अपेक्षा महाराष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना सबसे पहिले जागी और उन्होंने अपनी भाषा में अपनेदेश का इतिहास लिखने का प्रथम प्रयास किया। श्री चिटनीस नें बखरों के आधार पर, श्री भिडे नें सतारा दफ्तर की सामग्री के आधार पर अष्टप्रधान ग्रंथ की रचना की । किन्तु इतिहास लेखन का वास्तविक प्रारंभ श्री विष्णू शास्त्री चिपलूणकर ने ही किया। फिर तो इतिहास लेखकों की परंपरा ही चल पडी। और उस परंपरा में श्री पारसनीस, वासुदेव शास्त्री खरे, श्रीराजवाडे और सर देसाई के नाम मौलिक इतिहास लेखकों में अमर रहेंगे। इस दिशामें इतिहास संशोधक मंडल का काम भी उन्हींके साथ अमर रहेगा। हिंदी में इतिहास लेखन की यह परंपरा बहुत बाद में प्रारंभ हुई। किंतु उसकी विशेषता यह रही कि उसमें किसी प्रांत विशेष में सीमित न रहकर सारे देश की एकता की दृष्टि से इतिहास लिखा गया।

"किसी व्यक्ति के विषय में क्या कहा जाता है यह महत्व की बात नहीं। महत्व की बात यह है कि कहनेवाले कौन है।"

— आस्कर वाइल्ड

गीत

किसी ने छेडा मन्द सितार
हिया में ऐसा आता है,
यहाँ बज उठे हृदय के तार
बाँसुरी कौन बजाता है ?

हवा की हल्की हल्की चाल–,
हिलाती हौले--हौले डाल–,
विवशमन हो जाता बेहाल
गरल में भीगा मेरा प्यार
मुझे भरमाता जाता है,
यहाँ बज उठे हृदय के तार
बाँसुरी कौन बजाता है ?

अधूरी आशाओं की आह,
हृदय के सागर की चिरथाह–,
विकल भर देतीं मुझमें दाह,
छलकते नयनों का उपहार
दुलार रुलाता जाता है,
यहाँ बज उठे हृदय के तार
बाँसुरी कौन बजाता है ?

ज़िन्दगी के स्वर सरगम साध,
स्वरों में सपने भरे अगाध,
गीत में लिए विगत गत बाँध
प्रणय का नहीं किन्तु आभार
प्राण पछताता जाता है,
यहाँ बज उठे हृदय के तार
बाँसुरी कौन बजाता है ?

— योगेन्द्रनाथ शर्मा

परिवर्तन

सुश्री वसंताग्रजा

सहानुभूति को प्राप्त करलेना बहुत सहज है किन्तु सहानुभूति को निरंतर बनाये रखना बहुत कठिन। सहानुभूति किन्हीं विशेष परिस्थितियों में कुछ क्षणों के लिये मन की अस्थाई स्थिति मात्र है। सहानुभूति में आकर्षण का स्थायित्व नहीं होता अतः सहानुभूति को प्रेम समझ बैठना भूल है। इन्हीं तत्वों की ओर संकेत करनेवाली यह कहानी है–परिवर्तन।

बहिन के यहां स्वादिष्ट भोजन करने के बाद प्रवास की लंबी थकावट मिटाने के लिये रवीन्द्र पलंग पर लेट गया। थका होने के कारण पलंग से पीठ लगाते ही उसे नींद आगई। आधा घंटा भी नहीं हुआ था कि पडोस में किसी के मार खाने की 'धपधप' आवाज उसे सुनाई दी। किसी बदमाश लडके को उपद्रव करने पर उसकी मां मारती होगी और अब इसके बाद भद्दे स्वर में रोना भी सुनाई देगा, ऐसा समझकर रवीन्द्र ने अपने कान उधर लगा दिये लेकिन आघात और रोनेवाली की आवाज से उसे अजीब सा लगने लगा। निश्चित ही मार खानेवाला व्यक्ति कोई परिचित और समझदार होना चाहिये। मार के बाद सिर्फ एक दीर्घ-निश्वास सुनाई पडा। उस अज्ञात व्यक्ति के लियें रवीन्द्र के दिल में सहानुभूति पैदा होगई। पडोस में किसी कामचोर की 'परेड' होरही थी। उस भाग्यहीन के लिये रवीन्द्र के मन में विचार चल रहे थे। इतने में ही शनिवार होने के कारण उसके बहिनोई आज जलदीं घर आगये। उसकी फूली हुई आंखों से पता लग रहा था कि नींद पूरी नहीं हुई। बहिनोईने कहा– "कहिये जनाब! निद्रादेवी प्रसन्न नहीं हुई शायद?"

जी नहीं, बम्बई में शांति नहीं मिलतीं, इसका अनुभव अभी से होने लगा है– रवीन्द्र ने उत्तर दिया। दोपहर की चाय और रात के 'शो' की गडबडी में भी रवीन्द्र दोपहर के उस प्रसंग की बात नहीं भूल सका कि वह व्यक्ति कौन था? उसे अपनें जीवन की बात याद आने लगी। एक बार सिर्फ उसनें अपनी मां के हाथ की मार खाई थी और उसका मन खट्टा होगया था। सोचने लगा कि यह व्यक्ति हमेशा यह त्रास कैसे सहन करता होगा। सच है, परवशता बुरी है। "देखना भैय्या, कल सुबह ठीक छः बजे के पहिले स्नान हो जाना चाहिये। जलदी उठना। ऊपर के कमरे में छः के बाद नल बन्द होजाता है।" रवीन्द्र तो आंखें फाडकर देखता ही रहा। भाई को इस तरह उपदेश देनेंवाली अब यह छः महीने पहिले की देहाती माला नहीं रही। मां यदि इस तरह का उपदेश करती तो रवीन्द्र मनपर नहीं लेता। अपने मित्रों में वह सूर्यवंशी कहलाता था क्योंकि सूर्य की किरणें उसपर पडती तभी वह उठता था। उसे गुस्सा भी आया किन्तु बम्बई की गर्मी के कारण स्नान करना आवश्यक भी था। जरा झल्लाते हुयें वह बिस्तर पर सोने चला गया किन्तु पडोस में 'क्लोज डाऊन' तक चिल्लानेवाला रेडियो और बडे बडे संगीतज्ञों को शर्मिन्दा करनेवाले रास्ते के भिखारी.... इन सबने मानो रवीन्द्र से बदला लेने का निश्चय कर लिया था।

कुछ नींद और कुछ जागते हुये किसी तरह उसनें दिन निकाल दिया। सोचने लगा कि यहां अपना कैसे निभाव होगा। वह बिस्तर से उठकर सीधा नलपर गया। वहां कुछ ओरतें अपने कपडे धो रही थीं। पास ही एक सोलह-सत्रह वर्ष की युवती टोकनी भर प्याले तश्तरी धो रही थी। उसकी धोती साधारण और पुरानी थी किन्तु व्यवस्थित ढंगसे पहिने हुयें थी। प्याले-तश्तरीं साफ करने के बाद कपडों का एक बडा ढेर भी उसके सामनें धोने के लिये पडा था।

रवीन्द्र से रहा नहीं गया और उसनें माला से पूछा कि यह लडकी कौन है। माला कुछ उदास होगई।

फिर उसने कहा कि पडोस में मुळेसाहेब रहते हैं। उनकी यह भतीजी है। मां मरगई और बाप शराब पीकर भटकता फिरता है। इस लडकी को दूसरों के टुकडों पर पलनें के लिये छोड दिया है।

काम करने में होशियार भतीजी के प्रति मुळे साहेब की सद्भावना बढती जारही थी क्योंकि उनकी खुदकी लडकी कामचोर और आलसी थी। थाटबाट से रहती और खूब खर्च करती थी। वह देखा करती थी कि मां की हुकूमत पिताजी पर चलती है और पिताजी एक शब्द भी नहीं बोलते। इसका असर लडकी पर भी हो रहा था। अपनी लडकी को जरा भी धमकाते तो उनकी पत्नी रूठना, बडबडाना और भूख हडताल तक कर देती। नतीजा यहा हुआ कि लडकी पिता की अवहेलना करने लगी। मुळे साहब की यह दूसरी पत्नी थी अत: गमखाने के सिवा कोई रास्ता नहीं था। जब से नीमा यह अनाथ भतीजी घर में आई है तब से मुळे साहेब का काम बडा व्यवस्थित होनें लगा है। पूजा की तैयारी से लगाकर ऑफिस जानेतक मुळे साहेब के सारे कामों की ठीक व्यवस्था नीमा किया करती थी।

कई बार रवीन्द्र ने इस नीमा को अपनी शक्ति से अधिक काम करते हुये नल पर देखा था। बडे बडे बर्तन वह शीशे की तरह साफ रखा करती थी। यदि एक कप भी नीमा के हाथ से फूट जाता तो मुळे साहब की पत्नी तडफ उठती और पचास बातें नीमा को सुनाती।

रवीन्द्र को यह सारी स्थिति कुछ विचित्र मालूम होरही थी। नौकरानी की भी घरमें कीमत होती है और वह शानसे रह सकती है किन्तु नीमा की हालत तो बहुत ही बुरी थी। मार और गालियों से वह इतनी दुखी नहीं हुई जितनी इस बात से कि एक युवक इस स्थिति में उसे देख रहा है। वह शर्म से गड गई। एक कप के लिये जब उसपर गालियों की बोछार होती और मार भी पडती तो अपनें जीवन के प्रति उसे घृणा होने लगती। नीमा की आंखों से आंसू टपक पडे। फिर क्या था? मुळे साहेब की पत्नी गरज उठी "क्या में तुझें खारही हूं? ये नखरे मुझे पसंद नहीं!"

इसके बाद माला द्वारा खबर मिली कि नीमा के विवाह की बात पक्की की जारही है। मुळे साहेब की पत्नी नें इसके लिये वेस्ट कंपनी के किसी ड्राइव्हर से बातचीत भी करली है। नीमा से वह पन्द्रह वर्ष बडा था और सो रुपयें मासिक वेतन पाता था। मुळे साहेब को यह सम्बन्ध पसंद नहीं था किन्तु औरतों की बातें वे क्या समझें? रवीन्द्र के चेहरे पर एक निश्चय और दृढता दिखाई दे रही थी। उसने अपना इरादा माला को बता दिया। माला की खुशी गायब होगई। उसनें तो अपनें एक मात्र उपाधिधारी भाई के लिये अपनी एक सहेली किशोरी से बात पक्की कर रखी थी। वह धनवान की लडकी थी अतः बहुतसा मान-पान और पैसा मिलने की भी संभावना थी। एक अनाथ लडकी से अपने भाई की शादी करवा देना माला को कैसे पसंद पडता; किन्तु रवीन्द्र के बहिनोई ने उसके त्याग की प्रशंसा की। रवीन्द्र की मा ने भी पत्र लिखा कि सोच विचार के बाद यदि निश्चय हुआ है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं चाहती हूं कि लडकी पढी लिखी हो लेकिन बाद में भी उसकी शिक्षा करवाई जासकेगी।

बाकायदा नियमानुसार रवीन्द्र ने नीमा की मांग करके विवाह निश्चित कर लिया। मुळे साहेब की पत्नी को यह सम्बन्ध पसंद नहीं था लेकिन लोकलज्जा की दृष्टि से चुप रहने के सिवा उसके लिये कोई रास्ता नहीं था। हर आदमी नीमा के भाग्य की सराहना कर रहा था कि उसे घर बैठे अच्छा वर मिला। कुछ मनचलों ने यह कहकर मजाक भी उडाया कि बम्बई का पानी बडा जल्दी लग गया। चाय के समय गप्पा मारते हुये बहिनोई नें सहज भाव से कहा कि इस विवाह से शांति होने के अपेक्षा कलह बढने की संभावना ही अधिक है। यह सुनकर रवीन्द्र तटस्थ रूप से हंस पडा।

भारी हृदय से अपने काका और काकी से बिदाई लेकर नीमा ससुराल आई। घर में सब लोग उसका आदर करते थे। नीमा के स्वास्थ्य का भी सभी घरके व्यक्ति ध्यान रखते थे। रवीन्द्र की छोटी बहिन नीला

रसशाला औषधाश्रम [रजि०]

गोंडल - सौराष्ट्र - काठियावाड

आयुर्वेदिक दो हजार प्रकार की औषधें बनानेवाल
४० सालका पुराना कारखाना सूचीपत्र मुफ्त।

पत्रव्यवहार उपर्युक्त पतेपर करें।

घरके काम में बहुतसा हाथ बँटाती थी। पहिले कुछ दिन तो नीमा को संकोच होता रहा लेकिन बाद में उसकी भावनायें एकदम बदल गई। वह सोचनें लगी कि काकी के यहां बहुत कष्ट सहन किया। क्या यहां भी में यही सब करती रहूँ। अब उसे यह कहनेवाला भी कौन था कि यह करो, वह करो! जब से नीमा आई है तब से नीला की भी इच्छा हुई कि स्कूल के कार्यक्रमों में कुछ विशेष भाग लिया करे। ऐसी स्थिति में कभी कभी नीमा पर काम का बोझ अधिक पड जाता था किन्तु अब वह काकी के हाथ के नीचे नौकरानी की तरह काम करनेवाली नीमा नहीं थी। अब वह एक उपाधिधारी की प्रौढा पत्नी निर्मला बन गई थी। घर का काम करना अब उसे नीचे दर्जे का मालूम होने लगा। वह सोचने लगी कि उसका जन्म सिर्फ घर में नौकरानी की तरह रहने के लिये नहीं हुआ है। उसे नीला से ईर्ष्या होने लगी कि उसकी तरह उसे स्कूल में जाने और इच्छा के मुताबिक घूमने को क्यों नहीं मिला।

इस परिस्थिति में एकबार दो मेहमानों के लिये भोजन बनाने को नीमा से कहा गया तो वह झल्ला उठी– "मुझे शायद यही काम है?" एक सुशील लडकी में यह परिवर्तन देखकर रवीन्द्र चकित रह गया। प्यार के शब्दों में रवीन्द्र ने पत्नी से कहा– "क्या तुम्हारी मदद करने को उसकी इच्छा नहीं है? उससे काम नहीं होता इसीलिये तुमको आजकल काम करने को कह दिया जाता है। तुमको तो यह काम संकट नहीं मालम होना चाहिये।

नीमा ने उसी झल्लाहट से उत्तर दिया– "हाय भगवान! इनकी भी यही इच्छा है कि में नोकरानी की तरह काम करूं! विवाह के पहिले भी सुख नहीं मिला। सोचा था कि इस बडे घर में आकर शान से रहूंगी किन्तु वह आशा निष्फल हुई। मुझे सिर्फ नोकरानी समझा जायगा, यह मुझे पहिले मालूम होता तो में आपसे विवाह ही नहीं करती।" रवीन्द्रनें सोचा नहीं था कि उसे इस प्रकार का उत्तर मिलेगा। वह हक्काबक्कासा होकर पत्नी के मुख की ओर देखता रह गया! उसकी आंखों में बहिनोई के इन शब्दों का भविष्य दिखाई देरहा था कि इस विवाह से शांति की अपेक्षा कलह होने की ही अधिक से संभावना है।

"जैसे नाफे में कस्तूरी जन्म लेती है अपनी स्वाभाविक महक के साथ या जैसे अखरोट में गिरी पैदा होती है, वैसे ही लोकगीत की सीपी में कविता का मोती जन्म लेता है।"

अज्ञात

पुलगांव काटन मिल्स लिमिटेड

मैनेजिंग एजंटस्

हरदयाल सन्स
५९ अपोलो स्ट्रीट फोर्ट बम्बई
तारका पताः-गौरीसुत
टेलीफोन नंबरः-२४३८९

पुलगांव सी. पी.
तारका पताः-गणेश
टेलीफोन नंबरः--३ औ ५

हमारे यहां सुंदर सस्ती एवं मजबूत हर तरह की रंगीन प्लेन, मार्बल, मोझीक, सीमेंट की टाइल्स, नालियाँ, जालियाँ पाइप्स, सेनीटरी वेअर्स हमेशा तैयार स्टॉकमें मिलती हैं।

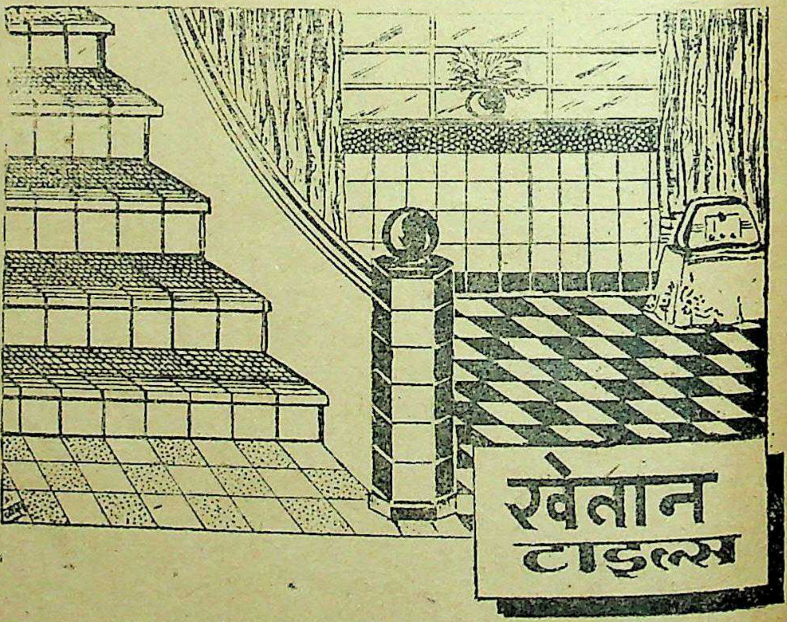

ऑफिस वा शो रूम---

खेतान इंडस्ट्रीज, कॉटन मार्केट, अकोला (म. प्र.)

प्रतिध्वनियाँ..............?

(पाठकों के जीवन और साहित्य संबंधी प्रश्नों के उत्तर)

लखनऊ से रमेश मेहता पूछते हैं कि 'प्रेम और वासना में क्या अंतर है?'

उत्तरः– भाई मेहताजी, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए एकबार श्री जैनेंद्रकुमार जैन ने कहा था कि प्रेम संपूर्ण व्यक्तित्व से संपूर्ण व्यक्तित्व को किया जाता है, पर वासना में व्यक्तित्व का कुछ भाग बचाकर रख लिया जाता है, अछूता रह जाता है।'' में भी जैनेन्द्रजी के उत्तर से सहमत हूँ।

इलाहाबाद से मालती वर्मा पूछती हैं कि प्रेम विवाह प्रायः असफल क्यों रहते है ?''

उत्तरः– मालती बहिन ! वैवाहिक जीवन तो दो व्यक्तियों के मन, बुद्धि, स्वभाव एवं व्यवहार का सहचार एवँ सामंजस्य है। प्रेम के आरंभ में पुरुष और नारी दोनों अपने अपने व्यक्तित्व के गुणों एवं सबलताओं को ही एक दूसरे के सम्मुख फेंकते हैं। प्रेम का प्रासाद एक दूसरे के गुणों तथा सबलताओं की नीव पर बनता है; पर विवाह के उपरांत जीवन में एक दूसरे के अधिक पास आजाने पर एक दूसरे के व्यक्तित्व की दुर्बलतायें तथा विषमतायें भी सामने आती हैं। तब हमारे प्रेम का प्रथम चित्र यदि अपने में इन विसंवादी रेखायों को खपा सका तो ठीक है नहीं तो परिणाम असफलता ही होता है। व्यक्तित्वों के एकांगी चित्रपर आधारित प्रेम विवाहों का प्रायः असफल होना स्वाभाविक ही है।

जयपुर से कृष्णदास जी व्यास पूछते हैं कि साहित्य स्रजन की प्रेरणा प्रायः नारी क्यों रही है ? नारी ने साहित्य स्रजन में स्वयं पुरुष के बराबर योगदान क्यों नही दिया ?

उत्तर :– नहीं व्यासजी, पुरुष के लिए जिस प्रकार प्रायः नारी साहित्य स्रजन की प्रेरणा रही है वैसे ही नारी के लिए साहित्य स्रजन की प्रेरणा पुरुष रहा है। नारी और पुरुष जीवन में एक दूसरे के पूरक होनेके कारण, साहित्य स्रजन में एक दूसरे की प्रेरणा बन जाते हैं। पर प्रेरणा देने वाली वस्तुएँ अन्य भी हो सकती हैं। पता नहीं किस दिशा से आलोक आकर हमारी चेतना को साहित्य के साँचे में ढाल दे।

साहित्य स्रजन में भी महिलाओं ने पुरुष से कम योगदान नहीं दिया। विशेष जानकारी के लिये श्रीमती शचीरानी द्वारा संपादित 'प्रवाह' का महिला साहित्यकारांक पढिये।

औरंगाबाद से श्री नंदकुमार शाह पूछते हैं 'प्रगतिवाद का साम्यवाद से क्या संबंध है?'

उत्तरः– भाई नंदकुमारजी ! मार्क्सवादी दर्शन का राजनैतिक संस्करण साम्यवाद है और उसका साहित्यिक संस्करण प्रगतिवाद।

प्रश्नः– क्या यह आवश्यक है कि प्रगतिवादी लेखक साम्यवादी हो ही?

उत्तरः– नहीं। पर हाँ, उसे मार्क्सवादी दर्शन का अध्ययन और ज्ञान अवश्य होना चाहिये।

बंबई से कुमारी मनमाडे पूछती हैं "क्या शरच्चन्द्र अनैतिकता के पक्षपाती थे ? क्या उन्होंने अपने उपन्यासों में पापों की वकालत की है ?''

उत्तरः– नहीं बहिन, शरच्चन्द्र तो मानवता के पक्षपाती थे, अनैतिकता के नहीं। श्री अजरुद्दीन द्वारा प्रकाशित एक पुराने रेकॉर्ड से पता लगता है कि सन् १८२८ में जब शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय एकबार मिदनापुर गये तो एक साहित्यिक चर्चा में किसी ने उनसे पूछा–

" आपने हमारे पुराने पवित्रता के विचारों में एक क्रांति ला दी है। क्यों ?''

इसपर शरच्चन्द्र ने उत्तर दिया–

"क्रांति में नहीं लाया, वह तो समय के साथ आई है। मैंने तो केवल उसे अभिव्यक्ति मात्र दी है। को विचार केवल इसीलिये अच्छा नहीं होता कि वह युग

युग से चला आया है। हमेशा के लियें कोई भी बात सत्य नहीं होती। पवित्रता समग्र मानवता का केवल एक हिस्सा मात्र है। फिर वह मानवता से कैसे बडा हो सकता है।?"

इसी नैतिकता के प्रश्न पर चर्चा आगे बढी। किसी ने उनसे पूछा,

"क्योंकि, पुरुष जो मन में आता है, करता है और अपने को बरबाद कर डालता है तो क्या स्त्रियों को भी वैसा ही करने देना चाहिये ?"

शरदच्चन्द्र ने उत्तर दिया, " आपको दूसरे से वह अपेक्षा रखने का क्या अधिकार है जो आप स्वयं नहीं हैं ?"

" क्या पाप और गलतियों का पुरस्कार घृणा नहीं होना चाहिये ? " किसी दूसरे ने पूछा । इसपर शरच्चन्द्र बोले " शायद ।" और आगे कहा-" पर इस से मेरा मन दुखता है जब में सोचता हूँ कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से घृणा करे।... मैं किसी को भी दंड नहीं दे सकता । न हो, कि मुझे कभी अपने साहित्य में किसी मानव आत्मा को गिराना पडे " और फिर भावावेश में आगे बोलते रहे-

"भय की विरासत तो हमें अनंतकाल से मिली है। अपराधी को फांसी पर चढाने का दंडविधान भी सरकार के पास है। पर लोग फिर भी कत्ल का अपराध करते हैं?... मुझे राजा और राक्षसों के पुराने किस्से जिनमें राजा पूर्णतया अच्छा होता था और राक्षस पूर्णतया बुरा, नहीं लिखने हैं। मैं तो जो सच है वह क्यों न कहूँ ? कोई भी लेखक कभी कुछ नहीं लिख सकता यदि वह सोचता रहे कि कौन उसके विषयमें क्या कहेगा।"

संचालकः-
श्री ब्रिजलाल बियाणी

प्रवाह

राष्ट्रभाषा का उत्कृष्ट मासिक
प्रत्येक मास की १ तारीख को
प्रकाशित होता है ।

★ राजस्थान भवन, अकोला ★

प्रवाह का लक्ष्य और साधनाः--

१ 'प्रवाह' साहित्य क्षेत्रमें से प्रवाहित होकर जीवन की हर धारा में बहना चाहता है । जीवन के सारें छोटे मोटे हिस्सों को वह स्पर्श करना चाहता हैं ।

२ 'प्रवाह' ने साहित्य एवं समाज की ठोस सेवा करने के लिए जन्म लिया है ।

३ 'प्रवाह' जीवन के स्थायी निर्माण की ओर प्रयत्नशील एवं जागरूक है-वह ऐसे निर्माण के लिये प्रयत्नशील हैं, जो सत्यं, शिवं, सुंदरम् की ओर गतिशील हो ।

४ 'प्रवाह' बीते का निरीक्षण करता है-वर्तमान को व्यवस्थित करता है और भविष्य को गढ़ता है-अनुरूप रूप देता है ।

कुछ विशेष स्थायी स्तंभः--

१-सम्पादकीय विचारधारा-महीनें की महत्वपूर्ण घटनाओं का निष्पक्षता और निर्भीकतापूर्वक विवेचन और उन पर सम्पादकीय विचार।

२-प्रतिध्वनियाँ-पाठकों के जीवन और साहित्य संबंधी प्रश्नों के उत्तर

३-साहित्य परिचय-इस स्तंभ सें पत्र-पत्रिकाओं और नवीन पुस्तकों की निष्पक्ष समालोचना की जाती है ।

आजही प्रवाह का वार्षिक चंदा ६) रु. भेजकर
इसके ग्राहक बन जाइये ।
न्यूज एजेंट इसकी एजेंसी लेकर लाभ उठा सकते हैं ।
व्यवस्थापकः-
'प्रवाह' राजस्थान भवन, आकोला

दो पत्तियां और एक कली

डाक्टर मुल्कराज आनन्दका यह उपन्यास चाय बागानों में होनेवाले भारतीय कुलियों के अमानुषिक शोषण की सजीव तस्वीर सामने रखने का एक समर्थ प्रयत्न है। अंग्रेज साहबों ने चायके औपनिवेशिक उद्योग को, वहाँ के कुलियों के रहनसहन को जेलके कैदियों से भी अधिक कष्टप्रद बना दिया है। गंगू होशियारपुर के एक कस्बेका बूढा किसान है। उसकी पत्नी सजनी, लडका बुद्धू और लडकी लीला सब अपने गांव के पुराने नाई बूटासिंह के बहकावे में आकर उसके द्वारा दिखाए गए सब्जबागों में उलझकर सातदिन का सफर करके चाय के मैक्फर्सन बाग आसाम में लाए जाते हैं। क्योंकि अपने गांव में वे मेहनत करते करते मरे जाते है फिर भी साहूकार के पंजे से छुटकारा नहीं मिलता। उन्हें विश्वास दिलाया गया है कि यहाँ कम मेहनत करनी पडेगी, रहनेकी जगह और जमीन मिलेगी। साहब लोग बहुत उदार है। समय असमय रुपये पैसे या दूसरी तरह से सहायता कर दिया करते हैं। अस्पताल हैं और स्कूल हैं; किन्तु वहाँ जाकर उनके साथ जो व्यवहार होता है, उसे देखकर रोंगटे खडे हो जाते हैं। कुलियों की इज्जत, इज्जत नहीं है। साहबों के चपरासी, सरदार, मुकदम और एक के ऊपर एक न जाने कौन–कौन वहाँ शोषण करने को मौजूद हैं। बीमारी हड्डीतोड, बुखार, मलेरिया, हैंजा और जो भी बीमारी फैल जाती है, उनमें जानवरों की तरह गुमटियों में रहनेवाले कुली कुत्ते–बिल्ली की तरह मर जाते हैं। उनकी रक्षा या इलाज का कोई भी प्रबन्ध उनके इन आकाओं की ओर से नहीं है। इसी बीमारी से पहिले तो गंगू मरते-मरते बचता है और अन्त में उसकी बीबी सजनी मर ही जाती है। बीमारी के अलावा दमतोड मेहनत और भयंकर गर्मी से बचने का कोई भी इन्तजाम गुमटियों में नहीं है। उल्टे वे टीन की पतली छतों के कारण भाट्टियों की तरह तप उठती हैं। फिर साहबों के दानवीय अत्याचार! जब इच्छा हो तो कोडा, हंटर, लात घूंसे। कोई खोज खबर लेनेवाला नहीं है। गंगू की लाश घर रखी है और साहब से मिलने देने के लिये चपरासी अपना हक मांगता है, बंगाली शशिभूषण भट्टाचार्य अपना नजराना। सहायता नहीं करता, सब प्लेग के चूहेकी तरह छोडकर इधर–उधर भाग जाते हैं। साहब से सहायता लेने जानेके बदले मे ठोकर मिलती है–"साले तू हैंजा फैलाता है।"

यह है यहाँ का जीवन। इसके अलावा किसीकी बहू बेटी की इज्जत यहाँ सुरक्षित नहीं है। जब जिस पर मनहुआ अपनी वासना बुझाई-कोई रोकनेवाला नहीं, अपनी लडकी लीला की इज्जतबचाने के लिये ही रेगीहण्ट की गोलीसे गंगू मरता है। आदमीकी जिन्दगी का कोई महत्व, मूल्य नहीं। जब चाहा घोडे दौडादिये, गोली चलादी, शिकार में मार-मरवा दिया। इस जीवन से एक बार चंगुल में फँस जानके बाद कोई रास्ता नहीं है। रातदिन पहिरे लगते हैं। निगरानी हाजिरी रखी जाती हैं और भागनेवाले की पिटाई तथा अन्य यातनाएँ दी जाती है। एक बार बागान के दो तीन हजार मजदूर इकट्ठे मैदान की ओर भागे तो

उन्हें रेलमें नहीं चढने दिया गया। संगीनों से मारा गया। बीमारी में मरमिट कर आधे रास्ते तक पहुंचते-पहुंचते वे आधे से भी कम ही रह जाते हैं। इन सब के ऊपर फिर गर्मी उमस दमघोटू आसामी पहाडों का मोसम। अशिक्षा, अन्धकार और आपसी द्वेष तथा लडाइयां। एक से एक भयंकर जानवर, जहरीले कीडे-मकोडे सांप बिच्छु जो कब किसी चलते आदमी की जिन्दगी खत्मकर देंगे– कोई नहीं जानता। आंधी, तूफान और बरसात। सिवा शोषण और शासन के सरकार की तरफ से कोई प्रबन्ध नहीं है। और जरूरत बे जरूरत साहब लोगों को इस बात का रोब रखना जरूरी कि वे राज्य करते हैं, ऊँचे हैं और गोरे हैं। इन्हीं सब बातों को डाक्टर डीलाहेवर ने श्रीमती क्राफ्टकुक के यह कहने पर कि "इन कुलियों में सब तरह के बदमाश लुच्चे लफंगे मोजूद है, पर तुम...जॉन चाय?" तो वह कहता है– "जी हां, चाय धन्यवाद लाखों भारतीयों की भूख, खून, पसीना और निराश। !"

उपन्यास में दो जीवन हमारे सामने लाए जाते हैं। एक जीवन है कुलियों का–निर्जीव, संवेदनाहींन कीडों मकोडों की तरह का। दूसरा, जीवन अंग्रेज साहब लोगों का जो खुद राजाओं की तरह रोबसे रहते और शान करते हैं साथही इगलैण्ड को सोना ढो–ढोकर लेजा रहे हैं। उनके आराम नें जरा खलल पडने पर अंग्रेजी मशीनरी उनके साथ है। हवाई जहाज फोज पल्टन और गुरखे जिससे जरासी जरूरत जडनेपर सो पचास आदमियों की मरवादिया जाय और फिर रोब सलामत रहे। ये लोग किस तरह रहते हैं, गोल्फ, शराब और औरत इन तीनों के अलावा हर एक दिमाग में इग्लैण्ड और उसका रोब रखने की आकांक्षा। कोई भी हिन्दुस्तानी उनके क्लब में नहीं आसकता। वर्ना वह चुन्नीलाल की तरह निकाल दिया जाएगा। और न किसी उदार विचारवाले की वहा जरूरत है वर्ना वह डा. डीडा–हेवर की तरह पांचवें दस्ते का आदमी माना जाएगा। उसके लिये संसार में न प्रेम है, न आदर। बारबरा जो उससे प्रेम मुहब्बत का स्वांग रचती थी अपने वर्ग के ही पक्षमें है, क्योंकि यह माक्संवादी विचारधारा को मानता है।

चूंकि उपन्यासकार का उद्देश्य एक दूसरे के विरोध में इन दोनों जिन्दगियों को उभारकर सामने लाना है अतः कथानक के नामपर उपन्यास में कुछ नहीं है। या जो कुछ है तो वह इतना कि पाठक को दोनों वर्गो की एक स्थिति के बाद दूसरी स्थितितक लें चले। साथ ही पाठक इन दो विरोधी जीवनों की विभीषिका को हृदयंगम करता चले। अत: प्रश्न चरित्रका भी नहीं उठता। डाक्टर डीलाहेवर को छोडकर चरित्र भी बस दो ही हैं– जानवर जैसे अत्याचार सहनेवाले बेजुबान कुली का और दूसरा क्रूर और निर्दयी अंग्रेज शाशक का। पूरे उपन्यासको यों समझा जा सकता है।

......'काला आदमी खटता है और पैदावार के लिये अपना खून पसीना एक कर देता है और सारा पैसा मुनाफाख़ोर और क्रूर मैनेजरों की जेबमें चला जाता है। पूंजी और श्रमके इसी सम्बन्ध पर इस देश में क्रान्ति का भवितव्य निर्भर करता है। एक ओर पददलित शोषित शेष कंकाल श्रमिक वर्ग है और दूसरी ओर अपार धन राशि में डूबाहुआ आत्मतुष्ट और अहंकारी धनिक वर्ग जो अपनी सत्ता वैभव और शान–शौकत में रत्तीभर कमी करनेको तत्पर नहीं.....' (१२६)

इस प्रकार हरीभरी और शस्यश्यामला प्रकृति की गोदमें अत्याचार और सामूहिक हत्याओं का यह उद्घाटन, डाक्टर मुल्कराज आनन्द को शिल्पविधान की दृष्टि से चाहे कोई श्रेष्ठ औपन्यासिक न करार दे लेकिन इस सबको देखकर एक तडपन भरे भारतीय दिलका दावेदार उन्हें अवश्य बना देता है। शोषक और शोषित के समानान्तर चित्रण को वर्ग का रूप देने और उपन्यास की कला में बांधने की प्रेरणा प्रेमचंद के गोदान से ली गई है (और न भी ली गई हो तब भी) लेकिन प्रेमचन्द जैसी कुशल औपन्यासिक कला का स्वामी होना और संवेदनशील कलाकार का हृदय पाना शायद सभी के बसकी बात नहीं है। (वे अपनी बात कहने के साथ साथ उपन्यास के अन्य तत्वों चरित्रों के सही मानसिक अन्तद्वन्द्वों को कभी नहीं भूलते) प्रसिद्धि और कला दो अलग बातों के परिणाम हैं। एकके पीछे यदि चांस और चातुर्य है तो दूसरीमें अनुभव और अथक परिश्रम।

अनुवाद के विषयमें कुछ न कहना पाठक और अनुवादक दोनों को भुलावे में रखना है। यदि उसपर अनुवादक के स्थानपर श्यामसन्यासी का नाम न होता

तो शायद क्षम्य था। लेकिन इतने जानें।मने नामके बावजूद उपन्यास की भाषा इतनी अव्यवहारिक अस्वाभाविक, अनगढ और प्रवाहहीन है कि पढना मुश्किल होजाता है। प्रत्येक पंक्ति पर इच्छा होती है कि इतनी मेहनत और मनमारकर यदि मूल पुस्तक को पढा जाता तो शायद उसके सौन्दर्य का अधिक रसास्वादन किया जासकता था।

साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन (लेखक संघ) के प्रारम्भ कर्ता और स्वयं एक प्रख्यात प्रगतिशील लेखक के रूप में डा० मुल्कराज का नाम काफी प्रसिद्ध है और इसमें सन्देह नहीं कि अछूत, कुली और दोपत्तियां एक कली, उपन्यासों में उन्होंने यथार्थ के जिस रूपको जिस दृष्टिकोण और शक्ति से उपस्थित किया है वह केवल एक राष्ट्रप्रेमी, मानवतावादी, निर्भीक और प्रगतिशील कलाकार कर सकता था। लेकिन इधर इस रवैये के लेखकों का कुछ विचित्र रवैया दिखाई देरहा है। दबे ढके शोषण और अत्याचार को 'एक्सपोज' करना प्रगतिशीलता की सीमा में आता है, लेकिन क्या अश्लील और मनुष्य के अतिव्यक्तिगत क्रिया कलापों का रस ले लेकर विस्तार पूर्वक–और निर्लज्ज भाषा में कहें तो ज्यादा उपयुक्त होगा–वर्णन भी प्रगति शीलता है? ये बातें हमारे इस सच्चे और ईमानदार साहित्य को गलत रूप में ही प्रस्तुत नहीं करती वरन लोगों को मौका देती है कि वे प्रगतिशील साहित्य को बदनाम करें। कुशवाह कान्त प्यारेलाल आवारा, ऋषभचरण जैन, और आज के द्वारिकाप्रसादसिंह जब उत्तेजक शैली में सम्भोग की विभिन्न क्रियाओं का वर्णनकरते हैं तो हमें उनसे कोई शिकायत नहीं, क्योंकि समाज सुधार के नामपर या सीधे ही वे इसीका तो खाते हैं और कुछ तो ईमानदारी से लिख देते हैं कि यह साहित्य स्त्रियों और बच्चों के लिये नहीं है (फिर चाहे वह विज्ञापन का एक प्रकार ही क्यों न हो) वे इसी रूपमें बदनाम भी है। और 'अज्ञेय जैसे कलाकारों' के प्रति कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती जो 'नदी के द्वीप' जैसे गम्भीर' उपन्यास में अपने धीरोदात्त चरित्र भुवन और रेखा की काम क्रीडाओं का वर्णन बडे विस्तार से करते हैं। भुवन इत्यादि बौद्धिक रूपसे जितने कल्चर्ड और उन्नत है और उनकी एक एक अंग्रेजी और बंगला के उद्धरणों के उछ्वासों के बीच रति क्रीडा की एक एक क्रिया भी उतनी ही कल्चर्ड और उन्नत होगी। उनके प्रति कुछ कहने की हिम्मत इसलियें और नहीं होती कि उनके पीछे 'लेडी चैटलीजलवर,' यूलिसीज और लस्ट फॉर लाइफ के अलावा न जाने कितने जानें बे जाने विश्वविख्यात कृतियों की प्रेरणा होगी। जहां काम क्रीडाकी अनेक रसमयी क्रियाओं के विस्तृत विवरण के पश्चात नायक पूछता है– "कहो, कैसा लगा?" नायिका विभोर होकर कहती है– "बडा अच्छा!" या लडकियों के हस्तमैथुन के घिनोनेचित्र हैं। जो भी हो वास्तव में उसस्तर तक पहुँचने के लिये उतने ही अध्ययन, मनन, और संवेदन की आवश्यकता है (और 'नया समाज' के मई अंक में श्री अज्ञेयजी की कामना है कि वह आपमें हो!) अतः जबतक वह बात नहीं आती तबतक मुंह बन्द रखकर उसे समझने की प्रतीक्षा करनी ही होगी।

लेकिन दुख हमें अपने उन कलाकारों से होता है जो 'प्रगतिशील' होने के नाते एक तो वैसेही कुछ अजीब दृष्टियों से देखे जाते हैं दूसरे जब वे ऐसे चित्र उपस्थित करते है तो खुद भी बडी वितृष्णा होती है। इस्मत चुगताई और सदाअत हसन मण्टो को चाहे आप प्रगतिशील लेखकों का अलमबरदार न मानें। मुल्कराज आनन्द को तो मानेंगे जो हिन्दी की भद्दी से भद्दी गाली का अंग्रेजी अनुवाद निडर होकर इसलियें उपन्यासों में रख देते हैं कि वह 'जनता' की भाषा का सच्चे अर्थों में (दूसरे देशों के सामने) प्रतिनिधित्व कर सके। 'दो पत्तियां, एक कली, जैसे छोटे उपन्यास में भी कम से कम दो सम्भोग के ऐसे नग्न अश्लील और बीभत्स चित्र हैं कि शायद ही किसी कोकशास्त्र की पुस्तक में मिलेंगे! आप यशपाल को क्या कहेंगे, जब वे 'मनुष्य के रूप' उपन्यास मे सिपाहियों द्वारा बलात्कार की तस्वीर देते हैं (दादाकामरेड में शैलके नंगा होने की बात मैं जानबूझकर छोड रहा हूं– क्योंकि वह सुनीता में जैनेन्द्रजीकी वायवी और सूक्ष्म रहस्यमयता का जवाब है) आप कृष्णचन्द्र को क्या कहेंगे, जब वे जवान और बुढिया का ध्यान छोडकर तूफान की कलियां उपन्यास के प्रत्येक परिच्छेद में सम्भोग या बलात्कार का एक रसमय वर्णन करते है। आप अब्बास को क्या कहेंगे........ एक हो तो गिनाया जाय। मैं ऐसे चित्रों का विरोध नहीं करता बशर्ते इस रूप में प्रस्तुत न किये जांय कि अपना अभीप्सित प्रभाव खोदेनें के साथ-साथ प्रभाव भी बिल्कुल उलटा डालें। वह निस्पृहता, कडक और व्यंग

के तीखें हथियार इनके पास नहीं हैं जो आडम्बरों के नकाब फाड फाड कर फेंक देते है। जो प्रगतिशील न होते हुए भी अलैकजेंण्डर कुप्रिन के पास थे, जोला मोपासा और बालजाक के पास थे जहाँ वे गन्देसे गन्दे वातावरण में लाए अश्लील से अश्लील चित्र (जहाँ जाकर उग्र जैसे धगगाड और आचार्य चतुरसेन शास्त्री तक के चश्मे खोगए ह) उन्होंने देखे और दिखाए और फिर भी हम गर्वसे कहते हैं-हाँ वे प्रगतिशील साहित्य की परम्परा के अग्रदूत हैं। प्रूफ भी ध्यान से पढे जाते तो अधिक अच्छा था। ★

--राजेन्द्र यादव

क्या गोरी, क्या सांवरी . . . .?

लेखक-देवेन्द्र सत्यार्थी.

प्रकाशक-चेतना प्रकाशन लिमिटेड, आबिद रोड
हैदराबाद

मूल्य- ७ रुपये.

भाव सौंदर्य के पारखी आज भी जब रूप रंग की चर्चा करने बैठते हैं तो प्रायः सुनने को मिलता है कि रंग जरा सांवला है, अधिक सांवला है, कम गोरा है, अधिक गोरा है आदि आदि। नारी के रूप की इसी रसमयी विवेचना ने लेखक का ध्यान भी आकर्षित किया और तब उसने अपने लोकगीतों के भंडार में से कुछ भावपूर्ण उद्धरण देकर घोषणा की, कि गोरी और सांवरी हीं क्या, हमारे देश में गोरे और काले रंगों के बीच अनेक शेड नजर आते हैं। ध्यान से देखें तो एक एक शेड के बीच वही अंतर है जो संगीत के सात स्वरों के बोच होता है। लेखक ने अपने इसी निबंध के नाम पर इस पुस्तक का नाम रक्खा है– क्या गोरी क्या सांवरी। पुस्तकों के नामकरण की कला में लेखक बडा ही सिद्ध हस्त है। और इस कला के क्षेत्र में लेखक को सहज ही फरेंच लेखक मार्शल प्रूस्तके समकक्ष रक्खा जा सकता है।

इस युग के हिन्दी साहित्य के आंगन में जिन कलाकारों ने नवीन शैली के सुमन खिलाये हैं, उनमें श्री सत्यार्थीजी का भी अपना विशेष स्थान है। उन्होंने निबंधों के क्षेत्र में शैली के नवीन प्रयोग किये हैं। इस पुस्तक के प्रायः सभी निबंध संस्मरणात्मक हैं। यदि विषय के आधार पर इन निबंधों को विभिन्न श्रेणियों में बांटा जाये तो इस सग्रह के “क्या गोरी क्या सांवरी” और “ दीय तो जलेंगे ” निबंध भावात्मक निबंधों की श्रेणी में आयेंगे। लेखक ने बडीही भावपूर्ण और रोचक शैली में कुछ लोकगीतों के उद्धरण देकर पाठकों के लिये सौंदर्याभिव्यक्ति के वातायन प्रस्तुत कर दिये हैं। हमारे सन्मुख रवीन्द्रबाबू की कृष्णकली, फरेंच कवि वालटेयर की नीग्रो प्रेयसी, और सातवीं आठवीं शताब्दी के कवि वाक्पति की द्रविड सुंदरी के चित्र थोडीसी ही रेखाओं में सामने खिच जाते है। “दीये तो जलेंगे” में लेखक ने बडी ही सफलतापूर्वक दीपक का वह चित्र प्रस्तुत किया है जिसने हमारे देश की लोकचेतना को शत शत लोकगीतों में, मुहावरों में, एवं लोकोक्तियों में, खिलाया तथा उसके आलोक को हमारी संस्कृति के आलोक में घुला मिला दिया।

‘कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी’, ‘ठक्कर बापा’, ‘यशपाल’, ‘बलवंतसिंह’ ये पांच निबंध संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं। इनमें चित्रित रेखाओं से उपर्युक्त व्यक्तियों के व्यक्तित्वों का चित्र सामने आ खडा होता है। लेखक ‘ठक्कर बापा’ ओर ‘बलवंतसिंह’ के रेखा-चित्र प्रस्तुत करने में सफल रहा है, पर श्री मुन्शीजी एवं यशपाल संबंधी चित्र हलके फुलके संस्मरण मात्र ही रह गये हैं।

“यदि मेघाणी जी मिले होते।” यह निबंध भी एक संस्मरणात्मक निबंध है। इसमें मेघाणीजी के उल्लेख को छोडकर उनसे संबंधित ओर कुछ नहीं। मेघाणीजी के व्यक्तित्व को कोई रेखा होना संभव भी नहीं था क्योंकि उनसे तो लेखक की भेंट ही नहीं हुई। यह लेख मेघाणीजी से भेंट करने जाने की भूमिका मात्र कहा जा सकता है। फिर भी इस भूमिका के भीतर से दो चित्र हमारी आँखों के सामने उभरते हैं। एक चित्र है रामू भाई का ओर दूसरा चित्र है... कुमारी गुलबदन का। वास्तव में मेघाणीजी के नाम के नीचे संपूर्ण निबंध रामूमाई और गुलबदन से ही संबंधित है।

★ दोपत्तियां ओर एक कली
(उपन्यास)
ले० मुल्कराज आनन्द
अनु० श्यामू सन्यासी
पृष्ठ, २७७
प्र० चेतना प्रकाशन
हैदराबाद
मूल्य ४।-)

"चंबा याद रहेगा" "केरल के जलमार्ग पर" "गोदावरी" "मणिपुर" लेखक के यात्रा संस्मरण हैं। इनमें कहीं कहीं लेखक के प्रकृति चित्रण के रंग और उसके संचित लोकगीतों के स्वरों ने मिलकर बडे ही आकर्षक चित्र खडे कर दिये हैं। 'केरल के जलमार्ग' पर, और 'गोदावरी' निस्संदेह प्रथम श्रेणी के यात्रा संस्मरण हैं।

"जहां दो साहित्य मिलते हैं" "भारत की राष्ट्रभाषा" "चित्र सामने पडा है" 'महादेव भाई की डायरी' "मेले भी आते रहे" सादे निबंध हैं, संस्मरण नहीं। 'जहां दो साहित्य मिलते हैं' निबंध में इस सत्य की बडे ही सुंदर ढंग से विवेचना की है कि पंजाब ही ऐसी भूमि है जहां हिंदी और उर्दू दोनों साहित्य एक दूसरे से मिलते हैं। 'मेले भी आते रहे' में बडे ही रोचक और भावपूर्ण ढंग से भारतवर्ष में मेलों की परंपरा और उनके उल्लासपूर्ण वातावरण पर प्रकाश डाला गया है।

अध्ययनकक्ष में, मेरी जन्मभूमि, अलका मिल गई, लेखक के आत्म कथात्मक संस्मरण हैं। 'अध्ययन कक्ष में' लेखक का उद्देश्य अपने कक्ष की पुस्तकों के उद्धरण तथा कुछ लेखकों की रचनायें प्रस्तुत करना तो है ही पर साथ ही वह अपने स्वभाव की व्यवहारपटुता को भी चित्रित करता है। अपनी जन्मभूमि के विषय में लेखक ने जो चित्र प्रस्तुत किया है वह बडा ही सजीव और कलात्मक है। 'अलका मिल गई' में श्री सत्यार्थीजी ने अपनी बेटी अलका के जन्म और अलका नगरी के संबंध के अपने पुरातत्वात्मक ज्ञान को एक कोमल सूत्र से जोड दिया है।

लगता है कि लेखक के पास लोकगीतों, लोकोक्तियों और महान् लेखकों की पुस्तकों के सुंदर उद्धरणों का एक बडा भारी भंडार है। वह अनुकूल वातावरण, अनुकूल परिस्थितियों, अनुकूल अवसरों तथा अपने मन के व्यक्तियों का अस्तित्व पाकर अपने उन संचित रत्नों को एक श्रृंखलाबद्ध विवरण अथवा ससंबद्ध साहित्यचर्चा में जड देता है। ये सब संस्मरण भी इसी प्रकार के है। ये संस्मरण रोचक हैं, भावपूर्ण हैं पर ये मन के स्तर को अधिक गहराई से नहीं छूते। ये तो वैसे ही हैं जैसे सरिता की लहरों में झूलनेवाले सुन्दर फूल। मानससिंधु की अतल-गहराई में पैठकर निकाले हुए रत्न इन्हें नहीं कहा जा सकता.

यह तो रही भावपक्ष की बात, कलापक्ष की दृष्टि से संस्मरण लेखन एक अलग ही कला है। संस्मरण में लेखक अपनी भावना के वातायन से अतीत में झांककर अपनी स्मृति के क्षितिज पर उभरी हुई रेखाओं को अपनी प्रतिभा की तूलिका से साहित्य में इस प्रकार व्यक्त करता है कि एक सानुपात सुंदर चित्र बन जाये। इस दृष्टि से मैं इन लेखों को संस्मरण नहीं कह सकता। ये केवल संस्मरणात्मक निबंध मात्र हैं। पुस्तक की भाषा बडी ही सहज और सुगम है। पुस्तक पठनीय है। पुस्तक की छपाई सुंदर तथा गेटअप भी कलात्मक है।

--शिवचंद्र नागर

अवगुंठन (*कहानी-संग्रह*)

लेखक– सत्यप्रकाश संगर

प्रकाशक– अवध पब्लिशिंग हाऊस, चारबाग,
लखनऊ

मूल्य– पौन तीन रुपया

इस संग्रह में लेखक की आठ कहानियां हैं जिनमें एक 'अवगुंठन' भी है और इसी कहानी के नामपर इस संग्रह का नामकरण किया गया है। लेखक की ये प्रारंभिक कहानियां मालूम होती हैं जिनमें कहानी-कला का परिस्फुटन नहीं हुआ। कहीं कहीं भाषा संस्कृत-बहुला होजाने से बोझीली होगई है। जहां भाषा सरल है वहां वह स्वाभाविक भी बन गई है। १९६ पृष्ठ की किताब का मूल्य पौने तीन रुपये अधिक जान पडता है। छपाई सफाई साफ और मुखपृष्ठ साधारण है।

—श्रीराम शर्मा

नई धारा (*रंगमंच-विशेषांक*)

अशोक प्रेस, महेन्द्रू, पटना।

प्र. संपादक– श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

"नई धारा" का अप्रैल–मई का अंक रंगमंच विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस दिशा में बेनीपुरीजी का प्रयास अत्यंत सराहनीय है। क्योंकि उन्होंने यह अंक निकालकर हिन्दी साहित्य में एक अभाव की पूर्ति कर दी है। इस अंक में गुजराती, मराठी,

बंगाली, तेलगू आदि सभी प्रदेशों के रंगमंचों की योजना पर लेख हैं। रंगभंच के विकास एवं विभिन्न प्रकारों के संम्बन्ध में इस अंक से समुचित सूचना मिल सकती है। एक दो लेखों मे रंगमंच विघान का शास्त्रीय विवेचन भी सुंदर किया गया है। इस अंक के विशेष लेखक हैं श्री वृंदावनलाल वर्मा, श्री जगदीशचन्द्र माथुर, डा. विश्वनाथप्रसाद, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क, राममूर्ति रेणु तथा प्रो. रामचरण महेंद्र।

अंक सर्वथा पठनीय एंव साहित्य प्रेमियों के लिये संग्रहणीय भी है।

--नागर

'हंस' [मासिक]

संपादक– अमृतराय
प्रकाशक–'हंस' कार्यालय, पो. बॉक्स ६७, इलाहाबाद
वार्षिक मूल्य– साडे सात रुपये

हमारे सामने 'हंस' का शांति–संस्कृति अंक है। देश के प्रगतिशील मासिक पत्रों में 'हंस' का प्रमुख स्थान है। २०८ पृष्ठों के इस विशेषांक का प्रत्येक पृष्ठ पढने लायक है। इसमें भरती की कोई चीज नहीं दी गई। 'हंस' का अपना स्पष्ट उद्देश्य है और वह दृढता के साथ उस ओर बढता जा रहा है। निश्चित उद्देश को लेकर चलनेवाले हिन्दी में बहुत कम मासिक हैं। 'हंस' करोडों पीडित और दुखी लोगों की आवाज का प्रतिनिघित्व करता है। जब कि मौत के सौदागर 'युद्ध' की योजना बनाने में लगे हुये हैं तब इस तरह का प्रयत्न बहुत आवश्यक था। हिन्दी के कितने मासिक पत्रों ने इस दिशा में प्रयत्न किया? इस अंकमें देशी और विदेशी प्रमुख साहित्यिकों की रचनायें दी गई हैं। अधिकतर कहानियाँ हैं। शायद जनता तक अपनी बात पहुंचानें में कहानियों को ही ठीक माध्यम समझा गया। एक बडा हिस्सा 'कविताओं' में चला गया है लेकिन सभी कवितायें मार्मिक और प्रेरणास्पद हैं। यह अंक सिर्फ पठनीय ही नहीं, वरन संग्रहणीय और मननीय भी है।

–श्रीराम शर्मा

संसार में सबसे अधिक दंडनीय व्यक्ति वह है जिसन यथार्थ के कुत्सित पक्ष को एकत्रित कर नरक का आविष्कार कर डाला क्योंकि उस चित्र ने मनुष्य की सारी बर्बरता को चुन चुन कर ऐसे ब्योरेवार प्रदशित किया कि जीवन के कोने कोने में नरक गढा जाने लगा। इसलिये उसे यथार्थ के अकेले सुखपक्ष को पुंजीभूत कर इस तरह सजाना पडा कि मनुष्य उसे खोजने के लिये जीवन को छिन्न भिन्न करने लगा।

— महादेवी वर्मा

"स्वर्गीय और पार्थिव का विवाद बहुत पुरातन है। वे साहित्यकार जो सदा आकाश पर वृष्टि रखते हैं, उनकी सेवा में मैं केवल यह कहने का साहस करता हूं कि हमारी धरती भी एक ज्योतिर्मय ग्रह है।"

----मैक्सिम गोर्की

संपादकीय-विचार

भारतीय गणराज्य के प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति

गत दो वर्षोंतक भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति पद को सुशोभित करने के उपरांत राष्ट्र ने राष्ट्रपति के प्रथम चुनाव में फिर डा० राजेन्द्र बाबू को ही इस पद के लिये चुना। यह उनके महान् व्यक्तित्व के योग्य ही था। डा० राजेन्द्रबाबू जीवन, व्यवहार एवं आदर्शों में शुद्ध गांधीवादी रहे हैं। उनकी जीवनधारा में बहुत से उतार-चढाव आये; पर वह अपने पथपर सुदृढ एवं निश्चित दिशा में निरंतर बढ़ती रही। उन्होंने अपने जीवन का कुछ भाग प्रोफेसर के रूप में, कुछ भाग वकील के रूपमें बिताया और अपने जीवन के कितने ही वर्ष ब्रिटिश जेलों में बिताये। पूज्य बापू के नेतृत्व से उन्होंने शक्ति ली और आज वे अपने योग्य पद को ही विभूषित कर रहे हैं। भारतीय गणराज्य के प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति के रूप में हम उनका सहर्ष अभिनंदन करते हैं।

राष्ट्रपति का शपथ--ग्रहण समारोह

हमारे देश के राष्ट्र–नायक डा० राजेंद्रप्रसाद ने गत २३ मई १९५२ को संसद–भवन में राष्ट्रपति पदकी शपथ लेने के पश्चात् अपनी निर्मल एवं ओजस्वी वाणी से प्रथम हिंदी में (और फिर अंग्रेजी में) भाषण देते हुए कहा–

" मैंने अभी–अभी राष्ट्रपति के रूप में शपथ ग्रहण की है तथा इस महान देश की सेवा में अर्पित करने का संकल्प किया है। राष्ट्रपति के रूप में मैं आपके सामने भारतीय गणतन्त्र का प्रतीक एवम् संकेत हूं।

" हम अपने प्राचीन इतिहास में पढ़ते हैं कि हमारे देश के विभिन्न भागों में समय–समय पर गणतन्त्र स्थापित किये गये किन्तु उनका प्रभुत्व इस देश के छोटे–छोटे भागों तक ही सीमित था। इसके अतिरिक्त हमें उनकी शासन–प्रणाली का भी पूरा पता नहीं लगता है। यह पहिला ही अवसर है कि जब सम्पूर्ण देश का शासन एक महान प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र के अधीन आ गया है। हमारे इस गणतन्त्र का ढांचा जैसा कि हमारे संविधान में बताया गया है, व्यापक है तथा हमारे देश के सभी बालिग स्त्री पुरुषों पर आधारित है। उनमें से १७ करोड ने शासन चलाने तथा

बालिग मताधिकार पर चुने गये
भारतीय चुनाव के प्रथम
राष्ट्रपति डॉक्टर
राजेन्द्रप्रसाद

भारत के भाग्य का निर्माण करने के लिये अपने प्रतिनिधि चुने हैं। इन प्रतिनिधियों ने मुझे अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया है। इस प्रकार से उन्होंने अब संविधान को पूर्णरूपेण क्रियात्मक रूप दिया है।

"व्यक्तिगत रूप से तथा आपका एक देशवासी होने के नाते और इससे भी अधिक स्वतन्त्रता संग्राम में आपमें से कई का सहयोगी होने के नाते, आपके इस विश्वास के कारण में अभिभूत हो गया हूं; किंतु कृतज्ञता से भी अधिक इस उच्च पद का महान उत्तरदायित्व एवं भार में महसूस करता हूँ।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त ही इस प्रजातान्त्रिक गणतंत्र की स्थापना हो सकी है। इसलिये हममें से प्रत्येक का प्रथम कर्तव्य इस स्वतन्त्रता की रक्षा करना है, जिसे हमने सदियों के संघर्ष एवम् बलिदानों के पश्चात प्राप्त किया है। जनता का स्तर ऊँचा उठाना हमारा परम लक्ष्य है। सुधार तथा उन्नति की हमारी सभी योजनाएँ स्वतन्त्रता की रक्षा पर निर्भर करती हैं। हमारा सम्पूर्ण व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय जीवन इस मूलभूत स्वतन्त्रता पर आधारित है। चाहे जैसे भी हो, हमें और आपको इस स्वतन्त्रता की रक्षा करनी ही है।

"सभी वर्गों, धर्मों और विचारधाराओं के लोगों के प्रति समानता एवम् निष्पक्षता का बर्ताव करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य होगा। मेरा दूसरा कर्त्तव्य सभी अन्य देशों के साथ मित्रता करना तथा उनके साथ सहयोग करने का तरीका निकालना होगा।

"इस देश के सभी लोगों से मेरी प्रार्थना है कि वे मुझे अपने में से ही एक समझें तथा यथाशक्ति उनकी सेवा करने के लिये मुझे अवसर एवं प्रोत्साहन प्रदान करें। ईश्वर से भी मेरी प्रार्थना है कि वह मुझे अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को सच्ची सेवा-भावना से पूर्ण करने की शक्ति एवं सुबुद्धि प्रदान करे।"

डा० राधाकृष्णन्‌का निर्विरोध चुनाव

भारतीय संघराज्य के उपाध्यक्ष पद पर श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन का निर्विरोध निर्वाचन सचमुच इसलिये विशेष स्वागत की बात है कि हमारे देशके चोटीके नेताओं में से कमसे कम एक तो ऐसा है, जिसका सब समर्थन करने के लिये तैयार हैं। जो लोग यह कहते हैं कि डा० राधाकृष्णन् को मो० स्तालिनने दो बार मुलाकात दी इसलिये प्रगतिशील दल उनका समर्थन करने लगे, एक ऐसी वृत्तिका परिचय देते हैं, जो दलगत राजनीतिके कीचड़में गलेतक फँसी हुई है। दूसरे एक मिनिटके लिये यह बात अगर मान भी ली जावे तो क्या रूसके समान देश में सफल कूटनीतिक पद क्या एक छोटी योग्यता है? असलियत यह है कि डा० राधाकृष्णन् सभी अर्थोंमें दलोंसे परे हमारी संस्कृतिके सर्वोत्कृष्ट जनवादी प्रतिनिधियों में से हैं। उनका कभी किसी दल-विशेष में संबन्ध नहीं रहा। मास्कोमें उनकी सफलताने उनकी योग्यताको और बढ़ा दिया। यही कारण है कि समस्त देशने निरपवाद रूपसे उनका समर्थन किया।

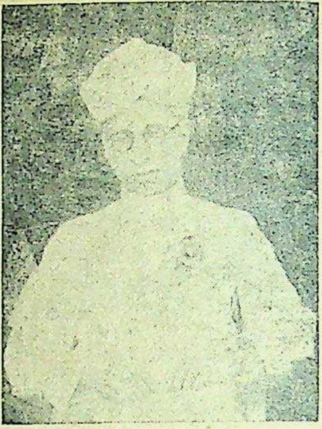

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

चीन में भारतीय सांस्कृतिक शिष्ट मंडल

यह तो हमारे देश की प्राचीन परंपरा रही है कि हमने अपनी पुरातन संस्कृति के आलोक वाहकों के रूप में विदेशों को सांस्कृतिक शिष्टमंडल भेजे हैं और 'वसुधैव कुटुंबकम्' के आदर्श को सामने रखकर विश्वमैत्री की स्थापना में महत्वपूर्ण भाग लिया है। अपने पड़ौसी देश चीन से तो हमारी पुरातन मैत्री है। चीनी यात्री फाहियान और मेगस्थनीज इस सत्य के अमर साक्षी हैं। पंडित नेहरू के योग्य हाथों में हमारी आज की परराष्ट्रनीति भी विश्वमैत्री और विश्वशांति के आदर्श को लेकर चली है। विदेशों के सांस्कृतिक शिष्टमंडलों का हमने हार्दिक स्वागत किया है और अपनी सद्भावना एवं मैत्री के रूप में अपने शिष्ट मंडल विदेशों को भेजे हैं। अभी भारतीय सरकार की ओरसे श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के नेतृत्व में एक सांस्कृतिक

शिष्टमंडल चीन को भेजा गया है, इस शिष्टमंडल के सदस्यों का चुनाव बडी ही योग्यता से किया गया है। सभी सदस्य भारतीय संस्कृति के पंडित तथा भारतीय कला और साहित्य के मर्मज्ञ हैं। इस शिष्टमंडल भेजने के लिए सदस्यों का इतना योग्य चुनाव करने के उपलक्ष में भारत-सरकार बधाई की पात्र है।

इस शिष्ट-मंडल की नेत्री श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने पेकिंग में पहुंचकर २६ अप्रेल को सर्वप्रथम बोलते हुए कहा,

"हम इस महान देश चीन में एक अन्य महान देशकी सरकार तथा जनता की बधाई तथा शुभ कामनायें लेकर आये हैं।"

हिंदी में बोलते हुए श्रीमती विजयलक्ष्मीने आशा प्रकट की कि इस शिष्टमंडलकी चीन-यात्रासे "हमारे दोनों देशों तथा मानवता के लिये उतने ही लाभपूर्ण तथा स्थायी परिणाम निकलेंगे जितने इतिहास के प्रारम्भिक कालमें हमारे पूर्वजोंके आगमनसे निकले थे।"

श्री विजयलक्ष्मी पंडीत

श्रीमती पंडित ने आगे कहा

"हम इस महान देश चीनमें एक अन्य महान देशकी सरकार तथा जनता की बधाई तथा शुभ-कामनायें लेकर आये हैं। भौगोलिक एवं ऐतिहासिक कारणों से भारत और चीन बहुत निकट हैं। पिछले सहस्रों वर्षों में असंख्य यात्री केन्द्रीय एशियाके पर्वतों तथा मरु-प्रदेशों अथवा दक्षिणपूर्वी एशियाके भयंकर समुद्रोंको पार करके भारत से चीन और चीनसे भारत गये हैं। ये यात्री, जिनमें से बहुतों के नाम आपके तथा हमारे इतिहासों में प्रसिद्ध हैं, मैत्री तथा सद्भावना के सच्चे दूत थे। इन पथ-प्रदर्शकोंने हमारे दोनों महान देशोंके बीच संस्कृतिको सम्पन्न करने एवं मित्रताको बढानेमें बहुत कार्य किया। महान देशोंके इतिहास में शायद ही कोई ऐसा अन्य उदाहरण हो जहां दो महान् देश एक दूसरे से मिले हुए सहस्रों वर्षों से शांतिपूर्वक रह रहे हों।

विश्व के अन्य राष्ट्रों में भी इस प्रकार के सांस्कृतिक शिष्ट मंडलों का पारस्परिक आदान प्रदान निश्चित ही विश्वशांति की नीव को सुदृढ़ करेगा।

कलाकारों की अंतर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस

संसार के राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक और मजदूर अपने अपने प्रतिनिधि भेजकर प्राय: प्रतिवर्ष अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में अपनी अपनी प्रगति एवं विकास संबंधी दृष्टिकोणों का विनिमय कर लेते हैं तथा अपनी भविष्य की योजनाओं पर विचार कर लेते हैं। कलाकार अपने हितों के संरक्षण के प्रति अबतक अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से तो क्या राष्ट्रीय-दृष्टि से भी उदासीन रहे हैं। कलाकारों की परंपरा अधिक व्यक्तिवादी होने के कारण ही शायद वे किसी समूह में संगठित नहीं हो पाते, किंतु आज तो यह युग की मांग है कि हम व्यष्टि केन्द्रित नहीं समष्टि केंद्रित बनें। अपनी समस्याओं पर अंतरर्राष्ट्रीय दृष्टि से सोचें। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में एकत्रित होकर एक दूसरे के दृष्टिकोण का सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन कर एक सर्वसम्मत मार्ग का अवलंबन करें। सौभाग्य से इस बार यूनेस्को तथा वेनिस की द्विवर्षीय प्रदर्शनी के प्रबंधकर्ताओं के योग से कलाकारों की एक अंतर्राष्ट्रीय कान्फरेंस का आयोजन किया गया है। यह कान्फरेंस वेनिस में बाईस से अठाईस सितंबर तक होगी। इस कान्फरेंस में चित्रकार, मूर्तिकार, वस्तुविद्या शास्त्री, संगीतज्ञ तथा कवियों और लेखकों को भी बुलाया जायगा। सदस्य राष्ट्रों की अंतर्राष्ट्रीय नाटक संस्था, अंतर्राष्ट्रीय संगीत संस्था, अंतर्राष्ट्रीय 'पेन' क्लब या अंतर्राष्ट्रीय वस्तुविद्याशास्त्री संस्था इस कान्फरेंस के लिये प्रतिनिधि नियुक्त करेंगी। इस कान्फरेंस के अवसर पर कुछ दर्शकों को भी निमंत्रण भेजा जायगा।

यह कान्फरेंस कलाकार तथा समाज के पारस्परिक संबंध के विषय में विचार करेगी। अर्थात यह पता

लगाने का प्रयत्न करेगी कि कलाकार को किन किन आर्थिक तथा दूसरी प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडता है और उनको दूर करने के लिये सरकारी तथा दूसरे स्रोतों से क्या सहायता मिलती है और क्या सहायता मिलनी चाहिये।

कई प्रतिनिधियों से प्रार्थना भी की जायगी कि वे अपने अपने विशेष-क्षेत्र की आधुनिक परिस्थिति पर व्याख्यान दें। श्री आर्थर होनेगर संगीत पर, श्री तीहा हुसैन पाशी साहित्य पर, श्री मार्क कोनेली नाटक पर श्री अलेक्जेंड्र लवाजेली चलचित्र पर, श्री जाक विलो तथा जार्ज रुओ चित्रकारी पर, श्री हेनरी मूर मूर्तिशास्त्र पर और लूचियो कोस्टा वस्तुविद्या पर बोलेंगे। इसके बाद विभिन्न कमेटियां इन समस्याओं पर विचार करेंगी। इस कान्फरेन्स द्वारा कलाकारों को अपनी समस्या पर परस्पर विचार करने का अच्छा अवसर प्राप्त होगा और संभव है कि कलाकारों की एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था खोलने की योजना पर भी विचार हो।

जापान में हिंदी

पिछले दिनों मार्च के महीने में नागपुर की एक सभा में बोलते हुए जापान के एक संस्कृत के प्रोफेसर महोदय ने कहा था कि वे जापान लौटकर जापान के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा के अध्ययन की ओर प्रयत्नशील होंगे। सांस्कृतिक और साहित्यिक विनिमय की दृष्टि से प्रोफेसर साहब का यह उद्योग निस्संदेह सराहनीय माना जायगा। समस्त एशिया की सांस्कृतिक एकता के लिये यह आवश्यक है कि उसके विभिन्न देशों में भाषा और साहित्य का पारस्परिक विनिमय हो। पश्चिम के कुछ देशों में हिन्दी भाषा के अध्ययन का प्रबंध है पर एशियाई देशों में यह प्रबन्ध नहीं के बराबर है। इस दिशा में हमारे देश की हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्था को भी आगे बढना चाहिये और एशिया के समस्त विकासशील राष्ट्रों में हिन्दी भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहित करना चाहिये। यदि इस प्रकारका विनिमय संभव हो सका तो सांस्कृतिक एकता का स्वर्णिम स्वप्न भी सुलभ हो जायगा।

साहित्यकार संसद के प्रांगण में--

गत ९ मई को वैशाखी पूर्णिमा के दिन प्रयाग में गंगातट पर सूलाबाद स्थित 'साहित्यकार संसद' के प्रांगण में इसी संस्थाकी ओर से एक साहित्यिक समारोह मनाया गया। साहित्यकारसंसद प्रतिवर्ष किसी एक विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक पर एक हजार रुपये का साहू जगदीशप्रसाद पुरस्कार देता आया है। इस वर्ष यह पुरस्कार लब्धप्रतिष्ठ आलोचक श्री गुलाबरायजी को उनकी पुस्तक 'सिद्धांत और अध्ययन' पर दिया गया। इस अवसर पर कविवर मैथिलीशरणजी गुप्त श्री सुमित्रानंदन पंत, श्री रायकृष्णदास, डा. धीरेन्द्र वर्मा तथा प्रयाग के अन्य लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक एवं कलाकार उपस्थित थे। सभापति का आसन राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त ने ग्रहण किया। सर्वप्रथम प्रयाग महिलाविद्यापीठ की छात्राओं ने सरस्वती वंदना की। तत्पश्चात् वाद्ययंत्रों के साथ गुप्तजी रचित 'यशोधरा' के गीतों की अवतारणा की गई।

'साहित्यकार संसद' की मंत्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने भगवान बुद्ध का स्मरण करते हुए कहाकि वैशाखी पूर्णिमा के दिन जैसी अक्षय कीर्ति अपने कृतित्व से भगवान बुद्ध को मिली, ईश्वर करे वैसी ही सफलता श्री गुलाबरायजी को भी अपनी साहित्य साधना द्वारा मिले; और पुरस्कार ससम्मान श्री गुलाबरायजी को अर्पित कर दिया गया।

श्री गुलाबरायजी ने अपने अभिनंदन का उत्तर देते हुए कहा-- "मेरे जीवन में सफलताओं की अपेक्षा असफलताएँ ही अधिक रही हैं। काव्य ऐसी वस्तु है जिससे यश और धन दोनों ही मिलता है। मैंने समालोचना को ही अपना क्षेत्र बनाया। मैंने पेड गिनने के बजाय आम खाना ही पसंद किया। मैंने समालोचना में सार ग्रहण करने की प्रवृत्ति का ही पोषण किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से जो मुझे रस मिला उससे सौंदर्य का वास्तविक रूप भी ज्ञात हो सका है। आलोचना के क्षेत्र में अतिवाद दूर होना चाहिये।"

"साहित्य को मैं सौंदर्य की अभिव्यक्ति मानता हूं। इसमें ही मुझे ऐसे मूल्य भी मिलते हैं जो किसी भी प्रकार संकीर्ण नहीं होते। साहित्य का लक्ष्य ही अनेकताओं और भेदों को मिटाकर एकता स्थापित करना होता है और जब इस उद्देश की सिद्धि होती है तभी सर्वोदय साहित्य बनता है। मेरा जो सम्मान आपने किया है उसके लिये मैं कृतज्ञ हूं।"

इसी अवसर पर राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त का राज्यपरिषद के सदस्य होने के उपलक्ष में और श्रीमती महादेवी वर्मा के उत्तरप्रदेश की काउंसिल में राज्य के महामहिम राज्यपाल द्वारा नाम जद किये जाने पर, हिंदी जगत् द्वारा उनका अभिनंदन किया गया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अभिनंदन का उत्तर देते हुए कहा, "हिंदी भाषा किसी की कृपा या उपकार की भावना पर कभी नहीं पली वह तो सदैव अपने बलबूते पर ही आगे बढी है। दिल्ली ने हिंदी को कुछ वचन दिये हैं। मैं देखूंगा उनका वहां कितना परिपालन होता है। जिस क्षण यह अनुभव करूंगा कि मैं दिल्ली में रहकर हिन्दी के लिये कुछ नहीं कर पा रहा हूं उसी समय मैं वहां से बिना हिचकिचाहट के तुरंत हट जाऊंगा।

राष्ट्रकवि गुप्तजी और कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा का परिमल की ओर से कविवर सुमित्रानंदनजी पंत ने, काव्यलोक की ओर श्री देवदत्त शास्त्री ने, 'भारतीय अरुणोदय' की ओर से श्री गिरजादत्त शुक्ल गिरीश ने, 'संध्या' की ओर से श्री समरसोम ने, उत्तरप्रदेशीय हिंदी साहित्य सम्मेलन की ओर से श्री निर्मलजी ने, 'अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' की ओर से श्री राय रामचरण अग्रवाल ने, 'प्रगतीशील लेखक संघ की ओरसे श्री अमृतरायजी ने, 'शारदा समिति' की ओर से श्री भगवतप्रसादजी वाजपेयी ने, 'हिंदी विश्वविद्यालय हिंदी विभाग तथा हिंदी-परिषद' की ओर से डा० धीरेंद्र वर्मा ने और 'काशी भारत कलाभवन' की ओर से रायकृष्णदासजी ने अभिनंदन किया।

साहित्य और राजनीति

सैदव से साहित्य और राजनीति का अन्योन्याश्रम संबंध रहा है। कभी राजनीति ने साहित्य के फलने फूलने के लिये परिस्थितियां जुटाई हैं तो कभी साहित्य ने राजनीति को नवीन नेत्र दिये हैं। राष्ट्रों की क्रांति के पीछे प्राय: उन राष्ट्रों का साहित्य ही रहा है। शायद इटली में कभी क्रांति न होती यदि मैजिनी ने इटली की सुप्त राष्ट्रीय चेतना को न जगाया होता। फरांस में शायद कभी क्रांति न होती यदि रूसो ने अपने साहित्य द्वारा क्रांति की पृष्ठभूमि न तैयार कर दी होती। यह बात सत्य है कि क्रांति पहले साहित्यिक की आत्मा में ही जन्म लेती है, क्योंकि उच्चकोटि का साहित्यिक सृष्टा ही नहीं, दृष्टा भी होता है।

आज हमारे देश को नवीन समाजरचना एवं एक सशक्त राष्ट्र-रचना की आवश्यकता है। ऐसे अवसर पर वही साहित्यिक जो क्रांति का जन्म दाता रहा है, इस नवीन समाज-रचना का निर्माता भी बनेगा।

सौभाग्य से इस बार देश के नवीन चुनावों में अनेक साहित्यिक भी राज्य विधान सभाओं तथा केंद्र में चुनकर आये हैं। राज्य-परिषद और काउंसिलों में भी उन्हें स्थान मिला है। वहां वे राजनीतिज्ञों के साथ कंधे से कंधे भिडाकर काम करेंगे और आशा है इस प्रकार साहित्य और राजनीति का एक अपूर्व कल्याणकारी सामंजस्य जन्म लेगा। राजनीतिज्ञ के मन में साहित्यिक का सम्मान बढेगा और साहित्यिक की आंखों में राजनीतिज्ञ ऊंचा उठेगा।

इन नये चुनावों में जो साहित्यिक बंधु निर्वाचित हुए हैं, उन्हें हम अपने पत्र की ओर से हार्दिक बधाई देना चाहते हैं और कामना करते हैं कि उनकी साहित्यिक सुझ बूझ नित्य राजनीति का पथ प्रशस्त करती रहे और वे राष्ट्र के नवनिर्माण में अपनी नितनवोन्मेषिणी प्रतिभा का योगदान देते रहें।

बिहार हिंदी--साहित्य--सम्मेलन

बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का तेइसवां अधिवेशन, विगत रविवार और चन्द्रवार, ता० ४-५ मई, १९५२ ई०को, मानभूमि जिले के धनबाद सबडिव्हिजन के अन्तर्गत झरिया नामक स्थान में, बडे उल्लास और उत्साह के वातावरणमें सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। अनेक दृष्टियों से सम्मेलन का यह अधिवेशन अभूतपूर्व था।

सम्मेलन के उपर्युक्त अधिवेशन के कार्यक्रम का श्रीगणेश रविवार, ४ मई १९५२ ई० को प्रात:काल प्राय: ९ बजे, मनोनीत सभापति पं० छबिनाथ पाण्डेय जी की शोभा-यात्रा के साथ हुआ। श्रद्धेय पंडितजी के साथ अनेकों प्रतिष्ठित साहित्यकार, पत्रकार और काव्यकार सम्मिलित थे। शोभा-यात्रा की लम्बाई लगभग एक मील थी और मानभूमि की साहित्यानुरागिनी जनता, सहस्रों की संख्या में, उसमें सम्मिलित हुई थी।

सम्मेलन की पुरानी स्थायी समिति की अन्तिम बैठक, ४ मई १९५२ ई० को प्राय: दो बजे दिन में प्रतिनिधि-निवास के विशाल सभा-सदन में हुई।

तत्कालीन सभापति श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की अनिवार्य अनुपस्थिति में प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र ने उस बैठक की अध्यक्षता की। बैठक का मुख्य कार्य प्रधान मन्त्री द्वारा कार्यसमिति की सहमति से प्रस्तुत सम्मेलन के वार्षिक कार्य-विवरण की स्वीकृति, यथेष्ठ विचार-विमर्श के बाद विधिवत् हुई। अन्त में सभापति-पद से बोलते हुए प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र ने विगतवर्ष के सभी पदाधिकारियों के सफल कार्यों के लिये समिति की ओर से उन्हें कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद दिया।

सम्मेलन का प्रारम्भिक अधिवेशन झरिया राज मैदान में, अत्यन्त सुरुचिपूर्ण रीति से विरचित सभा मंडप में ४ मई १९५२ ई० को सायंकाल, समयानुसार सम्पन्न हुआ। सुमधुर मंगलाचरण के बाद स्वागताध्यक्ष श्री मुकुटधारीसिंहने अपना लिखित एवं मुद्रित स्वागत भाषण पढ़कर सुनाया।

अन्त में, स्वागताध्यक्षजी ने यह प्रस्ताव किया कि मनोनीत सभापति श्री छबिनाथ पाण्डेय बिधिवत सभापति-पद को ग्रहण करें। उक्त प्रस्ताव का समर्थन करते हुए प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र ने झरिया-सम्मेलन के विशेष महत्व पर प्रकाश डाला और उसके अध्यक्ष-पद के लिये छबिनाथजो की सुयोग्यता एवं उपयुक्तता का भी प्रतिपादन किया। राजा राधिकारमणप्रसादसिंह ने सभापतिजी का परिचय देते हुए उनके हृदय और मस्तिष्क के विविध सद्‌गुणों का विश्लेषण अपनी मनोहारिणी शैली में किया।

सम्मेलन के प्रारंभिक अधिवेशन में ही, धनबाद झरिया क्षेत्र में रहनेवाले गुजराती परिवारों की बालिकाओं ने 'गर्बा नृत्य' के कुछ प्रदर्शन किये।

सभापति-पद से श्री छबिनाथ पाण्डेय ने जो अभिभाषण किया, वह विद्वता के साथ-साथ अपनी साहित्यिकता एवं तीव्रता के लिये भी चिरस्मरणीय रहेगा।

प्रथम दिवस का अधिवेशन समाप्त हुआ। रात्रिमें कलकत्ता के कुछ कलानुरागियों ने एक नृत्य-रूपक का प्रदर्शन किया।

दूसरे दिन, ५ मई १९५२ को प्रातःकाल, स्थानीय आर्य पुस्तकालय में सभी प्रतिनिधियों को जलपान कराया गया। तदुपरान्त वहीं मानभूमि जिला हिंदी साहित्य-सम्मेलन का आयोजन श्री हंसकुमार तिवारी की अध्यक्षता में हुआ। उसका उद्‌घाटन प्रयाग के संगम-सम्पादक श्री इलाचन्द्र जोशी ने किया।

प्रायः १० बजे दिन में प्रतिनिधि निवास के सभा-सदन में विषय-निर्वाचिनी समिति की बैठक हुई। समिति ने प्रस्तुत प्रस्तावों पर विचार विमर्श करने के बाद, उनमें से अधिकांश को स्वीकृत किया। कुछ प्रस्ताव नयी स्थायी समिति के विचारार्थ रख दिये गये। समिति ने सिंहभूमि जिले की ओर से जमशेदपुर में सम्मेलन का आगामी अधि-वेशन का निमंत्रण स्वीकृत किया।

प्रतिनिधियों का खुला अधिवेशन लगभग तीन बजे दिन में, उपर्युक्त सभा-सदन में ही हुआ। लगभग डेढ़ सौ प्रतिनिधियों के अतिरिक्त कुछ दर्शक भी उपस्थित थे। शोक प्रस्ताव को मिलाकर प्रायः सात-आठ प्रस्ताव सम्मेलन द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए, जिनमें 'सरकार और हिन्दी' 'विश्वविद्यालय और हिन्दी' तथा उर्दू को क्षेत्रीय भाषा बनाने का कुचक्र' सम्बन्धी प्रस्ताव अत्यधिक महत्वपूर्ण थे। सर्वसम्मति से प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, श्री देवव्रत शास्त्री, श्री कामताप्रसादसिंह 'काम' श्री नन्दकिशोर अग्रवाल और श्री मुकुटधारीसिंह, स्वागताध्यक्ष सम्मेलन के उपसभापति चुने गये। उसके बाद प्रधान-मन्त्री के पद के लिये श्री व्रजशंकर वर्मा प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुए। श्री रघुवंशनारायणसिंह, श्री जयनाथ मिश्र और श्री बी० गुप्ता एण्ड कम्पनी सर्वसम्मति से, क्रमशः संयुक्तमन्त्री, कोषाध्यक्ष और आय-व्ययपरीक्षक चुने गये।

सायंकाल राज मैदान में साहित्यिक व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया जिसके अन्तर्गत भदन्त आनन्द आनन्द कौशल्यायन, श्री इलाचन्द्र जोशी, डा० उदय नारायण तिवारी, आचार्य शिवपूजनसहाय के विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए। रात्रि में कवि सम्मेलन का सफल आयोजन श्री हंसकुमार तिवारी की अध्यक्षता में हुआ। स्वागताध्यक्ष द्वारा धन्यवाद-प्रदान के बाद सम्मेलन समाप्त हुआ।

विदर्भ साहित्य सम्मेलन में
हिंदी मराठी सहयोग का अपूर्व दृश्य

४ मई को जबलपुर में साहित्य सम्मेलन का चौदहवां अधिवेशन बड़ी ही सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

इस सम्मेलन की विशेषता यह थी कि मध्यप्रदेश जैसे प्रांत में जहां की जनता हिंदी एवं मराठी दोनों भाषाओं के बोलनेवाली है, इन दोनों भाषाओं के साहित्यिकों ने इस अवसर पर एकत्रित होकर हिंदी और मराठी भाषा के सहयोग का एक अपूर्व दृश्य उपस्थित कर दिया। प्रातः साड आठ बजे सौ० कुसुमावतीबाई देशपांडे की अध्यक्षता में हिंदी मराठी साहित्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी में श्री व्योहार राजेंद्रसिंह, प्रो० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल,' श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव, श्री रमेश वर्मा, श्री इंद्रबहादुर खरे, श्री श्रीबाल पांडे, श्री बंसलजी, श्री बलदुआजी, श्री श्रीकृष्ण स्वामी, श्री हरिशंकर मिश्र, श्री छैल, वृंदावन श्री नर्मदाप्रसाद सराफ, श्री भवानीप्रसाद तिवारी आदि प्रांत के प्रमुख साहित्यिक उपस्थित थे। मराठी साहित्यिकों में श्री अनिल, श्री शरच्चन्द्र मुक्तिबोध, डा० कोलते, सौ० मनोरमाबाई नावलेकर, श्री पंढरीनाथ रानडे, श्री करमरकर तथा श्री पुरुषोत्तम दारव्हेकर उपस्थित थे। दोनों भाषाओं में दोनों भाषाओं के साहित्यिकों द्वारा काव्यगायन तथा भाषण हुए। तथा ऐसा अपूर्व वातावरण उपस्थित हो गया कि जैसे इस पुण्यस्थल पर हिंदी और मराठी दोनों बहिने बहुत दिनों के उपरांत अतीव प्रेमवश ही एक दूसरे के गले मिल रही हों। सन्ध्यासमय हिंदी साहित्य संघ की ओर से मराठी साहित्यिकों का सार्वजनिक रूप में सम्मान भी किया गया तथा सौ० कुसुमावतीबाई देशपांडे को साहित्यसंघ की ओर से मानपत्र भी समर्पित किया गया।

सौ० कुसुमावतीबाई देशपांडे ने भी अपने भाषण में हिंदी और मराठी के सहकार्य पर प्रकाश डालते हुए कहा,

"मराठी भाषा के इस सम्मेलन में महाकोशल के विद्वान रसिक, कवि ओर लेखक सहभागी हैं, यह विशेष आनंद की बात है। यह घटना अपनी अनेक पीढियों के सहकार्य को शोभा देनेवाली है। छत्रसाल के समय से महाराष्ट्र ओर महाकोशल के सम्बन्ध की परंपरा को बढानेवाली है। तभी से हिन्दी साहित्य ओर मराठी साहित्य सगे भाइयों की तरह बढे है। हिन्दी कवियों ने मराठी राजाओं पर प्रशस्तियाँ लिखी और इसी तरह मराठी कवियों ने भी हिन्दी भाषा में कवितायें लिखी हैं! हिन्दी ने मराठी लेखकों को पुत्रवत माना और उनकी सेवा स्वीकार की।

हिंदी और प्रांतीय भाषाओं के मिलजुले कार्यक्रमों से राष्ट्र भाषा और प्रांतीय भाषाके बीच आदान प्रदान एवं सहकार्य का मार्ग सुगम हो सकता है। अतः यदि प्रत्येक प्रांत में इस प्रकार के मिले जुले साहित्यिक आयोजन हों तो समस्त देश की भाषाओं के बीच एक सामंजस्यपूर्ण वातावरण के उत्पन्न होने में बहुत बडी सहायता मिलेगी। विभिन्न भाषाओं के कर्णधारों को इस ओर प्रयत्नशील होना चाहिये।

भारत सरकार की हिंदी प्रचार पंचवर्षीय योजना का प्रथम वर्ष

भारतीय संविधान के अनुसार हिंदी को भारत की राजभाषा के पदपर अधिष्ठित करने के लिये हिंदी के विकास और प्रचार के उद्देश्य से मंत्रालय ने जो एक पंचवर्षीय योजना बनाई है, उसके अंतर्गत १९५१-५२ में निम्न कार्य आरंभ किया गया है।

१ मंत्रालय में एक हिंदी विभाग की स्थापना।

२ मंत्रालय को परामर्श देने के लिये केन्द्रीय हिंदी शिक्षा समिति का संगठन।

३ भाषा शास्त्रियों की एक समिति का संगठन।

४ विशेषज्ञों की दस समितियों का संगठन।

५ ग्रामों के समझदार युवकों को ग्राम्य नेतृत्व की शिक्षा देने के लिये अलिपुर में एक जनता कालिज की स्थापना।

६ मंत्रालय की सांस्कृतिक गतिविधियों के अंतर्गत सांस्कृतिक छात्रवृत्तियां देने की योजना।

७ यूनेस्को द्वारा प्रशंसनीय सहयोग।

इन उपर्युक्त योजनाओं एवं कार्यक्रमों के आरम्भ होने का प्रत्येक हिंदी प्रेमी स्वागत करेगा, पर साथ ही भारत सरकार को इस ओर अधिक ध्यान देना है कि इतना पैसा खर्च करके कुछ वास्तविक और ठोस कार्य इन समितियों द्वारा हो रहा है अथवा नहीं। योजनाओं और समितियों का निर्माण सहज है, पर उनके अंतर्गत निहित कार्य और उत्तरदायित्व के प्रति ईमानदार रहना अधिक महत्वपूर्ण है। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर भारत सरकार को इन कार्यों के लिए ऐसे ही व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिये जिनमें कार्यक्षमता के साथ साथ हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति सेवा की अगाध्य भावना भी हो

112380

112380

भारत-सरकार से अधिक उत्तरदायित्व उन व्यक्तियों पर है जिन्हें इन योजनाओं और समितियों के भीतर कार्य करने का अवसर मिलेगा। उन्हें अपनी भाषा की शक्ति को व्यापक बनना है, उसके रूप को संवारना है, उसके वैभव को एक नवीन विकसित रूप देना है। उनका कार्य उन कारीगरों की तरह है जो ईंट, पत्थर और चूने से राजमहल का निर्माण करते हैं। यहां उन्हें राजभाषा का निर्माण करना है। हमें आशा ही नहीं विश्वास है कि इन समितियों और योजनाओं के अंतर्गत कार्य करनेवाले हिंदी सेवी विद्वानों का कार्य तीव्र गति से आगे बढेगा और ये समितियां हिंदी भाषा के राजमहल की सदृढ़ आधार शिलाओं का काम देंगी।

श्री सेठ गोविंददास एवं मा० ब्रिजलालजी बियाणी का हिंदी प्रेम

श्री ब्रिजलाल बियाणी

मध्यप्रदेश की राजनीति में तो मा० बियाणीजी और सेठ गोविंददासजी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है ही परंतु हिंदी साहित्य की वृद्धि एवं हिंदी भाषा के प्रचार की दिशा में भी इन दोनों राजनीतिज्ञ महारथियों ने बडे मनोयोग और सेवा की भावना से कार्य किया है। जब वे कांग्रेस के केवल कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता थे, तब उन्होंने हिंदी में उच्च कोटि की पुस्तकें लिख कर साहित्य देवता के चरणों में अपने आलोक सुमन चढाये और अब सत्तारूढ हो जानेपर हिंदी भाषा के प्रचार एवं प्रसार को प्रोत्साहन देने में सतत् प्रयत्नशील हैं। सेठ गोविंददासजी के प्रयत्न से भारतीय लोकसभा के ६० सदस्यों का एक ऐसा दल तैयार हो गया है जिसने सभी संसदीय कार्यों मे हिंदी भाषा को ही व्यवहृत करने की प्रतिज्ञा कर ली है और इसी उद्देश्य से कार्य भी आरंभ कर दिया है। मा० बियाणीजी ने मध्यप्रदेश के अर्थमन्त्री होने के साथ ही अपना समस्त सरकारी कार्य हिन्दी में करने की घोषणा करदी थीं और वे तबसे अपना समस्त सरकारी कार्य बडी योग्यता और क्षमता के साथ हिंदी में कर रहे हैं। बियाणीजी तो मराठी भाषाभाषी प्रांत से गये हैं, और उनका शिक्षण भी मराठी भाषा के माध्यम से ही हुआ है, पर फिर भी वे अपने जीवन एवं व्यवहार में हिंदी भाषा को योग्य सम्मान देते आये हैं। हिंदी भाषा के विकास एवं प्रगति के लिये उनका सतत प्रयत्नशील होना और भी श्लाध्य तथा सराहनीय है, क्योंकि बचपन में ही प्राथमिक शिक्षा के माध्यम रूप में उनका परिचय मराठी से हुआ था, हिंदी से नहीं। बियाणीजी की मान्यता है कि प्रांतीय भाषायें और उनका साहित्य अपने प्रांत में खूब फूले फले पर राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में हिंदी ही पुरस्कृत हो। आशा है, शीघ्र ही मध्यप्रदेश राज्यसभा में भी मा० बियाणीजी के नेतृत्व में धारासभा के सदस्यों का एक ऐसा दल तैयार होगा जो हिंदी को ही अपने व्यवहार की भाषा बनाने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो। इसमें संदेह नहीं कि जब धारासभाओं और शासन संचालन में हिंदी का प्रयोग होने लगेगा तो जनता की धारा स्वयं उस दिशा में प्रवाहित हो जायगी। श्री सेठ गोविंददासजी तथा मा० बियाणीजी अपने इस सुंदर कार्य के लिये हिंदी जगत के बधाई के पात्र हैं।

मध्यप्रदेश उत्तरप्रदेश से सबक ले.

उत्तरप्रदेश सरकार ने गत दो वर्षों की भांति इस वर्ष भी हिंदी लेखकों की पुस्तकों को पुरस्कृत किया है और एक भारी रकम पुरस्कार रूप में दी है किन्तु मध्यप्रदेश सरकार ने अभीतक इस ओर कोई कदम नहीं उठाया। बजट में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की जिसके अंतर्गत मध्यप्रदेश के हिन्दी एवं मराठी साहित्यिकों को प्रतिवर्ष पुरस्कार के रूप में कोई निधि बांटी जा सके। साहित्यिक साहित्य सृजन के लिये राज्य की ओर से प्रोत्साहन की

अपेक्षा तो नहीं रहता, पर यह तो स्वतन्त्र राष्ट्र में सरकार का ही कर्तव्य हो जाता है कि वह उत्तम साहित्यिक रचनाओं को पुरस्कृत कर उच्चकोटि के साहित्यसृजन को प्रोत्साहन दे। मध्यप्रदेश सरकार को भी इस दिशा में कर्तव्यशील होना चाहिये। सौभाग्य से मध्यप्रदेश सरकार के तो कुछ मंत्री स्वयं लेखकों के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। उन्हें तो इस प्रश्न पर और भी अधिक ध्यान देना चाहिये।

हिंदी पुस्तकें और पत्र--पत्रिकायें

किसी भी देश की पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन की प्रगति उस देश के पाठक वर्ग पर निर्भर होती है। पाठकवर्ग की परिधि जितनी विस्तृत होगी उतनी ही तेजी से पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी बढेगा। अपने देश में शिक्षा के प्रसार के साथ पाठकवर्ग के प्रसार में पहले की अपेक्षा तो अवश्य वृद्धि हुई है, पर फिर भी हमारे यहां प्रायः यह प्रवृत्ति देखने में आती है कि हम पत्र-पत्रिकायें खरीदकर नहीं पढते। हम में से खरीदकर पढनेवाले तो थोडे ही होते हैं और एक दूसरे से मांगकर पढनेवाले बहुत। इसका परिणाम यह होता है कि हमारी पत्रपत्रिकाओं को पाठकवर्ग की ओर से उतना प्रोत्साहन नहीं मिल पाता जितना मिलना चाहिये। पत्र थोडे दिन चलकर बंद हो जाते हैं, घाटे में चलते हैं या उन्हें अपना स्वतंत्र अस्तित्व किसी विशेष दल के हाथों में बेच देना पडता है और फिर वे जनता के सच्चे प्रतिनिधि पत्र नहीं रहते। फिर उनके भीतर से जनता की आवाज की प्रतिध्वनि सुनाई नहीं देती, बल्कि उस दल विशेष की आवाज सुनाई देती है जिसकी दलदल में वे परिस्थितिवश फंस गये हैं; किन्तु विदेशों में ऐसा नहीं है। वहां पुस्तकें और पत्रपत्रिकायें मांगकर नहीं पढी जाती, खरीदकर पढी जाती हैं। यही कारण है कि वहां अच्छी पुस्तक लाखों की संख्या में बिक जाती है। अनेकों संस्करण हो जाते हैं और लेखकों को प्रायः इतनी बुरी तरह गरीबी को चक्की में भी नहीं पिसना पडता जितना हमारे देश में। पत्रकारिता का स्तर तभी उच्च रह सकता है जब पत्रकार का अपना स्वतंत्र अस्तित्व हो। वह किसी की जेब में न पडा हो। उसने अपनी कलम बेच न दी हो। यह तभी संभव है जब पत्र पत्रिकाओं का संरक्षक पाठकवर्ग बने। इसके लियें हमे अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को बदलना होगा। हमारे यहां तो प्रायः लोग पत्र पत्रिकायें मांगकर पढते हैं जब कि ब्रिटेन में आपके दिये जानेपर भी वे दूसरे की पत्र पत्रिकायें पढना पसंद नहीं करते। मेरे एक मित्र एक घटना इस प्रकार सुनाया करते थे।

वे एकबार फर्स्ट क्लास में रेल की यात्रा कर रहे थे। उन्होंने एक अखबार खरीदा। उसके दो पृष्ठ स्वयं पढने लगे और दो पृष्ठ अपने एक अंग्रेज साथी की ओर बढा दिये। इसपर उस अंग्रेज साथी ने अखबार लेने से मना करते हुए कहा, "नहीं, आपको इस कृपा लिये धन्यवाद। में अपना अखबार स्वयं खरीदूंगा। यह घटना अंग्रेज नागरिकों के चरित्र पर प्रकाश डालती है। नागरिकों के चरित्र स्तर से ही राष्ट्र का चरित्र स्तर ऊंचा उठता है।

अब हिंदी भाषा राष्ट्रभाषा के पद पर अधिष्ठित हुई है। उसके निरंतर विकास तथा हिंदी वाङ्मय की वृद्धि के लिये यह अनिवार्य है कि संपादक एवं लेखक वर्ग के साथ साथ पाठक वर्ग भी अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करे और साहित्य सृजन के स्तर को ऊंचा उठाने में अपना संपूर्ण सहयोग दे।

इसी उद्देश्य से हिंदी साहित्य एवं पत्रजगत के कुछ उच्चस्थ महारथियों ने हाल ही में एक परिपत्र प्रकाशित किया है, जिसमे संपादकों से अनुरोध किया गया है कि वे जनता को हिन्दी पुस्तकें और पत्रिकायें खरीद कर पढने के लिये उत्साहित करें तथा उसे समझावें कि मांगकर पढना हिंदी के मार्ग में रोडे अटकाना है। परिपत्र प्रकाशित करनेवाले हैं श्री राहुल सांकृत्यायन, श्री चंद्रबली पांडेय, श्री बाबुराव विष्णु पराडकर, श्री शिवपूजनसहाय, श्री सत्यकाम विद्यालंकार एवं श्री गोविंदप्रसादजी केजरीवाल। हम भी इस परिपत्रक का समर्थन करते हैं और हमारा विश्वास है कि हिंदी प्रेमी समस्त पाठकगण साहित्यिकों के इस अनुरोध पर अवश्य ध्यान देंगे तथा हिंदी पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं को खरीदकर पढना ही अपना सिद्धांत बना लेंगे।

रजिस्टर्ड नं. एन. १०९१

Licence No13
License to post without prepaymen

देश के नव-निर्माण काल में

राष्ट्रीय उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिये

न्यू स्वदेशी मिल्स

- आफ -

अहमदाबाद

का

- स्वदेशी
- टिकाऊ
- मजबूत

कपड़ा व्यवहार में लाइये

मैनेजिंग एजेन्ट्स
कॉटन एजेन्ट्स लिमिटेड
बम्बई

मिल का पता
नरोडा रोड, अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक:- श्री [illegible] प्रिंटिंग प्रेस लिथो वर्क्स लिमिटेड अकोला (मध्यप्रदेश)

COMPILED
2/5